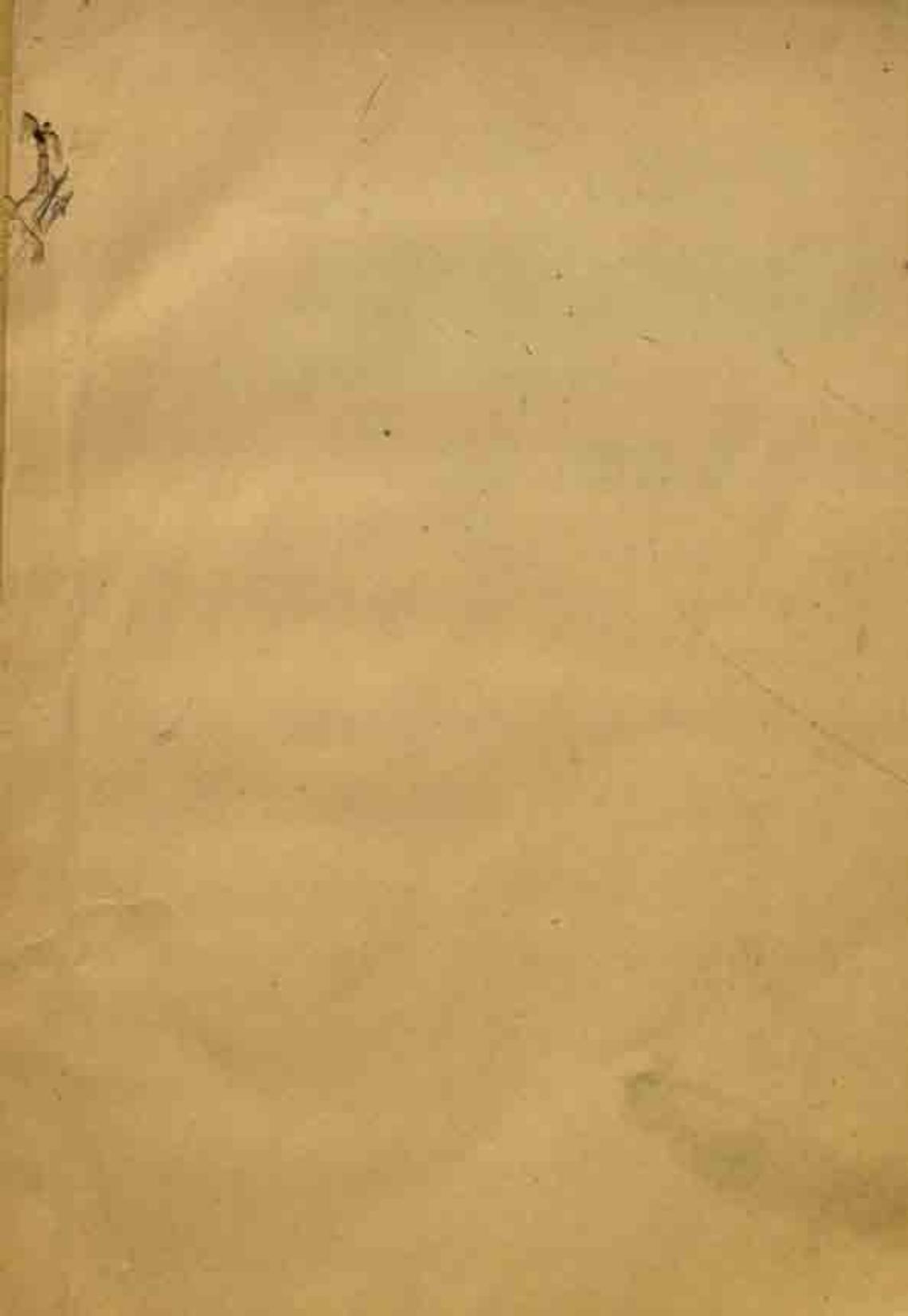


GOVERNMENT OF INDIA
ARCHÆOLOGICAL SURVEY OF INDIA
CENTRAL
ARCHÆOLOGICAL
LIBRARY

ACCESSION NO. 18275

CALL No. 759.954 / Ray

D.G.A. '19





School of Art, Baroda.

भारत की चित्रकला

कलानी प्रवर्द्ध चित्रम् (विष्णुचमोत्तर पुराण)

राय-कृष्णदास

13275



757-754

Ray



मारत-दर्पण-प्रन्थनाला—४

प्रकाशक तथा विक्रीता

भारती-भण्डार

लोडर प्रेस, इलाहाबाद

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY, NEW DELHI.

Acc. No. 182.25.....

Date 25-1-61.....

Call No. 759.954/Roy

प्रथम संस्करण : १९५६ वि०

द्वितीय संस्करण : २००७ वि०

तृतीय संस्करण : २०१७ वि०

मूल्य : चौ/००

मुद्रक
सीताराम गुण्ठे
लोडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण वाला निवेदन

‘भारत की चित्रकला’ और ‘भारतीय मूर्तिकला’ रंगद प्रकाशन है। अतएव ने यह पठनों को ही ही, इनके ‘निवेदन’ का विषय भी बहुत कुछ एक है। जैसे, पुस्तक का गढ़मध्यम ‘इतिहास-प्रवेश’ से सहायता लेने के लिये माझे बच्चनेंद्र को घनवार; ऐतिहासिक और सामूहिक काल-चिमाचन का सामग्र्य एवं बहदी में जुटियों का यह आना, (जिसका व्याप्ति उदाहरण है—१० तीसरी शती के चित्र तथा चमोलाये भासी को उत्तर मध्यकाल में यहाँ देना; पृष्ठ ६१) इत्यादि ।

ऐसी वासी का पुनः फलकन अपेक्षित नहीं। ही, यह बताना आवश्यक है कि अपनी चित्रकला के इतिहास तथा चमोलाय विषयक प्रचलित लिंगानों से कठिनाय मिल मत एवं कुछ सामस्याओं के प्रस्तावित हल प्रस्तुत पुस्तक में पाए जायेंगे। इनके लिये लेखक विमोदार है। १२१-१३ से बांस-पहाड़ाल करते करते वह इन-मिथ्यों पर पहुँचा है, और वह तक ये इतिहास सत्य के रूप में उसे प्रस्तुत नहीं हो गए, तब तक इन्हें स्वीकार करने में हिचकता रहा है। इनमें की कुछ वासं ऐसी है—बो उत्तार रामायाद को पारगटीय अनुभुतियों से मात हुई है। आरंभ में लेखक को यह पता न या कि अपनी चित्रकला के इतिहास में उनका क्या महत्त्व है, किन्तु आध्यात्म के साथ साथ वह महत्त्व प्रकट होता रहा ।

ये मिथ्ये ६६-२५, २५ क-ग, २७, २८, २९ क-ज, ३०, ३४, ३५ क-क-
५, ३७, ३८ क, ४० ग-ग, ४२, ४३, ४८, ४९, ५० एवं ५१ में निहित हैं। विद्वानों और
विचारकों से पापेना है कि इनके विमर्शपूर्वक कोई एक सिद्धांत निर्भव करे ।

अन्य वाठकों को भी ये वासं बता देने आवश्यक थी, करोकि इस विषय के अधिक आध्यात्म में ये सहायक होंगी। उन्हें इन पर स्वांत्र स्पष्ट से चिनार करना चाहिए, और सोबते ही आगे बढ़ाने में एक बैटाना चाहिए ।

इसका अवलोकनाला और अधिकतर भी रविशंकर रायक के अंतर्गता के चित्र-मंडप पर आकलनित है, जिसके लिये लेखक द्वारिक उत्तरांश लापन करता है। अक्षर कालीन रोप के लिए १०० परमायमायरण तथा भी प्रबलनदाय मैं भूत जास्ती अवलोकनरण निभाते हैं जो सहायता दी है तदर्थं वह उनका आमारी है ।

‘चित्रकला’ के इस संस्करण में एक रमीन और सनाईस भाई निय दिए जा रहे हैं। इनमें से मुख्य चित्र के लिये प्रयासी येत्र, कलकत्ता की ओर पलक—२ तथा ३-क, ४-क

तथा १२ एवं ६ तथा १४ के लिये व्यापकम् सरलती पञ्जिशिंग हातन, प्रयाग, गोदा येति
गोरखपुर; और इटियन द्रेष्ट; प्रयाग को भनवाद है।

काशी,

अधिक भावणा त्र० ११, २६६६

—लेखक

पुनर्वा—एहों संस्करण में कला-भवन के यहाँगक संग्रहालय भी नियम कुप्ता में
पुस्तक की तैयारी में विशेष सहायता दी; इसी प्रकार त्र० शंखनारायण चतुर्वेदी तथा भी राम-
नाथ वाङ्मेयी ने काफी प्रस्तुत भवने में परिभ्रम किया था।

पुस्तक की दूसरे संस्करण नियंत्रित परिणामिति में लेखक के पुत्र निःशासनकृत्य का
विशेष दाय था। उन्होंने प्रस्तुत संस्करण के लिए अनेक आपस्यक नामविधि का संकलन कर
इसे अधिक उपादेश बनाया। बल्कि यही नए आश्रु उन्हीं के लिये दृष्ट है, जिसके लिए
लेखक उनका वापिस आमारी है।

इस संस्करण में लीन रमीन और कई शादे नित्र वाहा दिये गये हैं और ब्रावशक्ता
नुसार ग्रन्थ में भी परिवर्तन और परिवर्धन कर दिया गया है। रंगीन लियों के उपयोग के लिए
लेखक मारत-कला-भवन, काठ निःशासन का आमारी है।

उत्ताद रामप्रसाद
को
'बलिहारी शुभ आपही, मोर्चिद दियो दिलाव'

फलकों का उत्तरेख

फलक संख्या	प्रथा संख्या	दावाला संख्या	फलक संख्या	प्रथा संख्या	दावाला संख्या
१	२०	₹ १६	१४	६६	₹ ५५
२	२०	₹ १६	१५	६६	₹ ५५
३	१६	₹ १६	१६	१०३	₹ ५६
४क	२४	₹ २०	१७	१०१	₹ ५५
५त्र	२४	₹ २०	१८	१०३	₹ ५६
६क	२४	₹ २२	१६	१०४	₹ ५०
७त्र	३३,४६	₹ २२,₹ २३	२०	१०८	₹ ५६
८क स	४२	₹ २५८	२१	१०८	₹ ५६ तथा वार्षिक
९ग	४४	₹ २५८	२२	१०६	₹ ५६
१०	६१	₹ २६	२३	११२	₹ ५३
११	७८	₹ ३५ लाढ़ी	२४	११४	₹ ५५
१२क स	७५,८६	₹ ३५ लाड़ी	२५	११५	₹ ५५
		₹ ५३	फलक		
१०	८०—	₹ ४०, ४०ल	०१	३६	₹ २५ क
११	८७,८८	₹ ४०, ४०ल	०२	४७	₹ ४३
१२क स	९८	₹ ४३ तथा वार्षिक	०३	१०८	₹ ५६ तथा वार्षिक
१३	९६	₹ ४३	०४	११३	₹ ५५

तालिका

भारतीय चित्रों के मुख्य संस्कृत तथा निजी संग्रह

सहायक प्रथ तथा उनके विवरण

पारिभाषिक शब्द

समर्पण

पहला अध्याय

१-१३

परिचय—प्रारंभिक काल, प्रत्येकितासिक काल, मोण जो इसे आदि—विन के प्राचीन उल्लेख—चित्र के कुछ अंग (स्थानेद, प्रमाण, माथ, लाघवण-पोषण, लाहश्य, वर्णिकामय)—चित्र के प्रकार—चित्र के प्रयोग—ज्ञोगीमात्रा गुका के भित्तिचित्र—शुरुगाल—शुरुग तथा कुपाण कालीन अवस्था के चित्र गुप्तकाल—गुप्तकला ।

दूसरा अध्याय

१४-२६

अवस्था का परिचय—अवस्था का पुनः आविष्कार और जीवोदार—अवस्था का चित्रण-निभान—अवस्था के गुप्तकालीन वाले चित्रों की सुख विशेषताएँ—अवस्था के पुस्त शैली वाले कल्पित चित्र—इस काल के अन्वय भित्ति-चित्र—गुप्तकालीन चित्रकला का वाह्यमान में उल्लेख—दृष्टिकोण मारत में गुप्तकालीन चित्रकला ।

तीसरा अध्याय

२३-३५

पूर्व मध्यकाल (६००—६०५ वा ६००० ई०) के भित्ति-चित्र (अक्षन्ता, वाप, वादामी, विश्वनवामल, वेळज)—पूर्व मध्यकालीन वाह्यमान में चित्र (चित्र-शैल, उत्तर राम-नरित, फुटकर)—दृष्टिकोण मारत के पूर्व मध्यकालीन चित्र ।

चौथा अध्याय

३६-४४

उत्तर मध्यकाल (१०वीं-१२वीं ई० से १५वीं ई० के उत्तरार्ध तक)—उत्तर-मध्यकालीन चित्र-शैल (अभिलिप्तिवर्णितामणि) तथा अन्य शैली में चित्र-शैली—दृष्टि के चित्र (वाल शैली, तापावित जैन शैली, अपम्बण शैली, करमीर शैली, लिङ्ग के भित्ति-चित्र)—उत्तर-मध्य काल में दृष्टिकोण की चित्रकला ।

१५वीं शती से लोकलिक पुनरस्थान (सर्वांग, वास्तु, मक्कि, याहिय)—चित्र-
कला का पुनरस्थान—राजस्थानी शैली—राजस्थानी शैली का बगीचारणा तथा समृद्धित नाम।
छठा अध्याय

६३-८५

मुगल साम्राज्य का आरंभ—मुगलों में सहति और कलाप्रेम—मुरिजम देशों
की १६वीं शती के आरंभ तक की कला—हेरानी चित्रकला की विशेषताएँ—ब्रह्मवर और उसकी
समाधित आरंभिक मुगल शैली (आईन में उल्लेख, ब्रह्मवर शैली का उदयम, हम्बा चित्र-
कली और उसका निर्माणकाल, इस चित्रावली का निर्माण, ब्रह्मवर कालीन चित्रित मन्त्र,
ब्रह्मवर शैली की विशेषताएँ)—चित्रों और चित्रकारों के प्रति ब्रह्मवर का मात्र—१६वीं शती में
दफनी शैली—१६वीं शती में राजस्थानी शैली (जब में राजस्थानी का केंद्र)—१६वीं
शती में चित्र-नालूक सम।

बहानीट तथा बहानीर कालीन मुगल शैली (बहानीर कालीन ग्री-चित्र, बहानीर
शैली की विशेषताएँ, बहानीर चित्रों में स्थानान्तरिता, एकत्रम शपीह का कारण, मुगल
चित्र का विवान और उसका)।

मुगल चित्रों में प्रमुख होने वाले रंग—कारत्वी सुलिपि—१७वीं शती में
राजस्थानी शैली—१७वीं शती में दफनी शैली।

शाहजहाँ काल की मुगल शैली—श्रीरामजेव में शालमगीर सानी तक मुगल
शैली—१८वीं शती में राजस्थानी शैली—खोली वा बम्बू शैली—पहाड़ी शैली—दाना
आलम कालीन और बाद के मुगल चित्र—कंपनी शैली—दनास्त राज में कंपनी शैली—
उस्ताद रामप्रसाद—ठाकुर शैली।

दमखग—सं० बानदार—विंग ट्रट्टली, एवं गोलार्ड जिमे—विंग (मूर्ति की गड़ग वा चिप की रेलाएं) ।

हष्टिकम्, **हष्टि परंपरा**, **हष्टि सरणि**—सं० दशों को यथाक्रम एक के बाद दूसरी तक दीक पड़ने की अभियाकि (परंपरेकिटव) ।

परदाव—सं० अमीष रंगत लाने वा छाट को मिटाने के लिये इतने पास पास लिये गढ़ीन बिंदु कि वे एक बात पहुँ और उनसे अमीष परिणाम निकल आये ।

एष्टिका—सं० जिसी मूर्ति वा चित्र में दिखाया सक्षे पीछे का मार जो अक्षित हरण वा पटना का आधय होता है (बैक ग्राउंड) ।

मोहरा—सं० ओपनी, एशन वा थ्रीक पल्यर वी एक छोटी-सी गुलाली जिसे गड़ कर चित्र पर के सोने-चारों को ओपते वा चमकाते हैं । कि० मोहरा करना,—गोहरे से गोट कर ओप ऐदा करना ।

रेखांकण—सं० रेलाभिष (ड्रॉइंग) ।

लिखार्ड—सं० चित्र-किन्यास, चित्रांकण की किंवा का माव ।

बज्जन—सं० भार, वह अधिकता विलक्षण वारण्य चित्र का एक ऊंच झूरे से न्यून वा चिपम ही बाग ।

वर्णिका—सं० अमुक-अमुक रंगों का समवाय जो किसी चित्र वा शैली में विशेष रूप से वरता जाय । देखिय, वर्णिकार्भग हृ४ ।

शबाहत—सं० जिसी रूप की विशेषताएँ ।

शबीह—सं० अस्तिचित्र, किसी रूप का तहत अंकन ।

शैली—सं० कलम, चित्रों का कोई वर्ग जिनकी विशेषताओं में अंकन निदान एवं विभक्तों की मनोवृत्ति की एकता के कारण साम्य ही ।

संयोजन—सं० किसी अंकन में प्रमाण एवं अस्तित्व उत्पन्न करने के लिये आकृतियों की टीक दिखाने 'पैठाना' (= ड्रामा) ।

इमयज्जन—सं० भारसाम्य, लोल चिप के बड़ थंसों में स्थानता ।

भारतीय चित्रों के मुख्य निजी संग्रह

बहुमदावाद—भी कम्पूर भाई जाल भाई, भी मुनि पुण्य दिव्य ची;
 उदयपुर—महाराजा उदयपुर; कलकत्ता—भी गोपीकृष्ण कानोडिया, ओ बहादुर रिह मिथी;
 काशी—भी कुंवर संघामिय जी पटना—भी दीवानभादार सेठ राधाकृष्ण बालान; बम्बई—
 अर्देशिर संग्रह, भी काले गंडालावाला संग्रह, सर काष्टक जी संग्रह, सर. एस. शे. नेहता संग्रह;
 बनारस—स्व. भी बीताराम याह संग्रह; बीकानेर—महाराज बीकानेर, सेठ मोतीचन्द शर्कारी;
 रामपुर—राज्य पुस्तकालय; लंबाग्राम (कांगड़ा)—राजा याहव लंबाग्राम; लाहौर—
 भी चारेन्द्र नाथ यु।

संग्रह (सं० रा० आमेरिका) —भी केरी चेल्च; लंदन—विडसर ग्रासाद।

भारतीय चित्रों के मुख्य संग्रहालय

इलाहाबाद—मूलियिल संग्रहालय; औरूप—राजकीय संग्रहालय; कलकत्ता—
 इंडियन संग्रहालय, बंगला साहित्य परिषद, लिक्टोलिया मेमोरियल हाल; चेन्नई—मूरीसिंह संग्रहालय, जगपुर—पोथीसाना; नई दिल्ली—आकिलाबिड़ाल तथा मेश्वर पण्डियन संग्रहालय,
 भारतीय राष्ट्रीय संग्रहालय; पटना—छुदायदरा संग्रहालय, पटना संग्रहालय; पटिगाला—वेवाय
 संग्रहालय, फूना—भारतीय इतिहास संशोधक संडल; बम्बई—हिस अव चेल्स म्यूजियम;
 बड़ीदा—राजकीय संग्रहालय; बनारस—मारत कला भवन, काशी विश्वविद्यालय; बोलपुर—
 कला भवन (सामित्र निकेतन); हैदराबाद—राज्य संग्रहालय, सर सालार जंग संग्रहालय।

आस्सामी—वार्डलियन पुस्तकालय; ईरान—गुलशन पुस्तकालय; इच्छिन—
 चेस्टर बेरी संग्रह; न्यूयार्क—मेट्रोपोलिटन बैंकालय; पेरिस—मूर्जे, नीम, राहोप पुस्तकालय तथा
 लूब्र संग्रहालय; चर्लिंग—राजकीय पुस्तकालय; चोरटन—वॉर्टन संग्रहालय; लंदन—इंडिया
 आमिस, विटिश संग्रहालय, साउथ कॉम्प्लेक्ट; लाहौर—केन्ट्रीप संग्रहालय; लेनिनग्राद—आमेताज
 संग्रहालय; गार्डियन्स—कीर थार मैलरी।

द्रष्टव्य तथा सहायक ग्रन्थ

भारत, इन्डू० जी०—

सेन्ट इंडियन पेटिस, १८५५

इंडियन पेटिस, १८५६

इंडियन पेटिस प्रम राजस्थान, १८५७

इंडियन मिनिएट्स, १८६०

इंडिया गोसाइटी, लंदन—

बाबू केन्द्र, १६२७

पोर्टन; सर जी—

द आर्ट अव इंडिया एंड पाकिस्तान १६५८
कुमारस्वामी; आनंद के.—

इंडियन डॉर्मस, २ भाग; लंदन

पोर्टन संग्रहालय केटलार्म, भाग ५ (राजपूत चित्र), पोर्टन, १६२६

पोर्टन संग्रहालय केटलार्म, भाग ६ (मुगल चित्र), पोर्टन, १६३०

राजपूत पेटिंग, दो भाग; लंदन

हिन्दू अव इंडियन ड्रैफ इंडोनेशियन आर्ट, लंदन, १६२७

कलाकृ; सी० स्टैनले,—

इंडियन डॉर्मस, लंदन, १६२१ (हम्बा चित्राकली)

“ ” “ ” “ (ऐटेच प्रदान)

कैमरिट; रेले—

ए. सर्वे अव पेटिंग इन बैक्स

भूक—

हम्बा (चाँद);

गोमुकी, छो, भी.—

भास्टर गीसेन अव राजपूत पेटिंग
जपनेह चित्रालंकार,—

इंडियान-अगेरा, प्रशांग, १६३८

स्टुकिन; इंडैन,—

ले. पेन्यूर इचो न, गोरेस, १६२८

देवीप्रसाद; मुंशी—

बहारीरनामा, कलाकार, १६०५

नवार; सारामाई मणिलाल—

जैन चित्र-कल्पनम; अदमधाराद, १६३७

प्रगोद चन्द्र—

बूँदी पेटिंग

बेनिगन; लार्स,—

कोर्ट पेट्रो अव द ब्रैंड मुगल्स; आौकलकर्ड, १९२१

बाउन; पर्सी,—

इंडियन पेटिंग बैंड द मुगल्स; आौकलकर्ड, १९२४

ईंडियन पेटिंग

मेहता; न्यायालाल चमनलाल,—

स्टार्टीन इन ईंडियन पेटिंग; बम्बई

भारतीय निवाज़ा; इजाहारावाद, १९३३

मिल्के द आर्नर—

फटना पेटिंग

मोतीनन्द; हाँ—

मेहाङ पेटिंग

वेलन ईंडियन स्कूल ऑफ पेटिंग न्यूज़ीलैंड, १९५८

धाय कृष्णदास—

अबैता के नियमकूट

मुगल भिनिएशन्स

रंपाता, एम. एच.—

कॉमङ्गा पेटिंग

वसोहली पेटिंग

रामल; रविशंकर महाशंकर—

अबैता के बलामेंट, अहमदाबाद, ६६३७

सिंथ; विल्सन—

ओ हिस्टी अव फाइन आर्ट इन ईंडिया ब्रैंड सीलोन, आौकलकर्ड, १९३०

हेरियम; लेही—

अबैता के स्टोर

हिंगल; है० वी०—

ईंडियन स्कूल्स नर ब्रैंड पेटिंग, लंदन, १६०८

निर्देश

न०० प्र० प० (नवीन)

— नागरी-प्रनारियो पविका, मवीन संस्करण

सिंथ

— ओ हिस्टी अव फाइन आर्ट इन ईंडिया ब्रैंड सीलोन

पारिमापिक शब्द

(जिसकी वापस्या गमारथान नहीं दी गई है)

सं० = संज्ञा, विं० = विशेषण, कि० = क्रिया

अभिप्राय—रे० कोई चल या अचल, सभीन या निर्बीव, प्राकृतिक अथवा काल्पनिक उस्तु जिसकी अलंकृत एवं अतिरिक्त आकृति, मुख्यतः याकाट के लिए जिसी कला-कृति में बनाई जाय (मोटिफ़) ।

अस्तर बट्टी—सं० (अस्तर + बट्टी) अस्तर, वह मराला जिससे बर्मीन बौधी जाप, बट्टी, उस बर्मीन को पोटकर बराकर करने के लिए जिसने वस्तर भी बट्टी ।

आदम-कद—वि० आदमी की कँचाई के वराकर कोई निष या शूर्ति ।

आलेखन—सं० विवरनिन्याय, लिखाई । कि० निष अंकित करना ।

उरेहना—कि० निष अंकित करना ।

कलम—सं० गिलहरी की धैल के दोहें से बना आलेखन का उपकरण (तर) ,
आलेखन—यैली ।

कुनियाँ-कोनियाँ—सं० किसी जटाफ़ोगु कृति में चारों कोणे पर अलंकरण ।

गोमूत्रिका—सं० निम्न आकृति की बेल । बेल यह चलता रहता है तो उसके मूत्र का यिह उच्च आकार का पड़ता है । बैल मूत्रनी, बरद मूत्रान ।



चेहरड़े—सं० चेहरे भी रंगत ।

बर्मीन—सं० निष लिखने के लिए अस्तर की दुई उपर्युक्त उत्तर । कि० बर्मीन बौधीन, अस्तर लगाकर बर्मीन लेगर करना ।

मलक—सं० वह प्रथान रंगत (= आमा) जो चम्बे निष में व्याप्त हो ।

टपरना—कि० पर्याय की टॉफ़ी की ओट से मुरदरा बनाना ।

तरह—सं० रचना-प्रकार, आलंकारिक अंकुर (डिजाइन) ।

मारात्मक-नक्ष-संग्रह

(ग्रन्थालयमात्रे पाठ नाम उल्लङ्घन दोषी ५)
प्रकृत शैली, १२वीं शती

—४—

कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-



कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-

भारत की चित्रकला

पहला अध्याय

1

§ १. परिभाषा—किसी एक तल (सतह) पर, जो सम हो—यह समता खमदार मीं हो सकती है (जैसे कुम्भ आदि का बाहरी भाग और कटोरी, रकाची आदि का भीतरी भाग एवं लदावदार पाटन आदि)—पानी, तेल किंवा किसी अन्य साध्यम में घोले अथवा सूखे एक वा एकाधिक रंग की रेता एवं रंगमेंकी द्वारा किसी रसचीष्ट आकृति के अंकन को और उसी प्रसंग में निम्नोन्नत तथा एकाधिक तल और पहलू (= रेशकात) दरखाने को चित्रण कहते हैं और ऐसी प्रत्युत वर्तु को चित्र। उक्त आधारभूत सतह मुख्यतः भित्ति (= दंवार, भीत), पत्थर, काठ, फाइ या कच्ची मिट्टी के पात्र वा फलक, हाथीदाँत, चमड़ा, कपड़ा, तालपत्र वा कागद होती है।

प्राचीन भारत में विशेषतः भित्ति पर चित्रण होता था अतः चित्र के किसी भी आधारभूत सतह को भित्ति कहते थे। अर्थात्, ऐसी सतह के लिए अपना परिभाषिक शब्द भित्ति है।

§ २. क्र प्रागौत्तिहासिक और प्रत्यगौत्तिहासिक काल, सिंधु कौथा (घाटी) सभ्यता काल आदि—चित्रण की प्रशृंखि मनुष्य में उस समय से है जब वह बनौक्स था। अपना संस्कृतिक छिकात करने के लिये उसने संस्कृति के बिन अंगों से शीघ्रेश किया था,

उनमें चित्रकला भी एक थी। निदान संसार मर में आदिम मनुष्य के—बनवानी गुहा-एह मनुष्य के—श्रृंखित चित्र मिलते हैं। इनका सिलसिला उस समय से बलवा है जब वह भासुन्धरों का व्यवहार तक न बानता था और कड़े पर्वतों के अनगढ़ शालों और श्रीजारों से काम लेता था किन्तु उसके राजनीतिक इतिहास का आरम्भ न हुआ था। इस मुग का आरम्भ आज से दस बारह हजार वरस पूर्व था, कुछ विदानों के मत से, लगभग चालीस हजार वरस पूर्व हुआ था। परन्तु उसके चित्रों का इतिहास दस हजार वर्षों के पूर्व अबात है।

ये चित्र विषय, शैली तथा सामग्री की दृष्टि से उस समय के मानव-जीवन के प्रतीक हैं। अर्थात् इनके विषय मुख्यतः बानवर, उनका आलेट करते हुए, मनुष्य, आपस में युद्ध करते हुए, मनुष्य एवं पूर्वनीय आहृतियाँ हैं। इनकी शैली आदिम है। इनकी सामग्री भासुन्धर, (=सुनिख रंग, मुख्यतः गेह, रामरच, हिरोंजी) है तथा इनके स्थान उक्त गुहा-एह पर्वत स्थली चट्ठाने हैं।

इनमें मुख्यतः दो मनोरुचियाँ पाई जाती हैं—१—आपसे इदं-सिदं के जगत् की स्मृति एवं उसकर अपनी विवरण का इतिहास बनाए, रखना, अथव २—अपनी अमृतं भावना को मृतं करना। इस अमृतं भावना को मृतं करने वाली वृत्ति के भीतर जादू, टीना, टोटका भी आ जाता है, जिसमें उस समय से लेकर आज तक चित्र का उपयोग होता आया है। देखा जाव तो ये ही दोनों मनोरुचियाँ समूची मानव-उन्नति की मूल हैं।

भारत में ऐसे चित्रों की कई शृंखलाएँ मिली हैं। पूरी लोक के अमान में अभी टीक-टीक इनका इतिहास प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, किंतु भी इनमें तल्कालीन चित्रों की सभी विशेषताएँ ज्ञानमान हैं। भारत में इनके चार प्रमुख बैन्ड हैं—

१—मिर्जापुर (उत्तरप्रदेश) के अन्तर्गत सेन कीठा।

२—मानिकपुर और उसका समीकरण देन।

३—मध्यप्रदेश के अन्तर्गत लिहनपुर देन।

४—महादेव पर्वतमें सी में होरंगाचाद एवं वनमही (म० प्रदेश)।

मिर्जापुर में लिखनिया दरी (गुफा), कोहरवार, महरिया, चिक्कगड़, छातो एवं मलदरिया नदी कीड़ा इनके मुख्य बैन्ड हैं। लिखनिया दरी में हाथियों के पकड़ने के कई सुन्दर दृश्य हैं। दूसरी ओर दूल्ह में मस्त व्यक्तियों का एक समूह है। अन्यत्र लम्ही नोन वाले पक्षी दृश्यते हैं।

एक उदाहरण में एक शायत बनैला शक्ति, कही एक मुग को बहु से अद्वेर भरने का दृश्य है, कही एक चड़े (अबात) पशु पर कुत्ते दृह रहे हैं। इन आकृतियों में शैली की दृष्टि से तीन भेद हैं—(अ) केवल ये तीन रेखाओं द्वारा आकृतियाँ, मानो दो-एक सूती

तकङ्गिया लड़ी कर दी गई है, आयोंत् इनमें नौहाँ वा मोटाँ नहीं दीखती। (था) चौलूदे वह बाले व्यक्ति, सारा शरीर परी समांतर रेताओं से भरा है। (इ) उपसुंक प्रकार, परम्परा सारा शरीर आड़ी और बेड़ी तिरछी रेताओं से भरा है।

मानिकपुर द्वेष में, खुले में, गेह से बनी आकृतियाँ हैं। एक में चिना पहिए, बाली बलगाड़ी और तीन घोड़े हैं।

तिहनपुर में प्रायः फचास ऐसे चित्र मिले हैं। इनमें जीवित आकृतियों के अलिरिक कुछ अमृतं मावनाओं के प्रतीक भी हैं। पश्चिम में, संड क्षेत्र उठाए दाढ़ी, लम्बी सींग वाला रोएंदार बन्तु, औहर दृश्य किसमें शुकर और साही भी है, अरने भैंस पर बरबो से आकर्मण करते व्यक्ति, उल्लेखन हैं।

महादेव पर्वत और गी में प्रायः फचास चित्रित मुकाएँ, मिली हैं, जिनका लेन्ड्र पचमड़ी है। शिकार के दृश्यों के अलिरिक, दैनिक जीवन के भी कई प्रतंग मिले हैं, यथा शहद एकत्र करते व्यक्ति, गार, चराते व्यक्ति आदि। इस शब्दार इनमें जीवन बहुत चित्रितता के साथ परिलक्षित होता है।

बाल ही में गाँड़न नामक प्रतिद्र निधान ने इन चित्रों का काल बहुत परकती लिंद करने का प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से सबसे बड़ी कठिनाईँ यह है कि आदिम जातियों आब भी उसी प्रकार के अध्या उसी शैली के चित्र बनाती रहती है। संयोगवरा, जिन-जिन जैजो में ये चित्र मिले हैं, उनके निकटवर्ती प्रदेशों में ऐसी जातियाँ बहनान हैं।

इस प्रकार, इन चित्रों के समय निर्धारण में बहुत कुछ महायता, उनमें निर्दित उपादानों के द्रारा सम्भव होती है। संयोगवरा, भारत के इन सभी स्थलों में एक भी ऐसा नहीं जहाँ साथ में उत्तर-पश्चात् अध्या नववापाणा तुग के आयुष वा अन्य किसी प्रकार के निह मिले हैं। गाँड़न के मत में ये चित्र दूरी शरीर दें० पूर० के पहले के नहीं। दूसरी ओर ये दूसरी सब की प्रारम्भ जातियों वाले और कुछ तो पूर्व मणकाल के हैं। कुछ चित्रों के आयुष कल्प ऐसे ही हैं। कहीं कहीं लारोड़ी लिपि के लेख हैं।

कम से इन चित्रों में चित्र समाव का दर्शन होता है, उसमें मानव अपने लम्हायों में रहनेवाला कृषक अध्या पशुपालक-प्राणी है। यह स्थिति नक्षापात्र तुग के बाद की हुई।

परम्परा गाँड़न ने यह भी स्वीकारा है कि कहीं कहीं पर ऐसा चित्रसारियों के कई सार हैं एवं उनमें भिन्न-भिन्न अंकन शैलियाँ हैं। ताप ही, यह भी न भूलना चाहिए कि एकाथ स्थलों पर बहुत ही ग्राचीन आयुरों के अंकन हैं।

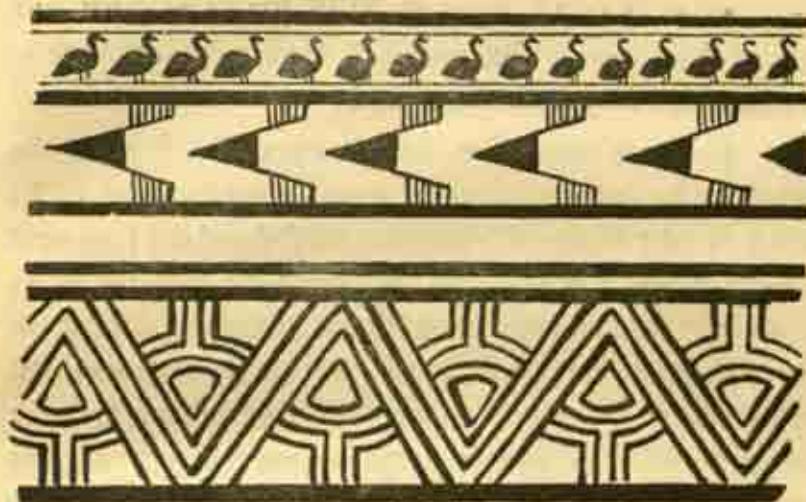
सेद है, भारत में श्राद्धिम चित्रों की पूरी तौर से खोज नहीं हुई है। अतएव यह शास्त्र बहुत कुछ अधृता है। इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इन चित्रसारियों का उद्गम नव प्रापाण सुग की चित्रसारियों से है।

स. ई० प०० ईसी भूमि सहस्राब्दी में नीन के पीत नद से लोहर लघु पश्चिमा तक और इधर भारत तक एक ऐसी मानव सम्पत्ति फैली हुई थी जिसे आजकल के पुरातात्ववेत्ता फ्राई मिट्टी के रंग वर्णों की सम्पत्ति कहते हैं। यह प्रत्यगीतिहासिक काल कहा जाता है, जब मानव सम्पत्ति का इतिहास, जिसका उद्गार अभी तक की खोज से नहीं हुआ है, प्रारम्भ हो चुका था।

उक्त लैपों में जो मानवसम्पाद रहते थे उनके अभिकलन में तथा सम्पत्ति की छन्द बातों में जाहे जिसी भिन्नता रही है, किंतु इस बात में वे एक ये कि वे अपने पकाई मिट्टी के वर्णों की बड़ी सुन्दर तरहों से अलंकृत करते थे। इन तरहों में से कितनी तो ऐसी है जिनमें कला अपनी आरम्भिक अवस्था में है। जिन्हुंने अनेक ऐसी भी हैं जो आब के तरहों से किती बात में पिछड़ी नहीं है, कुछ तो ऐसी हैं जो एक पर आगे बढ़ी हैं।

भारत में इस कला के प्रतिनिधि नाल (चलूचिस्तान) तथा लिघ कॉठि के मोरण जोश्हुरी, हड्डा और चानू, दहो, पूर्वी पंचाब के साह एवं काठियावाह के लोधल नामक स्थान में पाए गए मिट्टी के वर्णों हैं। ऐसा अनुमान होता है कि यह संस्कृति गंगा-यमुना और नर्मदा के कौटों तक फैली हुई थी। इन वर्णों में से कुछ तो यहस्ती के कामों में आते थे और कुछ में शब गाहे जाते थे। इन्हें देखने से जान पड़ता है कि उन जातियों का कला प्रेम इतना बड़ा हुआ था कि वे अपने रोब के चरते जानेवाले पात्रों को भी सादा न देख सकते थे एवं कला उनके जीवन ही नहीं, मरण तक की संरिनी थी।

इन पात्रों पर जी तरहों में ज्ञामितिक आकृतियों की अर्थात् सरल रेखाओं, कोणों, वृत्तों और वृत्तारों से बने ब्रलंकरणों की अधिकता है। इनके लिना पूलों, परियों और चूपकियों की आकृतियों का भी उपयोग किया गया है। मुख्यतः पश्चिमियों की आकृतियों से ही इस कला की आरम्भिकता प्रकट होती है। इन तरहों में से कुछ ऐसी हैं जिनकी परम्परा फिर से चलाने की आवश्यकता है, उनके सौन्दर्य के कारण। (आकृति १,२)



आकृति—१ मोण्ड जो दड़ी के मिट्टी के बर्तनों पर की रंगाई



आकृति—२ हड्डपा के रंगे मटको यर के तरह

अभी तक इस सम्भवता के इतिहास का पता नहीं लगा है। फिर भी येसा समय नहीं कि वहाँ की लुप्त सम्भवता का हमारी सम्भवता से कोई संबंध न रहा हो। उस संस्कृति का दायर हमारी संस्कृति में निश्चिन्त रूप से चला आ रहा है।

६३. चित्र के प्राचीन उल्लेख—गृह्णेद (१। १४५) में चमड़े पर बने अभिनि के चित्र की चर्चा है। इससे हमारी चित्रकला की परम्परा उस काल से प्रमाणित होती है। पाणिनि ने संधि-राज्यों (पंचायती राज्यों) के अंक और लक्षणों की चर्चा की है। इन लक्षणों से उन राज्यों के चित्रों का मठलन दै ओ पश्च, पश्ची, पुष्ट, वा नदी, पर्वत आदि होते थे। इसी प्रकार उन्होंने पश्चिमी को निहित करने के लिये कुछ लक्षणों की चर्चा की है। ये सब लक्षण चिना रेखांकण (ड्राइंग) के नहीं बल उक्तते। अतएव पाणिनि के समय में भी चिनका काल कुछ चिदान दै० पू० द्विंशती शती और कुछ दै० पू० ४-५शती शती मानते हैं, जिन्होंने काल पर्याप्त प्रचार रखा होता। तुद के समय में चित्रकला का इतना प्रचार या कि उन्हें अपने अनुजायियों का उनमें न प्रवृत्त होने की आशा देनी पड़ी। इसी-इसी शती दै० पू० के चौद अन्य चिन्ह-सिटक तथा येर-येरी गापा में चित्रों का उल्लेख है किन्तु उस समय के नमूने अभी तक नहीं मिले हैं। केवल एक नमूना मिला है जो न मिलने के बावजूद है (६४)। एन्तु दै० पू० २८शती शती और उसके बाद से चित्रों के उल्लेखों और नमूनों की संख्या बढ़ने लगती है। उनकी चर्चा में प्रवृत्त होने के पहले, यहाँ पर योङे में आपने यहाँ के चित्र-विषयक सिद्धांत, चित्रों के भेद एवं उनका उद्देश्य बता देना आवश्यक है।

६४. चित्र के छः अंग—शास्त्रावल के कामसूल पर यशोधर नामक एक प्राचीन चिदान् की टीका है। उसमें चित्र-कला की व्याख्या करते हुए उसने पहले का श्लोक उद्धृत किया है जिसमें चित्रकला के छः अंग बतलाए गए हैं, तथा—१—हास्मेद २—प्रमाण ३—भाव ४—जात्रण्य-योवना, ५—सादृश्य तथा ६—वर्णांकामंग। इन छः अंगों की व्यक्ति व्याख्या इस प्रकार की बा सकती है—

१—हृपभेद—हर प्रकार की आकृतियों और उनकी विशेषताओं का विभेद। इसमें मानव-आहृति के लक्षण तथा अभिवात मी सम्मिलित हैं। लक्षण से तात्पर्य हिंदू सामुद्रिक की उन विशेषताओं से है जिनके होने से मनुष्य राजा, महापुरुष, योगी वा योद्धा इत्यादि होता है।

२—प्रमाण—इस सुगल शैली के मारतीय चित्रकार अंग-कद्र वा कद्र-कैंडा कहते हैं। कद्र का तात्पर्य यह हुआ कि स्त्री का सारा शरीर उसके नेहरे की नाप से सतहने से अधिक न होना चाहिए। इसी प्रकार पुरुष का अवधुने से अधिक नहीं। कैंडे का तात्पर्य यह है कि अंगों में समविमक्ता हो, यह नहीं कि अंग चुनून वही या छोटी नाक वकूल लम्ही

ना निपटी इत्यादि । साथ ही काद के अनुग्रह में वे बड़े छोटे न हों । प्राचीन चित्रकारी में देवतादि तथा उच्च एवं नीच वर्गों के मनुषों के करों का हिलाव अलग-अलग रहता है ।

३—माव—यह भारतीय चित्रकारी की रंगप्रसान विशेषता है, अतएव इस पर कुछ अधिक कहने की आवश्यकता है—कालिदास के मेघदूत का चिरही यद्ध मेष से कहता है कि संभवतः तुम मेरी पनी को नेरा भावगम्य चित्र बनाती हुई पाओगे । यहाँ माव का तात्पर्य यह हुआ कि यह अपने चिठ्ठुए हुए पनि का स्मृति-चित्र ही नहीं बना रही थी बल्कि उसकी अंतर्कृति की पहुँच (गम), उसके अंतर्नियन की दृष्टि, उसकी कल्पना की उड़ान यह की विषयमानित मानविक और शारीरिक दृश्य तक थी और उसे भी यह अंकित कर रही थी । स्मृति-चित्र और भावचित्र के इस स्वरूप में भी भीति समझ लेना चाहिए । माव-चित्र में चित्रकार (भाषुक) और चित्र के विषय (भाव) की कल्पना के द्वारा पक्षाननता हो जाती है । इस प्रकाराननता से चित्र में जो वास पैदा होती है, वही है माव । अर्थात् चित्रकार, चित्रित किए जानेवाले विषय की सम्बन्ध अनुमूलि और उसके प्रति सम्बन्ध सदानुमूलि के कारण, उसकी ऐसी आगहति अंकित करने में समर्थ होता है जिसमें वास प्रादृश्य ही नहीं अंतर्नियन का, अर्थात् स्थूल शरीर का भी नहीं प्रस्तुत स्वरूप शरीर का आलेखन भी होता है । अपने यहाँ के चित्रकारी को यह लिंगोत्तमी तक इस रूप में याद है कि— चित्र में माव रहे, बेष्टा न रहे । बेष्टा से यहाँ चेष्टित (बनाकर) का तात्पर्य है । उलाद रामप्रसाद इस अंतर की व्याख्या एक उदाहरण द्वारा किया करते थे—मान लीजिए कि राम-निषाद-मिलन का एक चित्र है । मग्दि देखने वाले पर उसको यह प्रभाव पड़ता है कि गुह सन्नी भक्ति-भावना और दीनता से भगवान का स्वागत कर रहा है कि आज मुझे भव-सामर से पार कर देने वाला आ गवा तो समझना चाहिए कि निष्कार भाव के डीक्कन में समर्थ हुआ है । किंतु यदि चित्र देखने में ऐसा लगता है कि निषाद गिरिजा कर आज-भगत तो कर रहा है लेकिन मीका पते ही वह रामनंद को मृस-मार कर निस्सा लतम कर देगा तो यह चित्र में भाव नहीं, बेष्टा हुई । अर्थात् पहले में उसकी मनोकृति का भी डीक्कन रहता है और दूसरे में केवल उसके अभिनय का । अन्य राष्ट्रों में, पहले में चित्रकार की अनुमूलि गुह की मनोकृति का साक्षात्कार करने उसे अक्ष करने में समर्थ होती है जिस दूसरे में उसकी पहुँच केवल निषाद के अभिनय या बहिर्भव तक रह जाती है ।

चित्रकार की इस भासाभिन्यकी की सहायता देखनेवाले को जो अनुमूलि होती है अर्थात् चित्रकार अपनी ऐसी कृति द्वारा दर्शक के मन में जो भावोदय करता है, वही जाहिल्य शास्त्र का 'रस' है ।

४—लालवण्य-योजना—भाव के साथ लालवण्य की योजना नी होनी चाहिए । भाव का संबंध तो अतिरिक्त विकास से है । लालवण्य भाव लीनदर्शक का लंबंजक है । इसलिये चित्र में

भाव के साथ हुनराई की सहित भी होनी चाहिए। मुगल शैली के मानवीय चित्रकार का लिंगान्त है कि शब्दीह (अक्षिचित्र) न्यूनतर होकर मिलनी चाहिए, अर्थात् शब्दाहत जाने न पाये, साथ ही उसने सुन्दरता भी पैदा हो जाय। यही है चित्र में लालरप-गोड़ना। शकुन्तला से जात होता है कि गिलौरीं को कालिवास के समय में लालरप कहते थे (शकुन्तलाकरण्य वानर)। इसका लालरप यह हुआ कि शकुन्त पची बितना सुन्दर होता है उससे भी अक्षिक्ष सैन्धर्ण लिलौरे में होना चाहिए तभी वह कलामक कृति हो सकता है। लालरप-गोड़ना के लिये चित्र में समुचित निवेश भी होना चाहिए, अर्थात् चित्र में आकृतियाँ इस प्रकार ठीक ठिकाने वैठाई (=उडाई) बार्थ कि उसमें प्रभाव एवं रमणीयता उत्पन्न हो।

५—चाहश्य—चित्र काल्पनिक हो वा सत्य, उसे ऐसा होना चाहिए कि देखनेवाला चित्रस्थ व्यक्ति को तुरन्त पहचान ले (§ २२ क ७)। मानवीन ग्रन्थों में चित्र द्वारा उसके विष्व के पहचान लिए जाने की चर्चा प्रायः आती है।

६—बर्णिकार्यमंग—रंगों का हिताच। किसी चित्र में रंग बटकर लगाते अर्थात् एक दूसरे से मिल होते हैं, किसी में मिलते छुलते रंग लगाते हैं, किसी में बुद्धुदाते रंग लगाते हैं और किसी में बुरे हुए। लिन्टु किसी अवस्था में विरोधी वा बेबोड़ रंगों का प्रयोग न होने पाये कि उसकी कामेवी असंतुलित हो उठे। कलाकार को ऐसे दोष बचाने चाहिए और चित्र के विषयानुकूल रंग का यथोचित प्रयोग करना चाहिए।

६५. चित्रों के प्रकार—विश्वन मेद के अनुसार प्राचीन काल में अप्से वहाँ मुख्यतः तीन प्रकार के चित्र बनते थे—

१—भित्तिचित्र, २—चित्रपट, और ३—चित्रफलक।

१—भित्तिचित्र, जो दीवारों पर बनाए जाते थे एवं विनका विशेष विवरण आगे अवक्षेत्र की चित्रकली के वर्णन में मिलेगा (§§ १४—१६)।

२—चित्रपट, जो कमड़े पर और सम्पत्ति: चमड़े पर भी बनाए जाते थे और लपेटकर रखे जाते थे एवं कभी कभी दीवार पर टॉरि भी जाते थे।

३—चित्रफलक, जो लकड़ी, कीमती पत्तों और हाथीदर्ता, पर बनाए जाते थे।

१—आहुगानिल्लान में हाथीदर्ता के कुछ उल्कीणों प्राचीन मूर्ति-कलक मिले हैं, जो मारत के बने हुए हैं; शुगकाल से लेकर गुगकाल तक वहाँ गए थे। “इनमें होपेली से कुछ कम बड़े हाथीदर्ता के फलक पर दो स्त्रीचित्र अक्षित हैं। वे उल्कीणों नहीं हैं। इनमें सिर्फ चारीक रेखाएँ ही लोटी गई हैं। सम्भव है, शुरू में इनपर रंग भी रहा हो। + + इन चित्रों में अवक्षेत्र के उत्कृष्ट स्त्री-चित्रों का पूर्णामास मिलता है।”—राहुल, सौचियत भूमि, पृ० ७५०

इनमें से ११वीं, १२वीं शती से पूर्व के कल मित्तिचित्र के नमूने अब प्राप्त हैं। ११वीं, १२वीं शती से चित्रित गालपत योधिर्याँ और उनके द्वारा उभरवाले पटरे मिलने लगते हैं। चित्रपट तथा मित्तिचित्र वीं पश्चा अभी तक तिक्ष्ण तथा नेपाल में बहित है। चित्र कलक की परम्परा ग्रन्थ के चित्रित पटरी के कल में रह गई है। भारत में भी जल्लम सम्प्रदाय के मंदिरों में 'मृति' के रुपे चित्रपट टौंगने की पश्चा है जिसे पिछवाई कहते हैं।

चित्रों के उक्त प्रकारों के धूलि चित्र भी उस समय बनते थे जिनकी विशेष आवकल की चाँची (मराडी—एँगोली) है। इनमें माँति माँति के रंगों के चूर्ण को जगीन पर भुख कर आकृतियाँ—मुखस्तः आलोकारिक—अंकित की जाती हैं।

मुगल काल में विष्णु प्रकार अनेक चित्रों वो एक चिह्नद में चौर देते थे अथवा आवकल अनेक फोटोआप्टो का एक अलयम बना लेते हैं उस प्रकार का जोड़े चित्राचार भी जगीन काल में होता था [₹ २८ ख ५] ।

६६. चित्र के प्रयोगन—जार्मिक अभिलक्षि के द्विवा प्राचीन काल में चित्रों के मूल्य उपरोक्त है जान पड़ते हैं—१—ऐतिहासिक इस्यों का संरक्षण, २—जीवन की घटनाओं का संरक्षण, ३—मृत व्यक्तियों की आकृति का संरक्षण, ४—सों का उद्दीपन, ५—प्रेम की अभिलक्षि, ६—गति, पक्षों का चुनाव तथा विद्याइ-संस्कार की संरक्षण एवं ७—जीवों का अलंकरण। इनके द्विवा लकेत चित्र भी बनते थे जिनका उपयोग पूजा इत्यादि जार्मिक-चित्रों के अन्तर्गत रखना द्वारा। उन चित्रों ने मूर्तीयों न बनाकर उपासन देवता के प्रतीकों से उनकी अभिलक्षि कर दी जाती थी।

दूसरों के जीवों में उल्लेख रखो के चित्रों का बनाना वा रखना अमांगलिक कहा गया है। ऐसे चित्र के काल राजसमाजों वा देवमन्दिरों में बनते थे अर्थात् ऐसे स्थान उस समय के सार्वजनिक चित्रालय में।

६७. जोगीमारा गुफा के मित्तिचित्र—मित्तिचित्र के सबसे प्राचीन उपलब्ध नमूने सरगुजा रियासत की जोगीमारा गुफा में हैं। इस गुफा के अभिलेखों की लिपि डा० ब्लाउक के मत से इसी शती ई० पू० की है, बड़ापि कुछ निदान उसे तनिक पीछे की मानना चाहते हैं। इस गुफा के पारों में ही सीताबोगा गुफा है जो एक ब्रेकामार (नाटयशाला) है। फहले जोगीमारा गुफा इस प्रे-जागार की नटियों का विभास एवं समझी गई थी, किन्तु उसके अभिलेख का अब जो अर्थ किया गया है तदनुसार वह वर्णा का मंदिर है जिनकी मेवा में एक देवदर्शिनी (जिसे देवता प्रत्यक्ष दर्शन देता था) रहती थी। इसी गुफा में उसी के रूपमें (इसी शती ई० पू०) वा उसके बाद के चित्र भी अंकित हैं जो ऐतिहासिक काल की भारतीय चित्रकला के प्राचीनतम उपलब्ध नमूने हैं। किन्तु उन चित्रों की सुन्दर रेखार्थ उनके ऊपर फिर से लीचि गण भद्रे चित्रों में छिप गई है। वने खुबे अंशों से अनुमान होता है कि वहाँ के कुछ चित्रों का विषय जैन था।

६८. शुग-काल—रसी शती ई० पू० के बाहूमय से जलता है कि उस समय हमारे जीवन का चित्रकला से धनिष्ठ एवं गंभीर संबोध या। उत्तरू की अनुपस्थिति में चित्र बनाकर उनका विवाह-संस्कार संपन्न किया जाता है एवं ऐतिहासिक घटनाओं के चित्र बनाकर रखे जाते हैं। लोगों की इन चित्रों की लृप्तियाँ—शणाहिता, नावोपासना आदि की निरापद है और वे इन चित्रोंसहित का विवेचन करते हैं। इसी काल के महाभाष्य में कृष्ण-लीला के चित्रों के प्रदर्शन की चर्चा है।

जातकों ने, मुख्यतः उम्मग जातक में चित्रों का बड़ा व्योरेवार वर्णन है। किंतु जातकों का समय बड़ा संदिग्ध है। कुमारस्वामी के अनुचार उक्त जातक का समय कुमार काल से पूर्व अर्थात् ईसवी सन् के पहले है। इसमें समामंडपों एवं प्राचादों के चित्रों का उल्लेख है। चित्रोपतः एक चित्रित मूर्त्य के विषय में लिखा है कि चतुर नितोरो ने उसमें ईंद्र के वैष्णव, सुमेह-मंडप, समुद्र, चारों महादीप, हिमालय, अनवतम, सूर्य, लंदमा, चारों दिक्षपाल सरोवर एवं सातों भूक्तनों के चित्र बनाए थे जिनके कारण यह देवतमा सुखमी-जैती शीखती थी।

६९. आंग्र-सातवाहन एवं पश्चिमी चत्र—कालीन अवंता^१ के चित्र(१०० ई० पू०-२०० ई०) —ऐसी आशा करनी चाहिए कि हममें से अविकाश ने कम से कम इतना तो अवश्य सुना होगा कि अपने देश में कहीं अवंता नाम का एक स्थान है जहाँ प्राचीन चित्र दर्शन हुए हैं। किंतु किन्हें इतना ही जान है उन्हें इसका गर्व नहीं, लवा होनी चाहिए। अवंता के चित्र विश्व मात्र की चित्रकला की सर्वथेषु कृतियाँ हैं—यह न समझना चाहिए कि वे हमारे देश में हैं और हमारे पुरस्तों की यानाँहुई हैं इत्यलिपि यम ऐसा कह रहे हैं। संसार के बड़े से बड़े कलामर्मणों को यह बात माननी पड़ी है। अस्तु, अवंता का अधिक परिचय आगे दिया जाएगा (६१२)। यहाँ केवल इतना कहता है कि वहाँ की द्विंदी तथा १०वीं शुद्धा में दूसी शती पूर्व से नींधी शती ई० तक के कृतियों स्थानित चित्र बचे हैं। इनमें वहाँ के गुप्तकालीन

१—इन सब चारों का जला भास के नाटकों से जलता है—‘प्रतिशायींभवरायण’ के अंत में उच्चेन का राजा चंद महासंल श्रपणी रस्ता वासपदता और वस्तु के राजा उदयन का चित्र-फलक रथकर देवादिक कुल पूरा करता है, क्योंकि वासपदता उदयन के संग यहले ही वस्तु नहीं गई है। इस कथानक के लिये देखिए, नां० प्र० ४० (नवीन) भाग ४, १५८-१७५। ‘दूरतपात्र’ में लघु कौरवों के यहाँ संघि का उद्योग करने के लिये कृष्ण आनेवाले हैं तो उनके अन्युत्पान से बचने के लिये दुर्योधन द्वैपादी-चौरहरण का चित्र मंसाकर देखने लगता है और उसकी भाव-उपसननता वर्ण-आठवता की प्रशंसा करने लगता है; देखिए वहाँ, पू० १५६-१६२। ‘प्रतिशायींभवरायण’ के तीसरे श्लोक में भी वर्णयोजना के निरर्थक्या की चर्चा है।

२—स्थानीय उच्चारण ‘अविठा’।

चित्रों की सुधरता तो नहीं है किन्तु वे जानदार हैं। हाँ, इनकी सुखमुद्राएँ, एवं हस्तमुद्राएँ, मालवीन हैं और इनमें गुप्तकालीन गठे हुए, संपूर्जनों का अभाव है। रंगों के चुनाव में भी परवर्ती चित्रित अस्त नहीं दीती जाती।

एक राजा वा वक्त का उदाहरण चित्र उस काल की शौनकी, मधुरा एवं भरहुत की मूर्तियों से बहुत मिलता हुआ है। छातें जातक का चित्रण भी इनमें हुआ है। वयस्पि उसमें उत्तरा भाव तो नहीं है जितना अजेता के इसी चित्रके गुप्तकालीन चित्र में है (§ १६), फिर भी इसमें गोमीर्थ उनसे अधिक है। तनिक परवर्ती कालवाली भावान् बुद्ध की शही और दैरी हुई कई लिखियाँ हैं। जिसमें कुछ बोधार्थी शैली वाली युद्ध मूर्तियों से उद्घासित है। एक राज-समाज का चित्र भी मुन्दर है। इन गुप्ताओं के चित्रों में पुरुषों के सर पर कम्हासे, जिनमें आगे की ओर एक पोटली सी होती है, और भारी भारी आभृण चिलकूल भरहुत-मधुरा शैली के हैं। इन चित्रों के देखने से जान पड़ता है कि चित्रकला उस समय कामों उन्नत हो चुकी थी। उसमें कहीं से आमभिकता नहीं है। अंकन में विवान-संबंधी उल्लेखों के कारण कारीगरों को जरा भी अटक-भटक नहीं हुई है। उनकी रेखाएँ युक्त और चिना ढूट की हैं। यह कला सबीच साथ ही रमणीय गुप्तकालीन कला की जन्मदाती होने की पूर्ण अधिकारिता है।

§ १०. गुप्त-काल (३२०—५२० ई०) — रसीदी शती के बीतते न बीतते भारत के स्वर्ण दिवस का अरुणोदय होने लगता है। ३८० ई० के बाद कुपालों से आपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये वादवंश के नाग ज्ञातिय नमंदा के दक्षिण जंगलों में जा बसे थे। वहाँ रसीदी शती के मध्य [लग० १५०—१७० ई०] में भवनाम नामक राजा हुआ। उसने वहाँ से बढ़कर कुपाल-नामावर के पूर्वी छोर को जीत लिया और कातिपूरी [मिर्चपुर के गांव आइलिक बंसित] में आगाम राज्य स्थापित किया। फिर तो इस बंश ने कुपाल-सत्ता की रीढ़ लड़ दी। इसने वो काम बाकी छोड़ा। उसे इसके उत्तराधिकारी बाकाटक बंश ने पूरा किया। और रसीदी शती की समाप्ति के पहले कुपालों के उत्तराधिकारी ज्ञातों तक की सत्ता निःशेष हो गई। इस शीघ्र सारें-प्रयाग प्रदेश में एक नई महाशक्ति का उदय हो रहा था।

२७५ ई० के लगभग वहाँ गुप्त नामक एक राजा या चिक्के यौव चम्बुषम [३१६—३४० ई०] का विवाह लिन्दवि [लिरहुत] के सणातन शासकों को एक कन्या से हुआ। यह संबंध गुप्तवंश के उल्लंघन का एक मुख्य कारण हुआ। उसका पुत्र समुद्र गुप्त हुआ [लग० ३४०—३८० ई०]। उसने भारतवर्ष विजय करके अश्वमेष वक्ष किया। भारत में उसका साम्राज्य स्थापित होने पर कालुल और तुलारिस्तान के कुपालवंशी राजा ने गिरहल आदि रुच भारतीय द्वीपों के राजाओं ने भी उसे अपना अधिपति स्वीकार किया।

समुद्रगुप्त नेता बड़ा विजेता वा नेता ही सुशासक भी था। उन्होंने संस्कृति का भी वह बहुत बड़ा प्रेरणा और उत्तराधिक था, ताकि वेदों विजाता और कविता करता। उसके दू-

बातों कवि हरियेंगा की रचना उच्च कोटि भी है। इसके बाद गुरुवंश का उत्कर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

लम्बद्वयुम का पुत्र लम्बद्वयुम विक्रमादित्य (लगा० ३८२-४१५ ई०) अप्सो पिता से भी अधिक समृद्ध, सुसंस्कृत और वैमवर्णाली हुआ। उसने शपर्मे साम्राज्य से प्राणवदयड उठा दिया था। कालिदास न भक्तः उसी के समय में थे। यह बात भारत के लिये आख्यत गौरव का था। यदि इम कहें तो न तो इसके पाले देश की इतनी उत्तमत हुई थी और न अब तक पुनः कभी, तो आधुनिक न होगी।

लम्बद्वयुम ने अपने दिवियान में वाकाटक-साम्राज्य की लोकों के बाद उसके बैदि प्रान्त का दिवियी भाग तथा महाराष्ट्र प्रान्त सत्कालीन वाकाटक-साम्राज्य ब्रह्मेन के पास रहने दिया था। इस प्रकार छोटा हो जाने पर भी वह साम्राज्य कोही समृद्ध था। फिर लम्बद्वयुम ने अपनी कृष्णा प्रभावती गुप्ता उत्तर क्षत्रियों के गोप द्वितीय ब्रह्मेन से ज्ञान ही। इन प्रकार गुप्त और वाकाटक-साम्राज्य स्वेह-जूलित हो गए। जिस समय उत्तर भारत में लम्बद्वयुम विक्रमादित्य का सुराज्य या प्रभावतीगुप्ता, अपने पति की स्त्री के कारण, अपने नाशालिङ बेटे के शमिमालकरण में उसी समय राज्य कर रही थी। इस प्रकार नाशकुतिक हाइ से गुप्त-प्रभावती वाकाटक-राज्य पर भी व्याप था।

लम्बद्वयुम के पुत्र कुमारद्वयुम (४२५-४५५ ई०) ने जालीस कर्त्तव्य किया। इस समय भी भारत में वही अमृतपूर्व शास्ति, सच्चिद और संस्कृति विद्यमान थी। कुमारद्वयुम ने जालंदा में एक महाविहार की स्थापना की थी। अग्रे जलाकर वर्षा के महान् विश्वविद्यालय के रूप में परिचालन हुआ।

विना इस नुत्तम शास्ति में उत्तर-निन्द्यामा सीमान्त पर हुए हों के बाजी बादल घिर रहे हैं। कुमारद्वयुम के पुत्र और उत्तराधिकारी समाट लम्बद्वयुम (४५५-४६७ ई०) के रूप में वह प्रलयघटा विवाह तक लगा गई। विना स्कंद ने इस दुर्दिन से देश की रक्षा की। स्कंद के बाद गुप्त वंश का प्रताप दूर हो गया। ४२८ ई० में उत्का स्थान 'अलता के नेता' सुप्राचिद नवारोधी ने लिया और देश से हुए हों का कंटक पूर्ण रूप से निकाल लेका।

५११. गुप्त-कला (लगा० ३३०-६०० ई०)—गुप्तों का कला ग्रे म और उत्कृष्ट सांस्कृतिक और उनके पुग की प्रत्येक कृति से टपकती है। उनके सामने के सिक्कों पर उनकी मूर्तियों का तथा उनके बीच की स्टनाओं पर उनके आत्माभव देवताओं का बड़ा सजीव तथा कलापूर्ण अंकन हुआ है। ये सिक्के अधिकतर सोने के हैं। इनसे बदकर भारतीय सिक्के नहीं बने। इनकी तुलना में यदि कुछ ठहरते हैं तो आकर्षण और बहारीर के आलंकृत और आकृति बातें सिक्के। गुप्तों ने अनेक सुन्दर मन्दिर और मूर्तियाँ बनवाएँ। अद्वैतीय भाव जैसे किराल

लोठ लड़े किए जिनकी प्रथा बीच में उठ गई थी। लोक ने भी इस प्रमोब के कारण अद्वितीय कला-कृतियाँ सजाईं। कला का यह उल्लङ्घन शुम-साम्राज्य के निषेध हो जाने पर भी लगभग भी चर्च तक बना रहा। फलतः, वहाँ तक कला का संवेद है, ३३० ई० से ६०० ई० तक वा उसके बुलू बाद तक शुम-काल गिना जाता है। अबंता का सबौल्कष चित्रण इसी काल में हुआ। यद्यपि अबंता बाकाटक-साम्राज्य में भा और शुम-मूर्तिकला भी बाकाटक मूर्ति-कला की ही परम्परा में है, किंतु शुम इतने चुरंस्काति थे और उनकी कलामिकाने ऊनी और सक्रिय भी कि उस काल की समृद्धी कलाकृति गर शुम प्रभाव मानना पड़ेगा और इसी कारण उसे शुमकाल कहना पड़ेगा। अतः अबंता के इस काल के चित्रों को बाकाटक शैली के न कहकर शुम शैली के ही कहना उचित है।

इस काल के बाद इमारी चित्रकला का इतिहास और उसके उदाहरण ऐतिहासिक मूर्खलालद मिलते हैं।

दूसरा अध्याय

५१२. अबंता का परिचय—सेन्ट्रल रेलवे के जलगांव और गोदावरी तथा चाचोरा-गामनेर बांध लाइन के पहुँच टेशनों से सुरामलाडूबंक अबंता तक पहुँच लकते हैं। इन स्वेशनों से फरदाएँ नामक ग्राम तक बाना होगा। उनी के निकट पहाड़ियों में अबंता के कलामंडप लिये यह है। ये बंदू राजा में हैं।

फरदाएँ से जार भील की दूरी पर पहाड़ियों में चाचोरा नदी बहती है जिसे अबंता बाते समय एक बार गार करना पड़ता है। नदी में सरीकार इतने शुमाव है कि आम एकदम पास में पहुँच जाने तक तक गुफाओं का भान भी नहीं होता। नदी का अंतिम शुमाव समाप्त होते ही प्राप्त तीन लोंग फुट ऊंचा चूलाकार द्वीपार-सा लड्डा एक टीला पहाड़ से निकला

दिलाई देता है जो एक गंगनमुखी प्राचार या लगता है। उसके बीचोबीच दालानों की एक कलार सी दिलाई देती है। ये ही अजंता की गुफाएँ हैं जो प्रवेश-द्वार से लेकर ठेठ अंत तक महिं, उपासना, पैदे प्रेम और लगन एवं इस्त-कौशल की संरार भर में सबसे अपूर्व उदाहरण हैं। यहाँ मूर्ति ('मृतिकाता' ५-८०) निव और बास्तु कलाओं में एक ही उच्च एवं पवित्र मालना सुरम्बद्ध नृत्याला के रूप में रुक्त हुई है जिसकी सफलता मंसार भर में अतुल है। एकात्म और प्राकृतिक सौंदर्य की इटि से भी अजंता अद्वितीय है। नीचे बाथोरा गदी बहती है। उनमें बड़े बड़े शिलालंड हैं। उनसे टकराता हुआ पानी गुफाओं के ठीक नीचे एक कुराड में इकट्ठा होता है। घाटी में चारों ओर हरकिंगर का बैगल है। नाथ ही और भी अनेक प्रकार के पुष्प और फल यहाँ उलझ होते हैं। इस कारण निव-निव विहिनी का एक मेला या लगा रहता है। कला की अभिव्यक्ति के लिये जिन लोगों ने ऐसे अपूर्व स्थान को तुला उनके चरणों में शुत-शत प्रणाम हैं। यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य का पूर्ण धिकास अकब्बर से दिलम्बर तक होता है।

अजंता में लोटी वही दुक्त उत्तरीय गुफाएँ हैं। इनके दो भेद हैं—एक स्तूप-गुफा, दूसरी विहार-गुफा। स्तूप-गुफा में केवल प्रार्थना या उपासना की जाती थी इसलिये वह अधिक लंबी होती है और उसके अंतिम छोर पर एक स्तूप होता है जिसके चारों ओर प्रदक्षिणा करने भर का स्थान होता है। वहाँ से दूर तक दोनों ओर लंबों की चौक रहती है। अजंता की १६वीं गुफा वहाँ की सबसे बड़ी स्तूप-गुफा है और उसका द्वार बड़ा ही मध्य एवं रम्पशीय है। विहार-गुफा भिक्षुओं के रहने और अध्ययन के लिये होती थी। ये दोनों प्रकार की गुफाएँ, और इनमें का सारा मूर्ति-शिल्प एक ही शैल में कटा हुआ है किंतु क्या मजाल कि कहीं पर एक छोटी भी अभिक लगी हो। इस इटि से सभी गुफाएँ अल्पत उत्कृष्ट हैं किंतु गुफा नं० ८ का, जो एक ही शीस फुट तक ऊंचर काटी गयी है, कीशल तो एक अचेन्ना है। प्रायः उनी गुफाओं में निव बने हुए ये जिनमें १८ी, १८ी, १६वीं और १७वीं गुफाओं के चित्रों के विशेष अंश बचे हैं। सौभाग्यवस्तु ये सभी गुफाएँ गुमकालीन हैं। रोप गुफाओं के निज अपेक्षाकृत अधिक संवित हो गए हैं—कहाँ किसी का मुन्द्रर मुख, कहाँ ल्लित द्वापर पैर, कहीं बोडे हाथी वा उनके साथों के अंग रसायनि बन रहे हैं।

६३. अजंता का पुनः आविष्कार और जीर्णोद्धार—हजारी चरच के अज्ञातवास के बाद संसार को अजंता का फिर से पता १८२४ ई० में लगा जब जनरल सर जेम्स ने जाफर उसे देखा और उसका संक्षिप्त लिखित गरिन्यप रायल एशियाटिक सोसायटी द्वारा दिया। १८४३ ई० में मार्टिन यास्तु और मूर्ति के प्रेमी कर्णुलन ने उसका विशद विवरण लिखकर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। फलस्वरूप १८४४ ई० से १८४७ ई० तक ईस्ट इंडिया कंपनी ने वहाँ के चित्रों की करीब लीस प्रतिलिपियाँ तैयार कराई जो इसलैंड के बेलैस में प्रद-

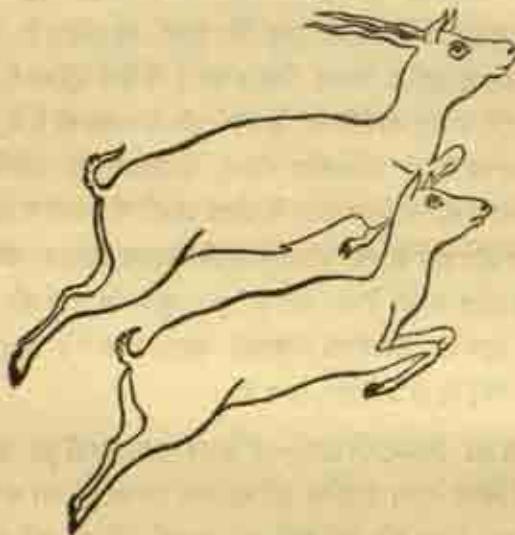
हिंत की गई। किन्तु अमाभ्यवश रेवदद १० में आग लग जाने के कारण वे जल गई। पांदि वे बच्ची होती तो आब अजंता के चित्रों का ऐसा बहुत सा अंश हमें उपलब्ध होता जो तबसे, कहुकर ना दूसरी तरह नष्ट हो गया है। १८७०-१८८१ १० में बंधौ शाटू स्कूल के प्रिमिपल ग्रिनिट्स ने स्कूल के विवार्थियों की सहायता से पुनः वहाँ की प्रतिकृतियों तेयार की जो वे वही चित्रों में, विवरण के साथ, प्रकाशित की गईं। ये चित्र भी लंदन में भारत-भैंशी के इफ्टर में भेज दिए गए, किंतु उन्हें भी ईगलैंड का प्रवास न रुचा और ये भी भरम हो गए। इसके बाद १८१५ १० में लेडी-हेरिष्पम कई भारतीय चित्रकारों के साथ—चित्रमें भी नन्दलाल बोस भी में—वहाँ गईं और अनेक काटिनाइयों में उन्होंने वहाँ के किलने ही घटनामूलक चित्रों की नकल करवाई। लंदन की ईडिया लोगोंटीने निजाम सरकार की सहायता से इन प्रतिकृतियों का एक संस्करण निकला। इसी समर से निजाम सरकार ने इन गुफाओं की और ध्यान दिया। फलतः वहाँ जो कुछ बचा है उसके नीचाया और देखने का बहिर्या से बहिर्या प्रवर्ध हो गया है। भी नैयद अहमद वहाँ के अध्यक्ष नियुक्त हुए। वे लेडी-हेरिष्पम के चित्रकारों के द्वारा में थे। अध्यक्ष होने के बाद उन्होंने वहाँ के चित्रों की जो नकल की है वे सबसे प्रामाणिक और तदूत हैं। १८१६ १० में श्रीभूनरेश भीमान, बालासाहब पंत प्रतिनिधि ने भिज-भिज प्रांत के अनेक चित्रकारों से, वर्तमान समय के समस्त साधनों की सहायता से, गुफा के कुछ चित्रों की नकल कराई और अप्रैली तथा मराठों में उनके संस्करण निकाल कर उन्हें अपेक्षाकृत मुलम कर दिया। भारत सरकार ने भी वहाँ के कुछ नुज़म पोस्टकाई और चार चित्रों में, बड़े आयोजन के साथ एक प्रामाणिक चित्राकली प्रकाशित की है। हाज़िर में ही, यूनेस्को ने अजंता के प्रमुख चित्रों को भी प्रकाशित किया है।

॥ १४. अजंता का चित्रण-निधान—यह विभान सूख्म रूप में इस प्रकार था कि दीवार या पाटन में वहाँ चित्रण करना होता था वहाँ का पत्थर टप्पर कर खुरदरा बना दिया जाता था जिस पर गोपर, पत्थर के चूर और कमी कमी भान की भूसी मिले हुए गरे का लेवा चढ़ाया जाता था। यह लेवा चूने के गतले फलस्तर से ढाका जाता था और इस पर जमीन चाँचकर साला रंग की रेताओं से चित्र टॉपे जाते थे जो रंग लगाकर तेयार किए जाते थे। अनुमान होता है कि मूर्तियों पर भी ऐसा ही सत्ता फलस्तर करके रंगाई जी हुई थी।

॥ १५. अजंता के गुप्त-शैली के चित्रों की मुख्य विशेषताएँ—इन चित्रों की तेयारी की खुलाई (रुपरेखा) बहुत बोरदार, बानदार और लोचदार है। उसमें माच के साथ साथ चासविकला है एवं उसमें चौंक की तथा उससे उत्तरना जारी और ईरानी चित्रकारी की वे स्पाटेवली कोण-बार रेताएँ नहीं हैं जिनका उद्देश्य माच की अमल्यकि के बदले अलंकरण ही होता है। रंगों की योजना प्रदीपानुकूल, वहाँ आदृय और चित्राकली

है—कहीं परिके वा बेदम रंग नहीं लगे हैं। याचशक्तानुसार उनमें विविधता भी है। यद्यों नित इलका साथा लगाकर चित्रों के अवलंबों से गोलाहैं, उभार और गहराई (ढोल) दिखाई नहीं है। हाथ-पाँव, आँख और छंग-भंगी मापा से, अर्थात् माप बताने की भाषा से, दूसरे शब्दों में हाथ की मुद्राओं से, आँख की चित्रबनों से और छंगों के लचाब तथा ढक्का से व्यक्तिगत माप व्यक्त हो जाते हैं।

यद्यपि इन चित्रों का विषय सर्वथा शारीरिक है और इनमें वह विश्व-कक्षणा आथ से हस्ति तक पिरोंदे दूड़ है जो भगवान् बुद्ध की मावता का मूर्त्ति रूप है, तिर भी जौकन और लमाज के सभी अंगों और पहलुओं से इनकी इतनी प्रक्तानता है कि वे सभी अंग और पहलु इनमें पूरी माफलता से अंकित हूप हैं। इतना ही नहीं, सारे चराचर जगत् से पहाँ के कलाकारों की पूर्ण बहानुभूति है और उन सबको उन्होंने पूरी माफलता से अंकित किया है (ओहनि—३) ।



ओहनि—३

मनुष्यों के हाथों के मेड और उनका आमिजाल्य दिखाने में विचक्कारों ने कमाल किया है, अर्थात् मिट्टुक ब्राह्मण, और लैनिक, देवोपम मुन्दर रावणरिवार, विश्वसर्वीय कंचुक और प्रतिहार, निरीह सेनक, कुरु व्याप, निर्दय वचिक, प्रयात तपस्यी, साधुवेशापारी धूते, दुलोगना, वारकनिता, परिचारिका आदि के भिज भिज मुख-सामृद्धिक और अंगकद की कलाला उन्होंने कही मार्मिकता से की है। प्रेम, लज्जा, इर्ष, हात, शोक, उत्साह, कोष, वृणा, मय, आधर्व, विता, विरक्ति, मिसर्संगता, शान्ति आदि माप भी इनी प्रकार कही लक्षी से दरसाए गए हैं।

यदि कलाचंत ने सौन्दर्य की पूर्ण अभिलक्षि की है तो विषय और मर्यादक का आसेलन मी उसी बहानुभूति के साथ किया है, अर्थात् उसके लिये सुख और दुःख दोनों ही

में समान लोन्दर्य है। इस काल में औल और लोकुमार्य दोनों ही की, समान चक्कलता के साथ व्यंजना हुई है। उससे चिंशिष्ठ वात यह है कि इसमें कहीं से भी अनावश्यक अलंकरण कु नहीं गया है; कांग चित्रस्थ पात्रों की चेशभूषा में और व्या शब्दहर (सिंच-स्थान) की धूर्ति के लिये जो तरहें बनी हैं, उनमें।

तरहों की तो अजंता खान है। उत्तो में आकाश के अभिप्राय वाले फुल महाकमलों के नौके, जिनके चारों कोनों पर, दिगंबरों में अंतरिक्ष-विहारी देवतोंनि कोनिएं बने हैं, पचासों प्रकार के होंगे। कमल के बंगल भी बेले (आकृति-४), कमलों की मुरियाँ, आलंकारिक पत्ते की पूँछ वाली गौछों की लपेटदार बेल (आकृति-५), गोमूत्रिका, मालर, बंदनबार, आदि न जाने कितनी प्रकार की तरहों से यह चित्र-सारी मरी है। उनमें स्थूल पत्र खब मानवों; कुमार भौड़ियों, हाथों, बेल, इस आदि पशु-पक्षियों; आम इत्यादि फलों; रेखाओं और उत्तों की अवामितिक आकृतियों का स्पृश स्थान पर उपरोग किया गया है किन्तु प्रभावता कमल की है जो अनेकरूप होकर सर्वत्र खान है।

§ १६. अजंता के गुम शैली के कलिपय चित्र—यहाँ गुफा में की एक दालान की समूची दीवार पर प्राप्त: बारह फुट ऊंचा और आठ फुट चौड़ा मारन-विषय का चित्र अंकित है। 'मार' (=प्रलोभन, कामदेव, शैतान) की सेना भगवान् कुद की पेरे हुए है। सेना में भगवान् को छाने, कुद करने, जुख तथा लुध और साम करने के लिये विकटातिविकट मूर्तियों से लेकर अनेक कामिनियाँ तक बनी हैं जो अपने अपने उपायों से भगवान् को, जो मध्य में स्थित है, विचलित करने में प्रयत्न है किन्तु वे सर्वथा आनन्दनिरत हैं। उनके लिये चारों ओर कुछ हैं जी नहीं वा ही जी नहीं रहा है।

इस गुफा ने केवल नंधा के समय दृग्य की अविद्या किरणों प्रवेश पाती है। अतएव यहाँ आधर्य होता है कि यहाँ ऐसे ऐसे चित्र कैसे अंकित किए गए होंगे।



आकृति-५



आगमिक

इसी गुफा में नपेय आतक चिह्नित किया गया है। इस जातक की कथा है कि बोधिसत्त्व ने किसी समय नागराज का बन्दू लिया था और संयोगशय बंदी होकर वार्षी की हाट में बेलने के लिये लाए गए थे। उन्हें उस परिस्थिति से छुटाकर काशिराज अपने यहाँ ले गए और उनके सारे परिचार को भी निर्मलित किया। इसका चित्र भी उक्त गुफा में है। एक ओमारे में नागराज तथा काशिराज एक राजासन पर आवींत हैं। चारों ओर राज-महिलाएँ तथा राज-परिकर थेरे हुए हैं। नागराज काशिराज को उपदेश दे रहे हैं। चित्र के प्रत्येक वर्षका का माघ और मुद्रा वड़ी सफलता से अंकित है एवं उसका संयोजन गया हुआ है।

यहाँ पर अबलोकितेश्वर का विशाल चित्र है। दायें हाथ में नील कमल धारण किए, किंचित् विमर्श-मुक्त मगवान् तात्त्विक विनार में मम है। अनेक समस्याएँ उनके हृदय में आंदोलित हो रही हैं। विश्व-करम्पा से वे ओत-प्रोत हैं। उन भावों को चित्रकार ने पूर्ण सफलता से उनके मुख-मण्डल पर लिखा है। देव-सुहिं, मानव-सुहिं, विशेषतः उनकी अपीलिनी वशोभरा पर उनके इन भावों का जो प्रभाव पड़ रहा है वह भी वही कुशलता से दिखाया गया है।

१६ वीं गुफा के दो चित्र उल्लेखनीय हैं—गहरी रात में मगवान् बुद्ध यह-त्याग कर रहे हैं। वशोभरा और उनके संग शिशु राहुल सोया हुआ है। पास की परिचारिकाओं पर भी निद्रा ने अपनी मोहिनी ढाल रखी है। इस हृदय पर एक निगाह ढालते हुए बुद्धदेव अंकित किये गये हैं। उस दृष्टि में मोह-ममता नहीं, प्रलुब्ध उसका अंतिम त्याग है। याँ इस कृति का रहस्य है।

एक स्थान पर एक विश्वाकुला राजकुमारी का चित्र है। उसके उपनार की उपाय वार्ष हो गए हैं। मुमुक्षु की अवस्था और आस-पास वाली की विकलता इर्षण को द्रवित किए चिना नहीं रहती।

अजेता की १७ वीं गुफा के रमी चित्र एक से एक बढ़कर है। ऐसा जान पड़ता है कि नप्तसे चतुर मिलेरों ने इसी गुफा में अपनी कला दिखाई है।

वहाँ पर एक तो माता-मुख का प्रसिद्ध चित्र है (कलक-३); जिन्हें इससे चित्र के सिव्य का आवाह ही जान होता है। वहाँ से इम इतना देखते हैं कि एक माता अपने मुख को किसी के सामने ताप्रह उपस्थित कर रही है और मुख मी अंगिल पठार अपनी मनोरथ मिदि की अमिलाभा कर रहा है; जिन् हीन है वह अक्षित्व विश्वर इन दोनों की टकटकी लगी हुई है। इन आदम-कद चित्रों के नामने एक निष्काम्य विशाल महापुरुष रिपत है जिसके हाथ में मिछा-पात्र है। बुद्धल-प्राप्ति करने पर जब मगवार् पुनः कणिलम्भ में आए तो उन्हें वशोभरा राहुल से बढ़कर और कौन भी मिछा दे सकती थी। अग्रम-समर्पण की पराकाष्ठा का यह चित्र अपना जोड़ नहीं रखता।

यहाँ लुरेत-जातक की चित्रावली भी बही सुन्दर है। योग्यित्व एक जन्म में छः दौंतों वाले श्वेतवर्ण गजराज थे। उनके दो हणिनिर्गी भी जिनमें से एक में सौतियाहाह-बरा आमाहस्या कर ली और एक राजा के घर जन्म लिया। इस जन्म में भी उसकी डाह कम न हुई और उसने व्यापों को गजराज का सिर से आने भेजा। यह जानकर वह आप व्यापों के सामने आ लड़े हुए। इससे व्यापों पर बड़ा ध्रमाव पड़ा और वे राजकुमारी को फुसलाने के लिये उनके छः दौंत काट लाए। इस बीच राजकुमारी के मन में प्रतिष्ठात हुआ था, तो दौंतों को देखते ही वह मृदित होकर गिर पड़ी। अन्त में लारे रहस्य का भेदन होता है और गजराज ज्ञान का उपदेश प्रदान करते हैं। यह समूली चित्रावली ऐसी सजीव है भानो सारा दृश्य हम आपनी आँखों देख रहे हों। कमल की माँति हाथी भी मारतीष कला का एक मुख्य अंग है। इस चित्रावली में विविध-विभ प्रवृत्त हाथी के बंगल के बंगल वा आलेखन है और ऐसा सफल आलेखन है कि अचाक् इ जाना पड़ता है। याद रखना चाहिए कि यह सारा अंकन मावगान है (§ ४ [३]) ।

इसी प्रकार यहाँ हासियों की एक दूसरी चित्रावली भी है। यह गज-जातक का चित्र है, जिसकी कला इस प्रकार है—भगवान् एक जन्म में हिमालय के श्वेत हस्ती थे। वे ही अपनी दृढ़ माता तथा अन्य पिता का पालन करते थे। प्रयास के राजा ने गजराज की प्रशंसा सुनकर फकड़ा भैंसवाया; किन्तु वे कुछ खातेन्हीं न थे। जब उनके इनित से प्रवाग के अधिष्ठित ने यह बात जानी तो उन्हें मुक्त कर दिया। शीघ्र वे अपने माता-पिता के पास पहुंचे। यह मिलन का दृश्य हासियों के कौटुंबिक प्रेम, वास्तव्य और करणा से श्रोत-श्रोत है।

वेसंतर-जातक का दृश्य मी-बड़ा मार्मरपश्यां है। इसमें एक वामप्रवर्ष राजकुमार से एक यानक बालग उसके पक्काओं अल्प-वयस्क युवक को माँग लेता है किसे राजकुमार सहृदय प्रदान करता है। प्रस्तुत चित्र में बींगोकाग किन्तु कुटिल मंगते बालग का दौंत निकालकर माँगना, अपनी पर्याकृटी में बैठे बनवाती बोलितन राजकुमार का पिना किसी लोम वा उद्देश के दरखाली यानना स्वीकार करना और भरो देहवाले भोले बालक का इस भाव से अपने पिता का मुँह देलते रहना कि यह आदेश दें और मैं उसका पालन करूँ, वारी मातुकता से अँकित है (फलक—२)। यह दृश्य पर करणा भी गहरी छाप लगा देता है।

एक अन्य जातक-दृश्य में युद्ध का प्रसंग बही सजीवता से दिखाया गया है। इस बड़े चित्र में लगभग तीन दो चेहरे आज भी गिने जा सकते हैं। प्रथेक चेहरे पर युद्ध के विविध भाव देखनेवालों को लकित कर देते हैं।

एक स्थान पर आकाश-चारी दिल्ल गाँवों के समुदाय का कुा रमणीय आलेखन है (फलक—२) ।

इस गुप्ता का सर्वेत्यानन्द का संदेश-विप्रयक चित्र भी बड़ा प्रमाणोत्पादक है। अपनी आत्मा के सहारे एक बुद्ध के बुद्ध के बुद्ध है। उसके आत्म में ही कथा कह रहे हैं, मुंह से कहने भी कोई आवश्यकता नहीं। दाहिने हाथ की मुद्रा से रहेके ही शब्दों मिल जाती है। इस चित्र की रेखा में माव और दम खम्म मरा है।

यहाँ महाइंद्र-बातक और सिंह-जातक आदि के भी उभयुक्त आलेखन हैं।

अबंता के कुछ नित्र पञ्च अलंकरण तीनिक परवर्ती भी जान पड़ते हैं। इनमें उतना प्रचाह नहीं। (द१० आगे ६२०)

अबंता के उक्त घोड़े से चित्रों के वर्णन को बटले में का एक नायल बम्भना जाहिए। नहीं तो, केवल इनी वर्णन के लिये यक स्वतन्त्र पुस्तक होनी जाहिए। कलात्मक दृष्टिकोण के अतिरिक्त, सांस्कृतिक अध्ययन के दृष्टिकोण से भी आवन्ना एक अच्छाय घटाड़ा है। उस समय के रहन-सहन, वेष-भूषा, आदि, आदि की अबंता की सामग्री द्वारा, हम जो का स्पौ देख सकते हैं।^१

अबंता की चित्रकला को वा प्राचीन भारत की मूर्ति-कला को कितने ही लोग बौद्ध-कला कहा करते हैं। यह सुरासुर मूल है। भारत में बाधाण, बौद्ध वा जैन-कला जैसी कोई पर्यु कभी नहीं रही। प्राचीन-कला पर यदि कोई प्रभाव है तो राजनीतिक वा सांस्कृतिक कालों का। हाँ, अबंता के चित्रों के अनेक विषय अवश्य बौद्ध हैं।

६१७. इस काल के अन्य भित्ति-चित्र—प्राचीन स्थानों की आमी तक ठीक टीक लोच नहीं हुई है। जितने भी स्थान मिले हैं, संयोगवश। अभी न जाने कितने निषित मंदिर और मिलेंगे। संप्रति, भारत में अबंता के लिया और कहीं गुप्त-कालीन चित्र नहीं पाए गए। हाँ, सिंहल के लिंगिरिय (सिंह मिरि) नामक पर्वत में, जो एक प्राकृतिक गहरी जैया है, दो उथली लोहे हैं जिनमें खूबी शर्ती के भित्ति-चित्र बने हुए हैं। पन्द्रह सौ वर्ष तक हवा लाते हुए भी ये कहीं से बिगड़े नहीं। इनकी यीली अबंता के संजिक हैं। इनमें ओकाश-नारियी देवीगणाएँ अकित हैं, जैसा कि उनका निचला भड़ भेष द्वारा आवृत होने से विदित होता है। वे या तो हाथों में फूलों से भरा भाल लिए हैं जा मुण्डूधि भर रही हैं। उनकी आकृति कातिमती और अलेखन बड़ा सुकुम है। निष्कार की वसिता पीले, हरे, काले और कई प्रकार के लाल रंगों को है। मुखाकृतियों में तोशीय विशेषताओं की छाप है और वे भावगृह्ण हैं। उनका भंगिमाएँ भी कठोर हैं। संभव है, ये तीनिक परवर्ती भी हो।

१—विशेष विवरण के लिए देखिए : अबंता के चित्रकृत (रायकृष्णदास, राय आनन्दकृष्ण)

§ १८. गुप्तकालीन चित्रकला का वास्तव में उत्तरोत्तर—यों तो अजंता की कला सर्वथा भार्मिक है, किन्तु उसके विषय जितने आगले हैं और चित्रकारी ने उन्हें जैसी लिद्दहत्ता से अंकित किया है उनसे इस सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं रह जाता कि उन दिनों चित्रण वस्तु (—शीम) बहुत व्यापक था और चित्रकारी को हर तरह के चित्र बनाने पड़ते थे। ऐसा तभी संभव है जब इस कला का राष्ट्र के जीवन से बनिए संबंध रहा हो। वास्तव में भी वही अवधारणा होता है। कालिदास की रचनाओं से पता चलता है कि अधिकांश सुरंगहृत श्री-पुरुष स्वयं चित्रण जानते थे। प्रेमी प्रेमिका एक दूसरे का चित्र देखकर अपना दुःख हृलका करते थे। चित्र देखकर प्रेमांकुर उमता या नमा चित्राह-संबंध पक्षे होते थे। चित्राह के समय देवताओं के संकेत निज बनाकर पूजे जाते थे। शशनाशार चित्रित होते थे। जीवन की पटनाओं, ऐतिहासिक पटनाओं और मृत राजाओं के चित्र अद्वित द्वित होते थे। नागरिकों के पर एवं राजप्राचाद चित्रित हुआ करते। उनके लम्हों आदि पर जो पुतलियाँ बनी रहती थीं वे भी रंगी जाती थीं। रुद्धंश में उज्जी अपोलोव्यादुरी के वर्णन में वहाँ के मिति-निमों का एक दृश्य दिया है कि हाथी पद्धति में है और हथिनियाँ उन्हें मुशाल दोडकर दे रही हैं। यह दृश्य अजंता के बजाएँ बोड़ा करते हुए हाथियों से कितना मिलता है!

'मुद्राराज्य' से, जिसका नमय जागरूकाल ने लगभग ५१० ई० खिल किया है^१ पता चलता है कि उस समय के भौगोलिक जीवन की अस्थिरता और नमराज का नास दिखाने के लिये कृतात् वी आकृतियाले चित्रपट लिय, घूमा करते थे और गा गा कर लोगों की अपना संदेश दुनाते थे। संयोगवय अजंता की १५वीं शुक्ला में इस दृश्य का एक चित्र भी मौजूद है^२ जिसमें मुर्ट्यो नम लघातों का एक दल चला जा रहा है। उनमें के एक महोदय तो इसने मोटे है कि दूसरों का लहारा लेकर चल गाते हैं। इसी मरुदली में एक के हाथ में एक लम्ही है जिसपर उच्च प्रकार का चित्रपट लटक रहा है।

इसी काल के कामदृश में नागरिक के शशनाशार का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसमें लूटी पर चित्रण के उपकरण टैंगे रहने जाहिए कि जमी तरंग आए, उनका उपरोग किया जाय।

§ १९. बृहत्तर भारत में गुप्तकालीन चित्रकला—इस समय तक भारत का सांस्कृतिक, भाषात्तरिक एवं राजनीतिक प्रभुत्व दूर दूर तक फैल चुका था। खुलन और जीव में

१—इण्डियन एसेटक्वेसी, अमृतवर, १८१३, पृ०, २५६।

२—ओवर फ्लेट, ७४।

तो बौद्ध निग्रदाय पहले से ही चला आया था । समुद्रगुम के समय में वह कोरिया में भी पहुँच गया और वहाँ की मात्रा उसी समय से हमारी जाड़ी लिपि में लिखी जाने लगी । यरोपीनी के समय से निपन (जापान) देश में बौद्ध हो गया । मारतीय द्वीपों में हमारा राजा बोर्नियो के पूर्वी लोर तक जा पहुँचा, जिसमें अहोस पहोस के सभी द्वीप और मलका प्रायद्वीप में रहा गया । बरमा तो वाकाटक युग में ही मारतीय प्रभाव में आ चुका था ।

इन देशों में से चीन की अपनी बड़ी उत्कृष्ट निवेदकला बहुत पहले से थी । किंतु उसे व्यतिकर्त्ता करके मारतीय निवेदकला ने भी, बौद्ध निग्रदाय के पीछे रखे, वहाँ पहुँच कर अपनी बड़ी जगह छोड़ दी । वहाँ से यह प्रभाव इस काल में कोरिया और जापान तक ब्यास हुआ । इस समय अन्य देशों में भी मारतीय निवेदकला पहुँच लुकी थी, जैसा कि उन देशों में पूर्व मध्यकालीन अनेक उदाहरण मिलने से प्रतिशिद्ध होता है । (६२२) ।

मानी नामक एक निवेदक और धर्मप्रवर्तक ईसवी दृशी शती में, अपरन्भारत में हुआ । उसकी एक अपनी शैली थी; किंतु उसमें मारतीय प्रभाव भी विद्यमान है । मानी भारत में आया थी था । इसकी शैली का भी ईरानी निवेदकला पर प्रभाव पड़ा । इस प्रकार भी प्रकारोंतर से मारतीय प्रभाव ईरान तक पहुँचा ।

तीसरा अध्याय

६. २०. पूर्व मध्यकाल (५००-६०० वा १००० ई०) के भित्ति-चित्र—

क. अवंता—यों तो आज अबन्ता की पहली युक्ति के उत्कृष्ट निवेदक, विशेषतः उसकी लृत के अलंकरण (६१५.) दृशी शती के हैं, किंतु वे शैली में वहाँ के ६ठी शती वाले चित्रों से इतना मेल खाते हैं कि सुगमतापूर्वक अलग नहीं किए जा सकते । अतएव उन्हें भी अपने पूर्वकर्ता चित्रों के साप छोड़ देना चाहिए । दूसरी युक्ति में भी इस काल के निवेदक हैं जिनमें हाथ लक्षित होने लगता है, किंतु ये इस काल के विलक्षण आरम्भ की कृतियों हैं अतएव वह हाथ नहीं के बदावर है । इस युक्ति का एक ग्रस्तात निवेदक दया की याचना है । किंतु राजा ने एक तरफी के बप की आकांक्षा दे दी है । वह अबन्ता उस निर्देशी के बदला में गिर कर दया की याचना कर रही है । इस अमासिनी का निवेदक हृष्ण निगलित न कर देगा ।

दूसरा मालौं वा निव एक प्रेममध्य सुन्दरी का है। उसके प्रेमी का हाथ उसके कण्ठ
में है, जिसे वह बड़े आसाह से धामे कुर है। उसके नेत्र प्रेमाचन से छुके कुर है (फलक—४५)।

इस काल के अन्य चित्रों में गुप्तकालीन चित्रों जैसे प्रवाह का अभाव है। इनकी
आकृतियाँ तनिक अधिक लम्ही हैं, उनकी मंसिरमाण निधाया हैं, एवं मुख मुद्राएँ मालीन।
मुखाकृतियाँ भी लंबोतरी हो गई हैं।

ख. बाघ—इस काल के यादगुप्ता के निव नं. १६०७—८ से पुनः संसार के
सामने आए हैं। विषय पर्वत का यह श्रेष्ठ मालके में स्वालिपर चित्रों के अन्तर्गत है। पास
ही नर्मदा की एक छोटी सी कलद नदी, चित्रका नाम बाघ वा बाघ है, वहाँ है। उसी के
कारण यहाँ की गुफाओं का नाम और पाल के गाँव का नाम भी बाघ पड़ा है। यहाँ कुल नौ
गुफाएँ हैं जिनका सामना साड़े सात सौ गज लम्बा है। किन्तु नदी गुफाएँ आपस में मिली
हुई नहीं हैं। इनमें की इसी ओर धर्मी गुफाओं से मिला हुआ एक २२०, लम्बा ओसारा है।
कोई बीस सारी समझों पर इसकी छत आधूत भी। ये सभी ग्राम निःशोष ही जुके हैं।
मुख्यतः इसी ओसारे में यहाँ के निव हैं। किन्तु लेद है कि उनकी ओर आन आकृह हीने के
पूर्व, कुत गिर जाने के तथा अन्य ग्राहकीय और मानुष उपद्रवों के कारण उनकी काली चति
हो जुकी है और बहुत थोड़े निव बच रहे हैं। भूतपूर्व स्वालिपर राज्य ने उनकी रक्षा का
प्रबन्ध किया था और इशिक्या बोतापटी, लन्दन के सहयोग से उनके विध्य में एक सचिव
पुरुषक मी प्रकाशित की थी। यहाँ के चित्रों की शैली अवंता से मिल नहीं है एवं यहाँ के पूर्व
मध्य कालीन चित्रों की तुलना में ये उच्चीस मी नहीं बैठते। इनमें सुंदर दृश्यकर दीर्घी हुई एक
स्त्री का निव, जिसे उनकी सखी सान्देना दे रही है, बड़ा नाम-पूर्ण है। एक दृश्य दृश्य-समाव
का है जिसमें नानने वाली मंदिर वाँच कर छोड़े-छोड़े इक लड़ा कर नान रही है। इस आले-
मन में यथेष्ट गति और समर्पीयता है। यहाँ सारी का भी एक निव है, जिसमें दाविधों का
दल बड़ा सभ्य है। यहाँ के अलंकरण अवंता जैसे नहीं हैं किन्तु यहाँ क्षमल की सुरमुट वाली
बेल में यहाँ से अधिक प्रवाह है।

बाघ के, तथा अवंता से अन्यत्र और सभी, मिति-निव चूने की गच (फलतर)
पर बने हैं।

ग. बादामी—बैंकई प्रश्न में आदामी नामक स्थान के पास बादामी में चालुक्यों
के बनवाए चार गुफा-बदिर हैं। इनमें भी दाल में मिति-निव मिलते हैं। इनकी दशा बाघ के
चित्रों से अच्छी है। कला की दृष्टि से ये भी अपने काल के उत्तम निव ये। यहाँ के कुछ
चित्रों की प्रतिकृतियाँ लेपान की गई हैं, जिनमें से एक यहाँ की जा रही है (फलक-४ च.)।
इस निव में कोई स्त्री किसी भी पाद में ना कोई आशा लगाय, एक सभी के सदारे खड़ी है।

उसकी हप्ति अचारण में लगी है—वह अपनी स्मृति का चिन्ह आकाश में देख रही है। सुन्दर कल्पना है। वहाँ के इमग्न निचो में, एक राजसमाज में गृह का दृश्य, सिंहासन-सींग राजा-रानी और उनके परिवारिकाओं का आलेखन तथा एक भरोसे से देखती हुई तीन सिर्फ़ी और उनके संग के एक किशोर का चिन्ह, जो हाथ की मुद्रा से कोई चिन्हित बाती लक्ष कर रहा है, उल्लेखनीय है।

४. सितान्नवासल—मद्रास में तांबोर के पास पुदुकोटा राज में लिलावाल नामक स्थान है। वहाँ शक्तिशाली फल्लन राजा महेन्द्रवर्मन् प्रथम (लग०६००—६२५५०) और उसके पुत्र नरसिंह वर्मन् (लग० ६२५५—६५०० ई०) के कटवाए गुफा-मन्दिर हैं। कोई अठारह बीच बरस पूर्व उनकी भौतिक पर बड़े ही सुन्दर चित्रों का पता लगा। इनकी भी यैली अबंता की है। इनमें नानती हुई शंगनाओं के कई अंकन हैं जिनके माव, भूमी, हस्तमुद्रा, आकृति तथा अलंकरण बड़ा सुचारू, सजीव एवं प्रेक्षणीय हैं। एक छृत में अख्यन्त सधन कमल-बन बना हुआ है जिसमें स्थान स्थान पर मीन, महर, कच्छुप आदि जलजंतु तथा दाढ़ी, महिला और इच्छ आदि जल के प्रेमी पशु-पक्षी दिखाए गए हैं। कहीं कहीं फूल तोड़ते हुए दिव्य पुष्प मी जने हैं। छृत की यह सजावट अपने टंग की निराली ही नहीं, वही रमणीय भी है। एक स्थान पर एक पुराण का चित्र है जिसके बेहोरे से आमिजाल्य और चिंशिष्ठा टपकती है। उसके बाएँ कल्पे के गीछे एक प्रसववदन संध्रोत महिला की आकृति है। इस जोड़ी के अंकन में फलाकार की पूरी सफलता मिली है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि महेन्द्रवर्मन् और उसकी रानी का तुल्यकालीन चित्र है। सितान्नवासल के अस्त्र चित्र संभवतः जैन धर्म से संबंधित हैं एवं तनिक प्रतीती हैं।

ऐसे ही चातवी शरीर वाले अन्य चित्रों के बहुत ही अस्पष्ट अवयोप, ज्ञावी की राज-पानी, कांची के केलासनाथ मंदिर (आव: ७०० ई०) में शीखते हैं। इनके बांदों में बहुत महीन काम हुआ है और उनकी रेखाएँ अख्यन्त प्रपादपुङ्क हैं।

५. बेस्टु—शब्द 'एलोरा', भूतपूर्व निजाम राज में, अबंता से कोई पचास मील के भीतर है। सेंट्रल-रेलवे के औरंगाबाद स्टेशन से वह सोलह मील पर है। स्टेशन से पक्की सड़क भी हुई है और मोटर मिलती है। वहाँ एक पूरी पहाड़ी काट कर संचार भर में अद्वितीय मन्दिरों में परियोजित कर दी गई है ('मूर्तिहता', ५-८८ क.)। इन मन्दिरों में से मुख्यतः 'केलासनाथ', लक्ष्मीनाथ, इन्द्रसमा और गणेश लेना में सहित मिलिन्चित्र पाए जाते हैं।

१—केलासनाथ के चित्र अंठ में चित्र हैं उसे, सम्भवतः चित्रों के कारण, रंगमहल कहते हैं।

यों तो सभी मन्दिर बाहर-भीतर से निवित हैं, जिन्हुं उक्त मन्दिरों से अन्यत्र केवल उनके निहूं रह गए हैं। अधिकांश में ये चित्र पूर्व मण्डपाल के पिछले भाग, अर्थात् दूरी शती के अन्त के हैं। इन चित्रों के ऊपर चित्रों की एक दूसरी तह भी है जो इनसे सी दो सी घरस बाट जी बनी हुई है। इनमें से केजास्ताम्य मन्दिर के चित्रों में कई बगड़ प्रवाले की तह दिखाई देती है। वह चित्र गव (पलस्तर) पर बरी हुई है वह भीत के प्रवार से मिला हुआ है, अतएव निष्प्रपूर्वक वह मन्दिर के साथ की लिखाई है। यतः हम जानते हैं कि वह मन्दिर दूरी शती का है अतएव वह पहली नित्रकारी भी उत्ती समय की हुई। इस चित्रकारी में, अबंता की परंपरा होते हुए भी, वहाँ की शैली से निशेष अंतर पाना जाता है, अंतर इन बात में कि इनमें कला का द्वास रघु रूप में दिखाई देता है। अलंकरणों में वह चौदर्य नहीं है, अंग-प्रत्यंग में जड़हूँ है और सवाच-चश्म^१ चेहरों में, जिनकी यहाँ अभिक्षिता है, नाक का आलेखन अतिरिक्त लम्बा हुआ है, यहाँ तक कि वह परले गाल के बाहर निकली हुई है एवं परली आंखों भी चेहरे की सीमा के बाहर निकली हुई है। साथ ही अकाश की अभिनवकि के सिए दिखाए गए बादल के संदों में अबंता का चौदर्य नहीं है। वे चौंके डेर की तरह, गोले-गोले दिखाए गए हैं। प्रत्येक गोला खुलाई की एक-एक रेखा से अभियक्ष किया गया है। मण्डकाल में सवाच-चश्म चेहरा तथा लम्बी नाक बनाने की प्रवृत्ति चित्रों के खिला भूतियों में भी पाई जाती है। जिन्होंना परले गाल की तरह एवं अबर्ली अर्काल का चेहरे की सीमा से बाहर निकलना पहले पहल बहुं यही पाते हैं। फिर भी इन चित्रों में गतिमत्ता का अनाव नहीं।

बेहुल की पाठनों में महाकमल का आलेखन है जिनकी कोनियों में कमल के बंगल और उसमें हाथी, मछली और फूल लोड़ती हुई अध्याराएँ इत्यादि यनी हैं। इसके

१—भारतीय चित्रकला में मुख्यतः ३; बहुं के चेहरे बनाए जाते हैं। उसके नाम तात्पर नहिं इस प्रकार है—१—पीन चश्म—जिसमें चेहरे का आधे-से भी कम हिस्सा एवं एक आंख का जरा सा कोना दिखाई देता है; २—एक-चश्म—जिसमें चेहरे का एक चूल और एक आंख दीख पड़ती है; ३—सवाच-चश्म—जिसमें चेहरे का सम्पूर्ण एक स्तर और उससे पहले स्तर का थोड़ा गाल तथा थोड़ी सी आंख दीख पड़ती है; ४—देह चश्म जिसमें पहले गाल और आंख का अंग और अधिक दिखाई देता है; ५—पीने-दो चश्म—जिसमें चेहरे का परला स्तर और आंख संमुख चेहरे से कुछ ही कम दीख पड़ती है और ६—संमुख—जिसमें नाक ठोक बीच में होती है और चेहरे के दोनों स्तर तथा दोनों आंखों पूरी पूरी दिखाई देती हैं।

बारे और जौही पटियाँ हैं, जिनमें अनेक दृश्य अंकित हैं। इनमें जहाँ पूर्ववर्ती आलोचना निकल आए हैं उन स्थलों में गढ़ पर आसन बैष्णवी का चित्र तथा लिहाहना एक देवी का चित्र, जिनका मुख कुछ गोदे की मुड़ा हुआ है और उनके इच्छ उभर बादल में उड़नेवाली देवताओं की आइसियाँ उल्लेखनीय हैं। कुछ जैन विषय बाले भी चित्र हैं। बादलचाली तट के चित्रों को देखने से जान पड़ता है कि कहाँ पर तो उन्हें बनाकर पहली तट के चित्रों की मरम्मत की गई एवं बोड़ मिलाया गया है और कहीं पहली तट को बिलकुल ढक कर नए चित्र लिखे गए हैं।

५.२१. पूर्व मध्यकालीन बाड़मय में चित्र—बैहल के बर्णन के साथ इस प्राप्त उत्तर मध्यकालीन की देवताएँ पर रहुँच जाते हैं। अतएव उनमें प्रवेश करने के पहले, यह आवश्यक है कि प्रस्तुत काल के चित्र उन्वेषण बाड़मय तथा ल-अन्न बाड़मय में आनेवाले चित्र-विशेषक, कुछ मुख्य उल्लेखों की चर्चा कर दी जाय।

क—विष्णुधर्मान्तर मुराण का चित्र-सूत्र—वज्रपि विष्णुधर्मान्तर पुराण की गिनती अठारह पुराणी वा उपपुराणी में नहीं है तथापि वह विष्णु मुराण का एक प्रकार का चित्र है और उक्ते लंकान का समय मध्यकाल से चौथे का नहीं ठहरता। इसे के एक अंग का नाम चित्र-सूत्र है जो प्रस्तुत काल की रचना जान पड़ता है।^१ इसमें चित्रों के शारीरिक लक्षण, रंग, शंकन-विधान तथा तात्त्विक मिद्दान्तों का कई अभ्यासों में बड़ा विशद विवेचन है। इसके बाद के कई ग्रन्थों में-जैसे अभिलार्थितार्थ-विनामणि, मानसार, शिल्परत्न और समरागण-सूत्रयार आदि में—चित्रात्मा पर अध्याय मिलते हैं उन सभका आधार मुख्यतः यही चित्र-सूत्र है। अतएव यही इसकी विशेष बातों का सारांश देना अनुचित न होगा—

१—जिना नृत्य^२ के हाव-भाव एवं अंग-भंगी की समझ बुर प्रचिनों का समुचित

२—इस 'सूत्र' में रंगों के लिये संस्कृत 'राग' नहीं, आव तक बोलचाल में चलने-बाले 'रंग' शब्द का प्रयोग है, जिसका अर्थ संस्कृत में अभिनव वा तुद-भूमि होता है। अतः जान पड़ता है कि इसमें सुंपित सिद्धान्त उस समय को बोलचाल की भाषा से संस्कृत में लिप्त किए गए हैं। अर्थात् उस समय के कारीगरों में इन सिद्धान्तों का प्रचार था।

३—नृत्य और नृत्य में वही शम्पत्र है। नृत्य नाचसे को कहते हैं और नृत्य सुरक्षित अभिनय को—

परस्यानुकृतिनीट्यं नाट् यज्ञः कपितं नृपः।

तद्य नैस्कारकं नृत्यं प्रवेच्छुमोमाविकर्मम्॥

—विष्णुधर्मान्तर ३१२०।५

अंकन एवं प्रेचना आसमध है—कितनी बारीक जात है। नट (=अभिनेता, पात्र) आपने नृत में जो अभियक्षि उक्त अंगिक विकारों द्वारा करता है उसी को प्रेचन-कलाओं का निर्माता आपनी इति में स्थापित्य प्रदान करता है। असारव ऐसा निर्माता वब तक नृत के तन्त्रों में निष्ठात न होगा तब तक आपनी दृष्टि में कैसे उफ़ल होगा। इसी प्रकार वब तक उसके प्रेचक को वे तत्त्व अवश्यक न होंगे तब तक वह विभादि-कों कैसे समझ सकेगा। न तो वह उसके मात्र तक पहुँचेगा, न अंगिक विकारों की स्वामानिकता को निरत सकेगा, और 'यह हाथ ऐसा करो, वह पांव लेता क्यों' की नुचानीनी किया करेगा।

२—साध और काल्पनिक दोनों प्रकार के निष्ठ जाते थे; सब चित्र के लिये आवश्यक या फि वह चित्र का तद्रत, प्रतिचित्र हो, वही उसकी विशेषता थी। काल्पनिक चित्र की सामग्री के लिये 'क्षमा' में अनेक बातें खाताई नहीं हैं। इनमें से एक तो यह है कि किन किनके शरीर का वित्तना प्रमाण होना चाहिए—देव, उपरेव तथा मनुष्य के और उनमें भी यद तथा जाति के अनुसार शरीर के प्रमाण चित्र मिल हैं। उन्हीं प्रमाणों के अनुरूप उसकी योग्यता के प्रमाण भी अलग अलग हैं।

३—देवताओं, नागों, किलरों और पक्षों का रूप सौभ्य तथा राज्यसों का भौपरम्परा होना चाहिए, उनके केवा उठे हुए एवं छालें तनी हुई होनी चाहिए। विषेशिग्नी का वस्त्र रक्षेत होना चाहिए, निता के कारण उसके केवा पक्क चले दो, उन पर आधूपण न हो। सेनापति को वस्त्र लम्बे लौड़े शरीर का, मारी चुजा, क्षेव और गीवा बाला तथा चबी भक्तुरी बाला बनाना चाहिए। उसकी आकृति दृष्टि और कवित होनी चाहिए। वोदाओं को वैनिक वस्त्रों में और शस्त्राल से सजे हुए होने चाहिए। गायक-नर्नरों का वेश उद्धत होना चाहिए। नगर और देहात के लोगों को भले तब पहने हुए और स्वभाव से प्रियदर्शी उद्देहना चाहिए। कारीगरों की आपने काम में लगे हुए दिखाना चाहिए। पहलवानों को विशालकाय, मरे कल्सेभाले और बदन पर मिट्टी लगाए दिखाना चाहिए। देश-देश के लोगों को ऐसा बनाना चाहिए कि वे उस उस देश के मालूम हो, क्योंकि चित्र में सांश्यकरण ही प्रधान है। नर्थी-देवताओं को हाथ में पूर्ण कुम्ह लिए हुए बाहनों पर दिखाना चाहिए। स्वप्न की हाथ में रस्त का गाढ़ लिए हुए बनाना चाहिए। उसके ज्योतिमंडल

के स्पान पर पानी अंकित करना चाहिए; यह कल्पना कितनी उत्कृष्ट है।

४—आकाश में दिन का दृश्य उसके इलके रंग, विहियों के उड़ने तथा दूरी की प्रमाण से अच्छ करना चाहिए। रात का दृश्य तारकों के द्वारा दिखाना चाहिए। चाँदनी रात हो तो फूले हुए कुमुद भी बनाए जायें। धूंपों में शिलाचाल, पेड़, पातुओं की सान, भरने और सौंप लिखना चाहिए। बन में अनेक प्रकार के इच्छ, पची तथा बन्ध पहुंचाने चाहिएँ। नगर को देव-मन्दिर, राजपालाय, हाट और शोभन राजमार्ग से उक्क कराना चाहिए।

तौसरा
अध्याय

इसी प्रकार शुभ-चित्रों के लिये भी खूब व्योरे दिए हैं। खंड के चित्र में फूले हुए इच्छ, मधुयों की भीड़, कृकती कोयले और प्रहृष्ट नर-नारी होने चाहिएँ। मीधा के चित्र में बलान्त मनुष्य, छाया में छिपे हुए खग-मूग, कीचड़ में समे मालिक तथा यहे बलाशय होने चाहिएँ। बांध-चित्र में तोग से नम घन, इन्द्रधनुष, विजली का कीणा और दृष्टि होनी चाहिए। शरत्-चित्र का श्रृंगन स्वच्छ आकाश, पके हुए धान के सेत, हंस और पद्म से पूरित मरे हुए जलाशय आदि से होना चाहिए। ऐमन्ट के चित्र में फलल कट जाने से परपट जमीन तथा दिगन्त में कुहरा आदि होना चाहिए। शिशिर के चित्र में दीशों और हाथियों में हर्ष किन्तु मनुष्यों में शीत का वास एवं दिगन्त को और भी अधिक कुहराच्छ्वास होना चाहिए। शुद्ध-चित्रों में अन्य विशेषताएँ प्रकृति का निरीक्षण करके अंकित करनी चाहिएँ।

५—नवरत्न के चित्रों में ये विशेषताएँ होनी चाहिए—भूगर रस के चित्र में काति, लावण्य, माधुर्य, सुंदर वैराग्यरस। २—हास्यरस के चित्र में बीजे, कुन्धे, देढ़े-मेढ़े अंग और अद्भुत भवनाले; दूर्वा की बेट्ठा और विनिव हाव-माव करते हुए। करुणा चित्र में याचना, विषोग एवं विरह, अपनी प्रिय-कस्तु वा प्राणी का धाग वा विकाय, विषति और सहानुभूति। ४—रीढ़ चित्रों में कठोरता तथा बोध। ५—वीर रस के चित्रों में प्रतिशा, शीर्ष, औदार्य तथा उत्ताह। ६—प्रणालक चित्र में हुधर, हुदरीन एवं उम्रत व्यक्तियों तथा हिस जीवों का अंकन। ७—वीभत्स चित्र में रमरान तथा गहित एवं वस्त्र-भूमि आदि। ८—अद्भुत-रस के चित्र में अनेक भावों का विनिव समवाय और ९—शांत रस के चित्र में सौभग्य आकृति, व्यानस्थ-व्यास्थ

बधि हुए वाष्पक तथा तपस्वी।

यह मे शृंगार, हासन तथा शोतुर स्त के विन ई अक्षित होने चाहिए। अन्य विन या तो देव-मन्दिर मे बनाए जायें या सज्जनमा मे। राजसमा को सौंडकर राजा के निजी घरों मे भी ऐसे विन नहीं बनाने चाहिए।

६—विवरण के लिये जमीन तैयार करने के तथा रंगों के उपायान एवं उनके बनाने के लिये भी दिए गए हैं। मुल-रंग पाँच माने गए हैं—नीला, पीला, लाल एवं रुफेद तथा काला।

यह उल्लेख भी है कि विवरकार को आपने घर मे विवरण नहीं करना चाहिए। इस विधान का भावार्थ विद्वानों ने कई प्रकार किया है जिन्होंने भी अर्थ यह जान पड़ता है, जैसा कि आज भी भारतेदार विवरकारों की परम्परा है, कि घर मे काम करने से कारीगर उन्नति नहीं कर पाता। जब तक वाह निकल बर चार कारीगरों का मुकाबला नहीं करता तब तक उनकी विद्या जहाँ की तर्ह रह जाती है; वल्कि पिंगड़ने लगती है।

७—कलम की कमजोरी, मोटी रेताएँ, अस्त्र विभाग, बेमेज रंगों का प्रयोग, इस का अभाव, माल-रहित होने तथा संदायन एवं चेतना का अभाव, ये विशेष के दोष हैं, उन्नित प्रमाण, उन्नित विभाग, माधुर्य और सादग़न एवं सज्जनता, ये विशेष के गुण हैं। जिस विन मे ऐसा जान पड़े कि विवरण भूलि मे ग्राम संदित हो रहे हैं वही विन शुम-तुक्षण-सम्पद है। जो विवरकार सोंग अक्षि मे सोइ हुए चेतना और मृत मे उसका अभाव दिखाने मे समर्थ होता है तथा विशेष बनाए सादृश्य निशाने की तरह ढीक बैठते हैं (शास्त्रपिठि) वही विन-विद्या का जानकार है (६४—सादृश्य)।

विशेषों के लौनदर्य का रहण समझनेवाले उनकी रेताओं से उल्लेख उत्तमता-अनुत्तमता का निर्णय करते हैं। जो उनसे कम समझदार है वे परदाज देवकर कैसला करते हैं। जिसी विन के आलंकारिक धंरा की गुन गाहक है और एतर जन रंगों की सड़क-भड़क पर जाते हैं।

जहाँ विन बने होते हैं वह घर सुना नहीं लगता। सब कलाओं मे विवरकला भेष्ट है; यह मार्गला और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को देनेवाली है। अभ्यंता आदि के विशेष से प्रस्तुत है कि विन-तूल कोरा शास्त्र न या वल्कि उसके सिद्धान्त एवं विधान पूर्ण रूप से बतें जाते थे।

न—उत्तररामचरित—मवभूति की यह अमर स्तना इसी काल की है। इसका प्रसंग नित्रो से ही प्रारम्भ होता है। मगधान् रामचन्द्र के पास अश्वावक शूषि आए हैं। वे बातें कर ही चुके हैं कि लक्ष्मण आ जाते हैं और मगधान् से कहते हैं कि “उस निप्रकार ने हमारे बतलाने के अनुसार आपके चरित इस भीत के ऊपरी भाग में उरेहे हैं, उन्हें आर्य देखें।” इस पर सीता देवी और महाराज उन नित्रो को देखने लगते हैं। उनमें सीता की अभिन-परीक्षा तक की पूरी रामायणी कथा छेकित है। पहले उन दिव्यास्त्रों के मृतिमान् नित्र हैं जो रामचन्द्र को ताटका-वध के लिये विश्वामित्र से प्राप्त हुए थे। मगधान् उन्हें देखकर सीतादेवी से प्रश्नाम करते हैं कि वे दिव्यास्त्र उनको गम्भीर संतान को अनायास प्राप्त हो जायें। फिर मिथिला के बृत्तान्त हैं। उन्हें देखकर मैथिली कहती है—“अहो, यहाँ लिलते हुए, नव-नील-कमल से साँखले, रित्यन्ध, मधुरण, मांसल सुगम देखते आर्यपुत्र को बनाया है। उन्होंने शंकर से शारात्मन को कुछ न गिनकर तोड़ डाला है और विमल-नकित मेरे पिता (जनक) एकटक उनके मोले मुँह को, जिस पर काकड़ रोमित है, देख रहे हैं।”

लक्ष्मण उन्हें दिखाते हैं—“यह तो देखिए, आपके पिता तथा पुरोहित शतानंद, विनिष्ठ आदि समधियों की अर्चा कर रहे हैं।”

राम कहते हैं—“यह देखने ही गोप्य है, विदेही और रघुओं का संबंध, जहाँ दोनों और विश्वामित्र ही लम्बी हैं, किसे न स्वेच्छा!”। सीतादेवी वैवाहिक दृश्य को देखकर कहने लगती है—“वह, आप जारी भावे गोदान-मंगल करके विवाह-दीक्षित हुए हैं। अहो, ऐसा लगता है कि मैं उसी स्थान और उसी समय में हूँ।”

राम को भी ऐसा ही भान होता है और वे भीता का ध्यान पाणिग्रहण के दृश्य की ओर आकृष्ट करते हैं मवभूति ने इस स्थल पर सीता के हाथ का वर्णन किन सुंदर शब्दों में किया है उससे पता चलता है कि आक्षेत्रन में किन्तु स्वारस्य रहता था।

लक्ष्मण, और अयोध्ये में पैठकर भरत की वधु मांडवी और रघुवंश की वधु अनुष्ठीति के वित्र दिखाते हैं। इसी के बाद इस प्रसंग का स्वोच्छम व्रंश आता है। ऊर्मिला (लक्ष्मण-पत्नी) के नित्र को इंगित करके सीता लक्ष्मण से पूछती है—“वह, और यह कौन है?”। लक्ष्मण लगा जाते हैं और भन भी भन मुस्काहा वह प्रसंग बदलने के लिए परव्युराम-कागड़ के नित्र दिखाने लगते हैं।

कमशा: वे लोग राम के किर्किभा फूँन जाने तक के नित्रों को देखते हैं और उनके दृश्य में प्रसंगात्मक भाँति भाँति के मात्रों की किला एवं प्रतिक्रिया होती है।

वह सुंदर और लम्बा प्रसंग उस समय के बीच से नित्रों के पनिष्ठ संबंध का

विशद् परिचायक है। ये चित्र ऐसिहासिक नहीं, जीवन की पटनाओं के संरचना के लिए बनाए गए हैं (४६), सो तो उस परेंजु आन्तरिक बातबीत से रप्त है जिसका कुछ अंश ऊपर अवलम्बित है।

फुटकर उल्लेख— इस्वरित से ज्ञात होता है कि राजा की मेट में अन्य लसुओं के साथ विवरण की सामग्री भी होती, उसकी पर राज प्राचार में चित्रकार तादर लुलाए जाते।

इन दिनों विजयिया राजकुमारी की शिद्धा का एक अंग भी। दशकुमारवरित में उल्लेख है कि कुमार उपहारवर्मी ने स्वयं अपना चित्र बनाया था। नम्मावना होती है कि वह प्रभा पुरानी थी, क्योंकि कथानरित्यागर के अनुसार उद्योग का कुमार नरवाहनदत्त चित्रकला, मूर्तिकला और संभीत में निष्पात-था।

महावंश लिखता है कि महाराज ज्येष्ठतिथि स्वयं चित्रकार से और अपनी प्रजा को इस विद्या में शिक्षित करते थे।

नापकनायिका में येम उत्तर होने के बो तीन मुख्य रेत हैं उनमें प्रस्तुच-दर्शन और स्वच्छ-दर्शन के साथ साथ विव-दर्शन भी है। प्राचीन साहित्य में इसके अनेकानेक उदाहरण पाए जाते हैं जो मुख्यतः इसी काल से चलते हैं।

शपनागार तथा संकिळायद तक के विवरण लिप्यक कई उल्लेख मिलते हैं।

§ २२. बुहस्तर भारत के पूर्व भव्य कालीन चित्र—अपर - भारत—
तिक्ष्ण से उत्तर और दीन से पश्चिम तो वहा भू-भाग पामीर तक फैला है उसमें प्राचीन काल से तुलार और शूषिक नामक नन्य एवं अनिकेत आर्य जातियाँ रहती थीं। अशोक के समय में वहाँ भारतीय कस्ती की नींव पही और पहाँ के प्रजासी वहाँ का अन्धकार दूर करने में प्रवृत्त हुए। रस्ती शती ३०० पूर्व से लीनियों ने भी इस क्षात्र में हाथ बढ़ाया। खुलन की, जो उक्त भू-भाग का एक मुख्य स्थान है, एक पुरानी स्थान है कि वहाँ विव-सम्बन्ध नामक एक राजा हुआ जिसके समय में आर्य-वैरोचन ने पहले पहल तुलार-शूषिकों की भारतीय लिपि सिलाई जिसके कारण उनकी मापाओं के सब अन्य जाती-जनित लिपि में लिखे गए। वैरोचन का शिद्धा-प्रचार लग ३०० ई० पूर्व में हुआ। इसके बाद से वहाँ भारतीय और उनकी संस्कृति इस प्रकार बढ़ गई कि आजकल के ऐतिहासिकों ने इस भूमान का नाम, प्राचीन इतिहास में, अपर-भारत (अ-इशिड्या) रखा है। इस भारतीय संपर्क के कारण ईसी सन् के आरम्भ से पहले ही तुलार-शूषिक बहुत कुछ सम्भ हो गए थे तथा उनके द्वारा नीन और भारत का संबंध भी स्थापित हो गया था।

१८८६ ई० से स्व० अरिल स्टीन, अभ्यापक एनडेल तथा डा० लेकाक आदि विद्वानों ने अपर-भारत में लोन आरम्भ की और वहाँ के अनेक स्थानों से, मुख्यतः तक्ली-

मकान में बालू के नीचे से प्राचीन सभ्यता की अनेक वस्तुएँ और अवशेष निकाले। इनमें निकले ही सुंदर भित्ति-चित्र, लकड़ी पर बने चित्र-कलाक तथा सभी एवं रेशमी कपड़े पर बने चित्र-पट भी हैं, जिनमें मारतीय गौली की प्रमुखता के साथ साथ चीनी तथा ईरानी कला का पुट भी पाया जाता है। सम्भवतः ये जो उपयोग जीता गया मारतीय गौली पर स्थानीय प्रमाण दरहुता गया। इनमें के कुछ मुख्य चित्रों का परिचय यहाँ दिया जाता है।

ब्रह्मनगरिस्तान के प्रतिद्वंद्व्यान बामियान में स्थित महाकाश डुर्मूर्ति के दोनों ओर प्रवाह मुद्रा में दो उपर्योगों के भित्ति चित्र हैं। इनमें मारतीयता का बैठा पुट है, उससे दो शातवी शतों के भी हो चक्रते हैं।

मीरान में दो भग्न मंदिर मिले हैं जिनमें भित्ति-चित्र भी हैं। इनमें से एक में बेस्टर-जातक का चित्रण है जिसका संयोजन इस जातक की मरहुत वाली प्रस्तर-मूर्ति के अनुसार है, जिसकी पतिकृति कुशाय धातु के गोवार गिलिपोरे ने भी अपनी प्रस्तर-कला में की है। मीरान का उक्त चित्रण ५०-५५ शतों का है जिसे आपर भारत के अधिकार्य चित्र ज्वाली शती के ही है। इनमें दंदानउद्दितिक के चित्र मुख्य है। वहाँ के एक चित्र-कलाक पर एक और विमुख का आलेखन है जो दो बैलों पर बैठे हैं (फलक—प्रत)। इनमें यारी मूर्ति और ब्रंग-प्रसंग मारतीय है, केवल चौन के दाहिने मुख पर चीनी प्रमाण है, यथा उनकी पतली लंबी मूँछ, कटी हुई सी आँख आदि। वार्ष-सवाचारम मुख की नाक और आँख में अपने वहीं की मध्यस्थालीन वह विशेषता विद्यमान है जिसकी चीज़ों कारंग ₹ २०.३० में ही तुकी है और विशेष रूप से अगले प्रकरण में की जाती है (₹ २५.)। यतः यह चौड़ा बौद्ध है अतः यह चित्र लोके श्वर का हो सकता है। इसी देव से यह ध्यान चीन और जारान भी गई जाना, जहाँ अब तक चल रहा है। इस चित्र-कलाक की दूसरी ओर एक दाढ़ीवाले चतुर्भुज व्यक्ति, सम्भवतः चोपिस्तव का बैठा हुआ चित्र है जिसका गहनावा, लपका हुआ अंगरखा और नोक दार बट, ईरानी है। अन्यथा उसकी हस्तमुद्रा, कान के कुन्डल आदि पूर्णतः मारतीय है।

दंदानउद्दितिक का सबसे प्रतिद्वंद्व आलेखन एक भित्ति चित्र है जिसमें एक छोटे से पद्मताङ्ग में सही हुई एक रसी है, जिसके छान, करण, भुजा तथा हाथ में मारतीय आभूषण हैं एवं उसी प्रकार करण में लुद्धालेटका की जार लगे हैं। इसकी ठबन, हस्तमुद्रा और अंगुलियों का लेखाव भी सर्वथा यहीं का है। साथ में एक छोटा सा चातुर्क है। दोनों मुखाकृतियों पर चीनी प्रमाण है। पुष्टिका में व्यानी तुद्र का चित्र है तथा चगल में दो बौद्ध स्थान बने हैं। इनमें भी केवल मुख पर चीनी प्रमाण है। चेहरों का यह चीनी-पर वहाँ के मनुष्य बुलों की अनुकूलति के कारण है।

कूना देव में अनेक गुप्तायों में चित्र है जिसमें पाँच मारतीयता है, उदाहरणार्थ ५

वहाँ बढ़ा, हंड और पावेंटी तथा नंदी सहित शिव के चित्र मिलते हैं। एक रथान पर बादल से शिदु-भ्रहण करते हुए नातकों का चित्र है। इन बादलों में सर्पिकृति विजली भरी है। इस प्रकार का अंगन रामस्थानी चित्रों में बहुत हथर तक पापा आता है।

भारतीय पुरातत्त्व विभाग ने अपर-भारत में संग्रहीत चित्रादि का एक विशाल संग्रहालय दिल्ली में बना दिया है जिसमें वहाँ की कला और प्रकार के अध्ययन में बही सुनिश्च हो गई है।

इल में ही हसी विद्वानों ने, इस चेत्र के फंदूकस्तान नामक स्थान में ऐसे अनेक चित्रों का आविष्कार किया है।

चीन, कोरिया तथा जापान—चीन में भारतीय चित्रकला अपर-भारत द्वारा हो गई, और वहाँ से कोरिया द्वारा हुई जापान पहुँची। चीनी संस्कृट शब्द-टी (६०५-६१७१०) के दरखार में खुलन का एक चित्राचार्य था। वहाँ के लेखकों के अनुसार उसका और उसके पुत्र का, भारतीय शैली के बीद चित्र इनामे में बड़ा ऊंचा स्थान था। कोरिया में, वहाँ से जापान में, मुख्यतया इसी चित्राचार्य के पुत्र ने भारतीय चित्रण का प्रचार किया। पुरानी जापानी कला में सुरक्ष भारतीय प्रभाव का बही कारण है। इस प्रकार के पूर्व-भ्रमणकालीन (लगा० लगी शर्ती) अनेक उदाहरण वहाँ के हासितजी और नामा बाले बीद विहरों के भित्ति-चित्रों में विद्यमान हैं (फलक—५. क.)।

जिस प्रकार अपर-भारत से भारतीय चित्रकला चीन-कोरिया-जापान तक पहुँची उसी प्रकार वही (अपर-भारत) से उसका प्रभाव ईरान, लघु एशिया, अरब एवं मिस्र तक व्याप हुआ।

चौथा अध्याय

₹ २३. उत्तर-मध्यकाल (१०वीं-११वीं शती ई० से १५वीं शती ई० के उत्तराधि तक)—यों तो मध्यकाल के साथ ही—जिसका आरम्भ राजनीतिक इतिहास के अनुसार यशोधर्मी के बाद अर्थात् ५४० ई० से और संस्कृतिक इहि से उत्तरे कुल बाद अर्थात् ६ठी शती के आरम्भ वा पूर्वी से होता है—विष्णोन्तर भारत का हासिला आरम्भ हो जाता है, हमारा मस्तिष्क मानो अपने को पूर्णता तक पहुँचा मान कर आगे बढ़ना लोड देता है, जीवन के सभी व्यापारों में—संस्कृति के सभी अग्नों में—हमारी ऊर्जास्तिता एवं श्रोत्सिता का अभाव ही जाता है और राष्ट्र अपने कर्तव्य की उपेक्षा करने लगता है, परन्तु १० वीं-११ वीं शती से तो यह हासि संवर्तीसुख सहाय और धर्मःपत्र को पहुँच जाता है। तभी से कोई नार छुँटी जाती है, उत्तरोत्ता दुरवस्थायाना समय उत्तर-मध्यकाल है। राजनीतिक कलना के अनुसार इस द्वात के मात्र में कुछ—कुछ ही—अन्तर पड़ता है। यहाँ, चित्रकला की इहि से, इसकी जानि का समय दिया गया है।

₹ २४. उत्तर मध्यकालीन चित्र-शास्त्र तथा अन्य प्रथों में चित्र-नवीं—उक्त दुरावस्था की ओर चित्रकला भी दुलक लाली थी, इसका आभास इम ऊपर पा चुके हैं (₹ २० च)। इस काल में पहुँचकर, संस्कृति के आग्ने सभी अग्नों की भाँति वह भी, देश के अधिकार भागों में, व्रचःपतित हो चुकी थी। इस सम्बन्ध में आगे विशेष विवेचन की आवश्यकता पड़ेगी; एकांश प्रश्न के निर्णय के लिये, जिनके विषय में इम अन्य विद्वानों से मिथ निष्कारे गए पहुँचे हैं, अधिक अंदरे में ऐडना पड़ेगा (₹ २५ च), अतएव अन्य कालों की भाँति यहाँ, पहले इस काल के जितों का वर्णन न करके इम चित्र-विषयक बाढ़ मध्य और अन्य बाढ़ मात्र में उत्तरके उल्लेख के विवरण देने में प्रवृत्त होगे—

क—अभिलिखिताथं चित्राभिष्ठि—११२६ ई० लालुक्यवंशीय सोमेश्वर भूषित ने

१. 'मानसोल्लास' नाम का एक चित्रकलायामक ग्रन्थ लिखा जिसे मैथुर विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया है। इन ग्रन्थ के तीसरे आधाराय में वस्तु-विद्या के अन्तर्गत चित्रकला पर भी एक लम्बा प्रस्तरण है जिसकी वर्तिप्र सुल्य बातें इच प्रकार हैं—

सोमेश्वर उठने को चित्र-विद्या-विरचि बहता है। उसके मसानुसार
चित्र चार प्रकार के होते हैं—१—विद्वित्र, जिसमें दर्शण के प्रतिक्रिय की भाँति
साइक्षण हो (मिलाइए चित्रसूक्ष का शल्यविठ, (५२२ क ७ तथा ५३५ क ४
टि० ३)। २—अविद्वित्र, जिसे चित्रकार तरंग उठने पर बनावे अर्थात्
कालानिक या भावोपर्यन्त। ३—सू—वित्र, अर्थात् रसों की अभिव्यक्ति करनेवाले
चित्र जिसके देखते ही दर्शक का उन रसों से तादात्या हो जाय। हमने देखा है
कि सू—वित्रों की चर्चा चित्र-सूत्र में भी हुई है (५ २१ क ५)। ४—धूलि-
वित्र जिसका उल्लेख हम आरम्भ में ही कर आया है (५ ५)।

मिति—चित्र बनाने के लिये भीत का फलस्तर कैसा होना चाहिए और उसे
कैसे बनाना चाहिए, उस पर लिखाई करने के लिये जमीन कैसे तैयार करना
चाहिए, इसका भी ज्ञानेवार बराहन है। जमीन एवं रंगों में पकड़ के लिये सरेस
दिया जाता था जिसे बड़लें कहते थे। यह मैंसे ही ताजी खाल से बनता था।
इसके बनाने की विधि भी दी है।

फलस्तर पर जमीन तैयार करके (अर्थात् अस्तर-बट्टी करके) मात्रुक
एवं सूक्ष्म रेखा—विशारद चित्रकार चित्रन द्वारा अर्थात् अन्तर्दृष्टि से देखकर, उस
पर अनेक भाव और रस बाले चित्र अच्छी रेखाओं और समुचित रंगों से बनाता।
आलोचन के लिये वह कलम के सिवा पेन्सिल भी-नी किसी चीज का भी प्रयोग
नहरता था जिसका नाम बत्तिका दिया है। इससे पहले इसी से आकार टीकता
था, किर गेल से उसकी सच्ची टिपाई फरता था, तब समुचित रंग भरता था,
तंचाई दिखलाने के लिये उताला (जाइट) और निचाई के लिये, साया (शेड)
देता था। तैयार चित्र के हाइटर की बट्टी काले रंग से करता था और वस्त्र आमरण,
चेहराई आदि की खुलाई महानंग (=आलता, अलत्क) से करता था। मिति-
वित्र के ही दिखार से अन्य चित्र बनते थे। इसके उपरान्त शुद्ध और मिथित
रंगों का बराहन है।

चित्रों में सोने के उपयोग का विभान पाले-पहल इसी ग्रन्थ में पाया जाता
है। चित्रों के लिये सोने के तथक से इत्कारी गोना बनाने की जो प्रक्रिया इसमें दी

है वह आवकल की प्रक्रिया से अधिक भिन्न नहीं। जिस प्रकार आपुनिक चित्र-कार चित्र पर सोना लगाकर उसे मोटर से इसलिये छोटते हैं कि वह नमक उठे उसी प्रकार उस समय शूदर के दाँत से यह काम लिया जाता था।

इसके उपरान्त भिन्न-भिन्न छोटी और छोटी के प्रमाणों पर बाटोंका बड़ा लम्बा बर्गन है।

३—इस काल के अन्य बाह्य में के कुछ समय उल्लेख इस प्रकार हैं—

१—मानवी प्राकृत की जैन कहानी मुख्यमुद्री कहा (रचना-काल १०३८ ई०) में चित्रों के उपरोग के कई प्रसंग मिलते हैं—इसके तीसरे अंश में एक अन्योक्ति चित्र की बहुत ही सुन्दर कल्पना है। कोई नायक एक ही नायिका पर रीक्षा है, अन्य जी और उसका श्याम नहीं है। इस बात को एक अवागानिता एक अमर और कुमुदिनी-नायिका चित्र बताकर घटक करती है कि मधुप एक का रस लेने में अन्य सबों को भूल गया है। इस चित्र के नीचे चित्रकारी ने एक उपरुक्त पश्च भी लिख दिया था।

इससे यह मी बात पड़ता है कि मुगल, राजस्थानी और पहाड़ी चित्रों की प्रवृत्ति के प्रतिकूल उस समय ऐसे चित्र मी अंकित होते थे जिनमें मानव आकृति का होना शाब्दिक न था। इस काल की एक चित्रेत्री जोधी में सूर्योदय का दृश्य है। उसमें भी मानव आकृति नहीं है। इसी प्रकार एक उल्लेख मिलता है कि राज-प्रासाद में, कर्ण पर मोर-पंख का एक ऐसा चित्र बता दिया गया था कि राजा उसे बास्तकिक समझ कर उठाने लगा और उसके नाम में चोट आ गई।

२—प्राकृत की ही एक अन्य जैन कहानी तरंगवती में तो एक ऐसा प्रसंग आया है कि उस समय चित्र की प्रदर्शितियों का होना संभवित होता है—तरंगवती का नायक कहीं चला गया है अतः वह अपने पर में चित्रों का प्रदर्शन करती है कि शायद उसके द्वारा उसका पता चल जावे। यह अन्य हमारे वर्णनीय समय के कुछ पहले पारलिमानार्थ ने लिखा था किंतु इसकी पुनरावृत्ति और संज्ञेषण इसी काल में हुआ था।

३—चिलहणकृत कण्ठसुंदरी (रचना-काल १०६४ ई०—१०६४ ई०) में नायक का अनुराग नायिका का चित्र देखकर उल्लंघ होता है।

४—हेमचंद्राचार्य के त्रिपट्टिशलाकापुष्पनरित्र से पता चलता है कि राज-भवनों में एक चित्र-समा रहती थी जिसमें भिस्त-चित्र करे होते थे और यह काम अनेक चित्र-कारों में (जिनकी इस समय तक भी भेणियाँ अर्थात् पंचायती संस्थाएं होती थीं) बांट दिया जाता था।

५—पूहलपा के दोनों सारांश, सोमदेव-इति कथासस्तिसागर तथा चेमेव्रकल

वृहस्पति-भंजरी, इसी काल में लिखित हुए। इनमें चित्रों के जो वर्णन भरे पड़े हैं उन्हें वृहस्पति के समय का ही निश्चयक न मानना चाहिए बल्कि इन संस्कृतकों के समय तक भी बात भी समझनी चाहिए, क्योंकि कहानियों के ग्रन्थों में वराचर परिवर्तन होते रहते हैं।

इन कथा-ग्रन्थों के प्रमाणों से लिछ होता है कि जगता की उच समय चित्र-कला में सच थी और संस्कृत में उसे प्रमुख स्थान ग्रात था; केवल पंथोकार विवरार और चित्र-कारिणी ही नहीं होती थी बल्कि राजा से लेकर ग्राम तक सभी भेदों के जी और पुरुषों में इसका अन्याय और प्रयोग प्रचलित था। प्रणाय और परिणाय में इनका विशेष उपयोग होता था। समाज में चित्रकारों का आदास था और चित्र साहिल में दर्शनीय वस्तुओं में था। कथासारित्यागर में एक जगह राधीहो (व्यक्ति चित्र) के चित्राभार (अलबम) का उल्लेख हुआ है। मुगलों के बामाने में ऐसे चित्राभारों का बड़ा रिचाव था। किन्तु वह निर्विवाद है कि वे इस प्रथा को अपने संग न ले आए थे। अतएव सम्भवतः वह इसी भारतीय दीति का अनुकरण था; किंतु तरह उन्होंने यहाँ की ओर सैकड़ों बातें अपना ली थीं।

कथासारित्यागर की एक कहानी में यह प्रसींग आया है कि निकने सम्मेप चित्रकार ने चित्र बना दिया जिसे मूर्तिकार ने तराश कर मूर्ति में परिवर्तित कर दिया। सम्भवतः इसी ही प्रथा उस समय थी। आज दिन भी मूर्तिकार को चित्रकार, मूर्तियों के लिये नक्का (स्केच) देता है।

कथासारित्यागर में कई छिकाने चित्र-पट को भीत पर ठोकने की चीज़ी भी है। जान पड़ता है कि इस काल में भित्ति-चित्रों के बदले अधिकतर यही दिवाज था। नेपाल-तिब्बत में चित्र-पट के लटकाने की प्रथा आज भी पाई जाती है। उच स्थानों की चित्रकला मुख्यतः इसी काल की परम्परा में है, अतएव वह प्रथा उच अनुमान की पोषक है।

§ २५. इस काल के चित्र—भित्ति-चित्रों का जगता सम्भवतः पूर्व मध्यकाल के नाम बीत चुका था। बेलज (§ २०३) में भोज के मतोंने उद्यादित्य (१०५५—१०५० ई०) के बनवाए भित्ति-चित्र हैं किन्तु इनके सिवा इस काल के भित्ति-चित्र का कोई विशिष्ट उदाहरण अभी तक नहीं मिला। यों तो अपने यहाँ मुख्यतः जगपद में, भित्ति-चित्र-कला की परम्परा आज तक नहीं थाई है^१, बल्कि वो कहना चाहिए कि अपने यहाँ के छोटे चित्रों का विभान भी सर्वथा भित्ति-चित्रों पर अवलभित है अर्थात् भित्ति-चित्रों और अन्य चित्रों की शैली में यहाँ योग्य की भाँति अन्यर नहीं है किन्तु भित्ति-चित्रों के उत्कर्ष और प्रमुखता का युग पूर्व मध्यकाल तक ही मानवा पड़ेगा।

^१—‘भीत्तिने चित्र उरेहल हो’—प्रामगीत।

क—पाल शैली—बाबू इस काल के पुस्तक निव ही मुख्यतः प्राप्त हैं, शैली के अनुसार बिनके दो भेद हैं। इसमें एक तो १०वीं शती के एवं परवर्ती काल वाले पंगाल विहार (मुख्यतः नालन्दा और मामलपुर के निकट विकाशित के) और नेपाल में लिखित प्रशापारमिता आदि महायान वीज्ञ पोथियों के और उनके इवर-उभर के पटरों पर के चित्र हैं। वहाँ उन्हीं का पारन्पर दिया जायगा। दूसरे की सविस्तर चर्चा आगे की बायगी (§ २५४ च, च १)। ये पोथियों कहुत बड़िया बाति के ताल पत्र (एवलाल) पर लिखी होती हैं। पत्रों का माप प्राप्त: २२२'×२२२" होता है। इन पत्रों पर ताल्कालीन छड़ी ही मुन्द्र और चमी हुई देवनागरी में लिखा रहता है; कभी कभी अच्छर, सफेद और चारों ओर के माम काले में भिलता है। अच्छर चिलकुल एक नाप चोख के और तुम्हे (वन) से कठे हुए जान पड़ते हैं तथा उनकी स्थाही का चमकोजाइन आब मी यों का त्यों दीक्षिता है। इन पत्रों का बीच बीच में चौकोर स्थानों पर महायान देवी-देवताओं, मुद्रचरित और दिव्य तुदों के चित्र बने रहते हैं (कलक—क १) और इवर-उभर के पटरों पर तुद की चीकनी समा बातों के इश्य रहते हैं। इनमें लाल (लिदूर, दियुल तथा मदाकर), नीला (लालबद्ध तथा नील), सफेद एवं काला, ये मूल रूप तथा इनके मिश्रण से उत्पन्न हरे, गुलाबी, बेगनी, घासतारी आदि रंगों का प्रयोग मिलता है। वहाँ चित्र रंग का प्रयोग है वही अविक्षित, उसी की नहीं रंगत से किंवा कहीं कहीं स्पष्टी से, खुलाएं की गई है। सोने का प्रयोग इनमें नहीं पाया जाता। पटरों पर के चित्रों पर उनकी रक्षा के लिये लाल चड़ी होती है। इन चित्रों में अङ्गतों की प्रत्यर्पा स्पष्ट रूप से दीखती है—वहाँ लिखमालैसुन आकृतियाँ हैं, वही चार मंगिमार्य, और प्रवाहमान रेखाएँ। कहीं कहीं महायान सम्प्रदाय चाली मर्यादक आकृतियाँ भी हैं। पुष्टिका ने मुन्द्र, परन्तु जोड़े इच्छादि, रंगविधान आकर्षित। इनमें निचिन्नित की उभी चिरोपतार्य, संकुचित रूप में दीखती है, गर इनका विपर सीमित है।

शैली को दृष्टि से उक्त तीनों केन्द्रों के ऐसे चित्र प्राप्तः अभिन्न हैं। चादि कोई अन्तर है तो यही कि नेपाल के कुछ चित्रों की मुख्याङ्कित में कुछ मंगिलपन पाया जाता है विचक्षक कारण और कुछ नहीं, वहाँ के मानव रूप का प्रमाण है।

इद्वीं शती के तारानाथ नामक चित्रताली इतिहासकार लिखित बौद्ध शतहास में भारतीय चित्रकला का इतिहास नहीं है। उस से जान पड़ता है कि उच्ची शती में विजन भारत में, भारतवाह से एक चित्र-शैली प्रचलित हुई और ६वीं शती से पूर्व भारत में एक शैली नहीं। पहले तो नेपाल के चित्रकार प्रथम भारतीय शैली में काम करते थे जिन्हुंने पैदे से पूर्वी शैली को अपना लिया था। यही पूर्वी शैली उक्त चित्रों की होनी चाहिए, क्योंकि प्राप्तः ऐसे उभी चित्रित अन्यों में पाल संवत् या पाल राजाओं का उत्तरेन मिलता है विचक्षक सामाज्य पूर्वी

भारत में था। अतएव इस शैली को पाल शैल कहना अनुचित न होगा। इसे शासी से पूर्वी भारत में चित्रण शैली के चलने का राजनीतिक तात्पर्य यदी हुआ कि पालों के समाधार में विस प्रकार एक मूर्ति-कला प्रचलित हुई तरीके प्रकार, प्रायः तभी देव में इस चित्रकला का विकास हुआ।

यथापि इस शैली में अवनता (§§ १२—१६ तथा § २० क) की परम्परा की विशेषताएँ सभीक रूप में पाई जाती है, किंतु भी हाथ की विशेषताएँ भी दीख पड़ती है, जो मुख्यतः ये हैं—पाणों का एक निखित लय, अंगों, मुद्राओं और ठबन के अकड़-जकड़, अतिरिक्त लम्बी नाक, सधानवस्म चेहरों की अविकला। यह अतिरिक्त लम्बी नाक का परली आंख पथणि चेल (§ २० ह) वा दन्वानउइलिक के (§ २२ अपर-भारत) किंवा आगे (§ २५ ल) उलिलित तथाकथित बैन शैली के विचारों की मात्रा चेहरे की सीमा के बाहर निकली हुई नहीं होती किंतु भी पाल शैली के सधानवस्म चेहरे उक आलेखनों से बहुत मिलते हैं। इनमें के विसी विसी सधानवस्म चेहरे में उक विशेषताएँ भी पाई जाती हैं।

फिर मैं इस काल की दूरी शैली से, विद्यकी चर्चा इसके बाद को जायगी, इसमें हास के चिह्न अपेक्षाकृत बहुत कम है और इसे पूर्व मध्यकालीन विचारों के रूप असत्तम मिल सकता है। इसका कारण यौद्ध ग्रन्थों से सकता है क्योंकि यह कला, जैसा कि इसने अभी कहा है, पालों की समाधित भी जो बौद्ध ये। साथ ही उस समय भारत में यौद्धरण में मुख्यतः नेपाल, विहार और बंगाल में ही बच रहा था। तारानाथ ने भी इस बात का लक्षण किया है कि बहाँ बहाँ यौद्ध पर्याय या वहाँ अग्न द्योती ही अपेक्षा कला का हाथ कम हुआ था।

ये पाल विधियां हुआवाय हैं। देश में इनके उदाहरण नेपाल के राजकीय पुस्तकालय तथा राज्यकृष्ण देवराज के पुस्तकालय एवं कलाकृति की राजल परिषदाटिक योसाइटी, आचार्य श्रवणीद्विनाथ टाकुर तथा श्री अवित घोष एवं श्री बालान के संग्रह में और काशी के कला-मन्दिर संग्रहालय में तथा बड़ीदा के संग्रहालय आदि में हैं। विदेश में इनके अनेक उदाहरणों में से मुख्य, चोस्टन (अमरीका) आकाशहृषि विश्वविद्यालय (हॉलीवूड), डिलापट आर्ट इंस्टिट्यूट (अमरीका) आदि के संग्रहालयों में हैं।

बंगाल और विहार में परीक्षित राजनीतिक वरिष्ठतियों के कासण वहाँ तो यह शैली प्रायः तेरहवीं शती तक समाप्त हो गई परन्तु नेपाल में प्रायः सोलहवीं शती तक, अपने इन एवं निष्ठावाण स्वर्ण में चलती रही।

इस शैली के कुछ बड़े पट चित्र भी मिले हैं।

स—तथाकथित जैन, गुजरात वा पश्चिम भारत शैली—श्वेतोष्ठर जैन

मध्यदाय के—निरीयन्त्रणी, अंगदूत, विपरियलाकापुस्तकरिच, नेमिनाथनरिच, कथारजसामर
चंद्रहर्षपद्म। उत्तराध्ययन सद, तथा कल्पदूष + कालकथा इत्यादि, इत्यादि—मन्यो की
तालपत्र पर लिखित ११०० ई० से १५वीं शती के मध्य तक की संचित ग्रन्तियों में तथा उसी
शैली की कागद पर लिखी १५वीं शती ने प्रायः आमत तक की ग्रन्तियों में एक सामूहीकृती
वित्र उर्द्धे गए हैं (फलक-६ के ल)। फलक ६ का विषय ही मुनियों का याताज्ञान है। वित्र
की संस्कृत पर्वत के शिखर पर है। निष्पकार ने पर्वत पर वडे घडे इच्छों की अतिलघु रूप में
अंकित कर पर्वत की महात्मा लक्षित कराई है, साथ ही वह दृश्य के महाघृणी डैश को केंद्रित कर
हमारा ध्यान इन जैन मुनियों की ओर आकृष्ट करता है जो सब वित्र में लीन है।

वित्र का संपूर्ण आलंकारिक रूप में हुआ है तथा पेड़ों के मुख्य उनकी आकृति
आदि भी उस के बीच छोटे छोटे अभिप्राय हैं। राजस्थानी शैली की आलंकारिकता का पूर्ण
रूप हमें इन वित्रों में पूर्ण से दीखता है।

फलक ६ ल ए कथा के दो दृश्य अंकित हैं। इसमें अपभ्रंश शैली की प्राचीन परि-
कृत शैली के रूपों की अपभ्रण रूप में रक्षित रखने की विशेषता पूर्ण रूप से दीख पड़ती है, जैसे
बंगल में सरोवर, चतुष्कोण में अधर्मकुन्न रेखाएँ उरेह कर लक्षित कराया गया है।

आपने वित्रों में महाबन को बड़े आकार में श्रीर इतर-बन को छोटे में विवरण में
की परस्परा इस वित्र में दीखती है। कर राजा और उनके जानुवायिकों की आकृति फरने
में निष्पकार ने इसी परम्परा का निर्वाह किया है। नीचे वही राजा एक जैन मानि से उपदेश ले
रहा है। इस शैली की मुख्य विशेषताएँ ये हैं—

प्रायः सब चेहरे सवाचरण तथा पक्कीड़े के, बिनाई नाक परहे गाल
से अग्रे की निकली हुई, कुछ कुछ एलोरा वाले गच्छ की चाद दिलानेवा है; उड़ी
अंतरिक्ष छोटी और आम की गुठली के आकार की विशेष हनु बहुत दूर और
उच्ची हड्डी उमरी हुई; अर्तिले पास पास तथा उनकी आकृति परकला की सर्वे बल
कटी हुई काँक जैसी; बिनकी कटाक्ष-रेखा दूर तक बड़ी हुई और मुतली अंतरिक्ष
छोटी; परली अर्तिले हेहरे की सीमात रेखा के बाहर निकली हुई मानो जल्ग से
जोड़ी गई; ऐसी हुई अंगुलियाँ जैसे वामुरोग के कारण उनकी यह दशा हुई हो एवं
उनके सिरे ऐसे लोडे किंवदे कपड़े की वसियत हो; कम अंतरिक्ष रूप से द्वारे निकला
हुआ; उदर इतना कुरा कि विनका हुआ जान पड़े; ऊंगमंगी, मुद्राएँ एवं आमत
विलकुल अकहेनकड़े हुए; पश्च-पक्षी कपड़ों के गुहों जैसे; प्रकृति अर्थात् वादल
बूझ, पर्वत, एवं नदी आदि की लिखाई आलंकारिक, वित्रों में प्रमुख रूपों की
संस्करण हटूत अल्प बिनमें लाल, लालबद्दी, मीले और बीले की प्रधानता, आकृतियों की

सुलाई अधीन सीमांत रेखाएं स्थाही ते की गई और इतनी भोवी कि वे रोटे की कलम (वर्षा) मे, जिसे आबकल लोग मूल से कूची कहते हैं, की गई बान नहीं पहुँची है बल्कि ऐसा मालम होता है कि निव की तरह किसी धारु वी कलम से भी गई है (कलम की सुलाई में एक तेजी होनी चाहिए और, उसकी रेखाएं छोर तक फूँकते फूँकते पतली हो जाती है यह नहीं कि जिस मुटाई में वे बल्ती आ रही हों उसी में उनका अन्त हो जाए); लिखाई में बलदबाली कमज़ोरी और कम-कारीगरी ।

इस शैली का नामकरण पहले पहल जैन-शैली किया गया। इसका कारण यह था कि उस समय तक इस शैली के निवों का परिचय केवल जैन पाठियों से मिला था। यह नाम तबपि अब लोह दिया गया है फिर भी वहाँ उसके अन्तर्चिल का बोरा देना आवश्यक बान पड़ता है क्योंकि यह विषय अभी हिंदौ-बगूत के लिये अपरिचितना है ।

कम से कम अपने देश की कला में कमी संप्रदाय-नरक भेद नहीं रहा है। उसमें जो कुछ अन्तर है वो राजनीतिक युग वा काल-ग्रन्थ है। अतएव जातगण कला वा भगवण (= औद जैन) कला, ऐसा नामहस्तण सर्वथा अयुक्त है। शुंगाशाल, कुषाणाशाल, शुष्टिकाल एवं मध्यकाल की मूर्ति वा बास्तु कलाओं से किया जिन्होंने कोई भी संप्रदाय-नरक विभेद नहीं पाया जाता। यह दृष्टी यात है कि उन उन संप्रदायों को विशेषताओं के कारण उनकी श्रावितियों में एकात्र जिजल हो चिन्तु उनका अपक रूप एक है ।

यही सिद्धांत तथा कथित जैन कला के विषय में भी लागू होता है। सित्तनवासल (३२० ई) के जैन चित्र अवंता (११११-११६६ तथा ३ क) वा चाप (३२० ई) के निवों से चिलकूल भिन्न नहीं। फिर १८वीं शती के तीसरे चरण से, भारतीय कला के पुनरुत्थान के बाद जैन-विषय के निवों की कोई भिन्न शैली नहीं रह जाती। बहारी-कालीन शालिकाहन के अंकित जैन निवों से लेकर आज तक के जैन निवों की कोई अलग शैली नहीं है। ऐसी दशा में सित्तनवासल-जैल के बाद १५५३ शती के तीसरे वा व्यापिक से अधिक अंतिम चरण तक एक अलग जैन शैली का अस्तित्व रहा हो, यह असंभव है ।

यह बात अवश्य है कि उच्च हजार आठ सौ वरस तक जैन संप्रदाय का प्रभाव देश के एक बहुत बड़े हिस्से पर आया था। फलतः इस काल के अधिकांश चित्र मन्त्र जैन संप्रदाय के ही हैं। ऐसे ग्रंथ आबर मी हजारों की संख्या में प्राप्त हैं; इसका कारण यही है कि जैन मतावलीयी अपने भन और धर्मिकता के लिये सदा से अद्वितीय रहे हैं। अतएव वे अपने ही लिये संचित संप्रदायिक मन्त्र नहीं तेपार कराते वे बल्कि बहुत बड़ी संख्या में उनकी प्रतियों तेपार कराते भी थे। इन निवों में पाँड़ जानेवाली हात की उक्त विशेषताओं का एक

कारण नहीं भी है कि वहाँ संस्कार में भी इन से, उच्च प्रतिष्ठां बहुत शैली में प्रस्तुत की जाती थीं।

किंतु उच्च प्रभाव का यह तात्पर्य नहीं कि एक अलग जैन शैली रही हो। चित्र-कला पर जैन प्रभाव के क्षेत्र इस रूप में पड़ा कि ग्रन्त-तत्त्ववाले इस मठ में प्रमुख होने के कारण इनके शृणियों तक इस (चित्रकला) का रूप भी बहुत कुछ नियमित रहा, जैन प्रभाव के चित्रों वा अक्षरों के ११वीं शती से १५वीं शती के प्रायः अन्त तक के मिलने वाले उदाहरणों में बहुत स्वल्प परिवर्तन ही मिलेगा, जिसके पिछरीत बहाऊगीर (§ ४०) और शादजबहाँ-कालीन (§ ४५) चित्र-शृणियों में किताब अन्वार हो जाता है।

'जैन शैली' नाम का सम्बन्ध कुछ लोगों ने यह मानकर भी किया कि ये चित्र जैन साक्षुद्धों के बनाए हुए हैं, किंतु ऐसा मानने की कोई गुञ्जाश नहीं पाई जाती। ये चित्र कुप्रथा चित्रकारों के बनाए हुए हैं, जिन्होंने अपनी सूतना के लिये भोगियों की आयु (आशिष) पर कहीं कहीं चित्रों के विषय-निर्देश टॉक लिए हैं। इन चित्रों की आहूति मिलकृत वैधी होने के कारण कभी कभी उन चित्रकारों ने उन आहूतियों को कठिन इनो-गिनी रेखाओं द्वारा आयु पर लिख भी लिया है जिन्हें इन खीड़-चित्र भद्र सहते हैं। इनके लाहारे वे पूरा चित्र बना लेते थे। बोल्टन अूबिगम वाले एक कल्पसूत्र की आयु पर इस सरद के चित्र बने हैं। कहीं कहीं इन चित्रकारों ने, निरक्षरता के कारण, चित्र को बोल्काने में बना दिया है। इस शैली के उत्तराही लोगों वा १० साराभाई नवाप को १५वीं शती के दो चित्रकारों के नाम भी मिले हैं, जिनसे यह स्पष्ट है कि ये चित्रकार जैन साक्षुद्धों वे। अतएव उच्च समय के जैन साक्षुद्धों को चित्रकार भानना निरी कल्पना है।

'जैन शैली' नाम इस कारण भी सहीप है कि ऐसे चित्र, जैसा हमने आरंभ ही में कहा है, केवल श्वेतांशुरीय जैन भूम्यों में मिलते हैं।

१६२५-१६० के लगभग गुजरात के प्रसिद्ध संस्कृत विद्यालय स्व. ग्रान्तार्थ के राजलाल हरपंदराय भूषण की क्षणिक पर लिखित और चित्रित एक लम्बा नाम मिला। वह बल्लंत-विलास नामक शैगारिक मुरुक काल्य की प्रति है जिसमें संस्कृत और ग्रान्तीन शुब्राती के छन्दों का संकलन है। इसका लिखिकाल १५५२-१६० है और लिखित-विलास अवधाराव। इसमें पहले छन्द और उसके बाद चित्र दिये गये हैं जिनकी संस्कृत उन्मासी हैं। ये चित्र सर्वथा उक्त शैली के हैं। इस आगारिकार से हमारे चित्र के इतिहास का एक नया अध्याय ग्रास हुआ। इसका विषय सर्वथा ऐहिक होने के कारण, जो जैन विद्यालयों से असम्भवित ही नहीं सर्वथा विसर्गित है, जैन शैली नाम का अस्त हो गया। पहले पहल भी न्द्रानालाल नमनलाल मेहता

ने इन चित्रों का परिचय प्रकाशित किया और इनके अहमदाबाद में थमे होने के कारण उन्हींने इस शैली का नवीन नामकरण गुजरात-शैली किया जिसे उस समय प्राप्त कर्मचारी ने मान लिया। किंतु जामी चलकर इस सिविय में कुछ नव-परिवर्तन हुए, पिछे भी वह नाम अंशतः चल रहा है।

इसके बाद तो इस शैली के कितने ही चित्रित श्रृंगत ग्रन्थ मिले गये—बालगोपाल-रत्नांत, गीतगोविन्द, दुर्गासामाजी, रतिरहस्य (कामशाल) एवं एक कथा-काण्ड (फलक ६ ग) इत्यादि। इनकी प्राप्ति से जैन-शैली हवा हो गई, साथ ही 'गुजरात शैली' नाम के परिवर्तन की आवश्यकता नी प्रतीत हुई, जिसके अब इस शैली के नितने ही ऐसे ग्रन्थ भी मिल जुके जिनका चित्रण-चेत्र गुजरात के बाहर चला। अतएव डा० कुमार रवामी ने 'पञ्चम भारत शैली' नाम का प्रस्ताव किया। उनकी मुख्य वलोल यह थी कि प्राप्त अन्धों में से जो गुजरात के बाहर के हैं वे राजपूताने के हैं अतः यह शैली वही है जिसके विषय में तारानाथ (₹ २५ क.) ने लिखा है कि वही शैली में पश्चिम भारत—मारवाड़—से एक चित्र-शैली चली। किंतु यह नाम भी माना नहीं जा सकता।

ही सकता है कि तारानाथ की उक्ति ठीक हो और इस प्रकार के चित्र पहले-पहल मारवाड़ में ही बनने लगे ही, पिछे भी इस नाम में वो शोध है, एक तो यह शैली पञ्चम भारत तक ही सीमित नहीं। तारानाथ ने ही चतापा है कि यह नेपाल में पहुँच गयी थी। उपलब्ध उदाहरणी द्वारा इसको और भी अधिक प्रस्तुत चेत्र में व्याप पाते हैं।

मालबे के गढ़ माझे में (जो धार से तेझेर मील है) प्रस्तुत की गई इस शैली की सचित्र जैन पुस्तकों की अनेक द्रष्टियाँ मिलती हैं। अहमदाबाद के श्री सारामाई मणिलाल नवाब ने, किंहीं इस प्रकार के चित्रों पर विशेष शोध किया है और जैन चित्रकलाघर में नामक एक सुन्दर ग्रन्थ भी प्रकाशित किया है, जिसमें इस शैली के सेकड़ों सादे और रंगीन चित्र हैं, याँ (माझे) कोई साठ सचित्र प्रतियों का नोटिस लिया है और इनमें से एक के चित्र अपने उच्च ग्रन्थ में प्रकाशित भी किए हैं। यही नहीं मालबे के सुप्रसिद्ध नरेश भोज (लग. १००६—१०५५ ई०) और उसके ग्रामी पीछे की पांडियों के कई लाल्पन्न समय-समय पर पाए गए हैं, उन पर भी इसी शैली वाला गढ़ का चित्र सुदूर मिलता है। इस प्रकार सब है कि यह शैली मालबे में चल रही थी।

इसी प्रकार काशी के पड़ोसी जौनपुर में इस शैली के चित्र बनते थे। श्री सारामाई को यहाँ प्रस्तुत किया गया सचित्र कलाघर मिला है। इसका लिपिकाल १५२२ वि० १४६५ ई० है। इसका लिपिकर प० कर्मचिह्न का पुच चेष्टीदास गौड़ कागस्थ है। यह एक माझे की बात है कर्मचिह्न गौड़ कागस्थ पूर्व भी ही जाति है। अतः यह प्रति निश्चित

रूप से पूर्ति की जूति है। श्री सारामाई से मुझे बात हुआ कि इसके लिए उन्होंने जीनपुर के ऐसे और भी, कम से कम तीन, कल्पयन देने हैं। ताल्लू यह कि उन्हें यति कोई आकर्षित भट्टा नहीं; जीनपुर भी इस कला का एक केंद्र था।

जीनपुर में इसके एक बेड शाती बाद तक चित्रकार चलते थे इनकी एक जाति बह गई थी जिससे स्पष्ट है कि उनके बेशे की परम्परा बहुत पुरानी थी। ऐसी परिस्थिति में यह निर्विचाद है कि जीनपुरी कल्पयनों के चित्रकार इसी १६वीं १७वीं शताब्दी वाले चित्रों वाली जाति के पूर्वज थे। उनके लिए यह कहना है कि ये किसी और ठिकाने से जीनपुर आकर कल्पयन चित्रित किए करते थे—द्रविड़प्राणायाम होता। याप ही चित्रकारों की एक प्रहस्य जाति के रूप में विद्यमानता जैन साधुओं के चित्रकार होने के विरुद्ध प्रमाण भी है।

भारत-कलानवत में अवधीं मापा के किसी अज्ञात-नाम कथा-काव्य के लुः पन्ने हैं, जिनपर इसी शैली के चित्र बने हैं—कलक—६ ग इसी अवधीं काव्य का एक छुड़ है। इसमें एक रूमानी दृश्य अंकित है जो मध्यकालीन काव्यों का एक बहुमतलित अभियाय है। रात का दृश्य है जो पुष्टिका में तारावली तथा ऊर प्रकाशमान दीपों से लचित होता है। एक और परशुराम प्रहरी सजग बैठा है पर उसकी हाई से हटकर एक राजकुमार कमन्द फेंक रहा है जिसके सहारे नायिका को उतरना होता। राजकुमारी नायिका सोसाइ ह बढ़ रही है और एक सहनरी को भी अपने याय लीचती ले जा रही है।

इस चित्र में को शैली पद्धति अपनेश्वरा है जिसके बेहरे विलाच बने हैं परन्तु सारे के सारे चित्र में गति और जीवन है। सम्भवतः यह उस काल का है जब लोक में संस्कृति कुछ कुछ उद्भुद हो उठी थी।

यही तक यह नहीं। इन शैली के चित्र बंगाल और उड़ीसा में भी मिले हैं। बंगाल में तो यह शैली अपेक्षाकृत बहुत इधर तक जीवित थी। वहाँ का कोई तीन सी वर्ष पुराना, बंगाली में लिखा, बालभ्रह नामक ग्रन्थ भी सारामाई के संघर में है जिसमें इस शैली के चित्र हैं। बंगाल के पटनिवारी तथा पुस्तक की पटरियों में भी इसी परम्परा पाई जाती है। इसी प्रकार उड़ीसा के जगद्वाधजी के चित्रपटों तथा पुस्तक पटरियों में भी यह कला अद्याचरित जीवित है।

बेसल (§ २० ड.) में नोब के मरीजे उदयादित्य के बनवाए ११वीं शताब्दी के कुछ ऐतिहासिक भित्ति-चित्रों का उल्लेख इस अध्याय के आरंभ में हो चुका है (§ २५)। उनमें पुरानों की मुखाहृति; नवीं दुर्व नाक और परली आँख; निर्वृत उदर और अंगों की जकड़ याफ़ लाफ़ इसी शैली की है।

दोषिण मारत में इस शैली के चित्र १४वीं शती तक बनते थे (§ २५ ख १)। बहुतर मारत में बरमा के पगान नामक स्थान में ११वीं से १३वीं शती तक के इस शैली के भित्ति-चित्र मिलते हैं। इस काल की स्थान की निवेदकला में भी इसकी विशेषताएँ पायें जाती हैं।

इतनी धारित वाली निवेदकला की 'पश्चिममारत शैली', नाम देना ठीक नहीं। यदि कहा जाय कि 'इसका अंकुर तो पश्चिम मारत से फूटा', तो ऐसा कहने की मी मुजाहिद नहीं, क्योंकि इस बलीज के पिछ्के वह दूसरा दोष लागू होता है जिसकी नवी इमने उत्तर इन्हें दी थी—

बात यह है कि इस शैली का कोई नामान्मक (पॉलिट्रिच) निवेद्य है नहीं। उपर इमने इसकी जो विशेषताएँ दियी हैं वे आमान्मक हैं; अधीरूप वे कहाँ से भी प्रगति का नहींनहा-योग्यतक नहीं। वे तो केवल उस शास की पूर्णता है जिसका आरंभ पूर्व मध्यकाल में घेल (१२० ई.) में ही चुका था और जिसकी झटक हम अपर-मारत दाले विसुल के बाएँ मुख में भी पा चुके हैं (फलक—५ ख)। ऐसी अवस्था में इन चित्रों की कोई अलग शैली नहीं मानी जा सकती। शैली के लिये हासोन्मुख नहीं, विकासोन्मुख विशेषताओं का होमा आवश्यक है। तारानाम (§ २५ क) की इस शैली-विवरक उक्ति का केवल मर्म यही ही सकता है कि— यह शस ७ वीं शती में मारवाड़ से, जो उस समय सांस्कृतिक तथा राजनीतिक दृष्टि से गुजरात के अंतर्गत था, आरंभ हुआ। इस कला की अधिकारी छतियों के गुजरात और गुरुत्तर गुजरात में वहाँ होने कारण भी उक्त मर्म का समर्पण होता; असीत वही प्रदेश इसका मुख्य केन्द्र था। इस बात का और समर्थन होता है ११वीं शती वाले पादलादितकम् नामक प्रहसन के एक छंद से। इस्तप्रिय रूपरिता कहता है—

लाट देश (आधुनिक गुजरात) के निवेदकारों, इन दिवियों और जानरों में विशेष अन्तर नहीं। वे कृंची और सराही की मैल लिए उत्तर उत्तर धूमा करते हैं तथा योंतों और

—निवेदकार चित्र लिखने के लिये गिलहरी वा उससे मिलते-नुलते जानरों को पूछ के रोएं से वही जिस तूलिका का उपयोग करते हैं उसे वे कलम कहते हैं। कृचं कृहा वी कहते हैं। उसी से कृंच नामधारु चना है, अधीरूप किसी चर्तु को आमात ढारा कृचं जैसा बनाना। अतः कृंची तो उसी उपकरण को कहते हैं जो बोल या सरकोंड का छिलका आदि कृंच कर चनाते हैं, जिससे राजमन्त्रकूर वरों की सफेदी करते हैं। आज-कल के हिंदी-लेखक जो निवेदकार की कलम के लिये कृंची शब्द का अपनाहर करते हैं इस जारीकी को नोट करे और उक्त प्रहसन के लिये कृचिका कहता है।

उनपर बने हुए, निवारो को नीति विलाप मिनाकर नष्ट करते रहते हैं। इनमिता वहाँ को लंग लगता है, उसकी तह में सचाई है। इस चित्र शैली में जाम और नई कल्पनाओं के अभाव तथा लड़ियों पर वज्रने के कारण और उग (लड़ियों) का वास्तविक अर्थ मूल जाने के कारण, निवार, निवार, उन्हें निर्भय भद्रेश के रूप में लिखा रहे थे। साथ ही स्वाही का उपयोग भी वे बहुत अधिक करते थे। उनकी सारी खुलाई स्वाही से ही दृश्य करती थी, जैसा कि हमने ऊपर कहा है (§ २५ च.)।

यो हम देखते हैं कि कला के इस धारा का; उक्त प्रहसन के समय से, गुबरात मुख्य केन्द्र था। किंतु इसका यह तात्पर्य नहीं कि यह वहाँ की शैली थी। गुबरात उस समय तैन दंप्रदाव का मुख्य केन्द्र था, फलतः उसके लिये इबारौ—इबार निवित पुस्तकें बनती थीं, पर अन्य केन्द्रों में भी ऐसे चित्र बनते।

अतएव गुबरात को 'गुबरात शैली' नाम का आग्रह न करना नाहिए, जिसकी प्रवृत्ति आज गुबराती विद्वानों में याई जाती है। एक ग्रानीन और महान् निष्ठति की परंपरा रहते हुए भी गुबरात को एक ऐसे कला-आमास के गीते न दीड़ना चाहिए, जिसमें न सौंदर्य है, न रेखाओं का दम-खम और न कल्पना की उड़ान। यह दाव तो जैसे उपहार की नीज पाइताइतकम् के समय था वैसा ही आज भी है।

अच्छा तो इन चित्रों का बोध कराने के लिये फौन-ना नाम उपयुक्त होगा।

कुछ वर्ष पहले हमने इसका नाम 'उत्तर-मध्यकालीन-शैली' निचारा था, परंतु उक्त अनावों के कारण यह भी पश्चिम-मारत-शैली की नीति रद्दों से है, साथ ही इसमें अतिथामि दोष भी है, कर्योंके इसी काल की पात्र (§ २५ क.) तथा कांडी, शैलियाँ (§ २५ ग.) इस शैली के बाहर हैं। फलतः बहुत कहारों के बाद हम इस निष्ठार्थ पर पहुंचे हैं कि इसका एक मात्र समुचित नाम अपन्नंश शैली ही सकता है।

जब इन चित्रों का आलेलन कोई नया उत्तरान नहीं, आनीन शैली भी विकृति मात्र है तो अपन्नंश ही एक ऐसा शब्द है जिसके द्वारा उन चिकृतियों की समुचित अनिधि ही नहीं अंदरा भी ही सकती है। इसी प्रकार उक्त चिकृतियों के उभयायकानी जिस निवेदन से यह आलेलन बना है, उक्ते अर्थ में यहाँ शैली शब्द को लाना चाहिए।

इस सङ्ग्रह और अपन्नंश के मुग में जिस प्रकार, निष्कला का यह अपन्नंश देश के अधिकारी में व्याप जाता है, उसी प्रकार प्राकृत-भाषाओं का अपन्नंश भी देश के अधिकारी में, साहित्यवादिक के रूप में, फैल जाता है। इनमें ही नहीं, अपन्नंश शैली का अर्थ से इसी तरफ का काल तथा अपन्नंश भाषा के साहिल का आरंभ और समाप्तिकाल प्रायः एक है।

अपन्ने भाषा से चित्रकला का यह स्वभाव-पेक्षण एवं सहसामित्व मी अपन्ने शैली नाम का नमर्थक है। इस सहयोग की उत्त काल के चित्रचर्चा करने राजशेखर ने भी लक्ष्य किया था। तभी उसने अपनी 'काल्यमीमांसा' में, चित्रकारों को—कवितामाला में—अपन्ने भाषा के करियों के बाब्ह चिठ्ठाने का निषाद किया है।

४१. अपन्ने शैली के चित्र—वेल वाले अपन्ने शैली के चित्रों के उपरान्त इसके सबसे प्राचीन उदाहरण रवेतांक जैन संप्रदाय की निशीच्छृंगी नामक ग्रंथ की ११०० ई० की एक प्रति में है जो पाटन के संघी ना पाड़ा के अंधेरमंडार में है। इसके बाद के उदाहरण भी तालम्ब पर लिखित रवेतांक जैन चित्रियों में ही हैं, जिनका समय ११०० ई० से १५०० ई० तक है। इनमें कोई मुख्य प्रतिरूप ये है—१—लैमात के शास्त्रमालमंडार में ११२० ई० के बाता तथा तीन श्रम्ण श्रीग मूर, २—उसी मंडार में ११४३ ई० की दशापेक्षातिक लघुचित्ति, ३—बड़ीदे के लिटट एक जैन पुस्तक-मंडार में ११६१ ई० की एक ही पुस्तक में श्रोत्र-नियुक्ति आदि तथा ग्रंथ, इनमें सोलह विद्या-देवियों, सरस्वती, लक्ष्मी; अग्निका, चक्रदेवी आदि के तथा कर्णीदि यज्ञ और बद्धाशान्ति वज्र आदि के एकत्रित चित्र हैं, (इनमें से सरस्वती के चित्र की परंपरा ग्वालियर राज्य के सोहानिया नामक स्थान में पाई गई पूर्वमध्यकालीन सरस्वती की पापाण प्रतिमा से मिलती है,) ४—पाटन के उक्त मंडार में १२३७ ई० के चित्रछिरालाकापुष्टप-नरित्र, दशम पर्व, ५—लैमात के उक्त मंडार में १२४१ ई० का नेमिनाथनरित्र, ६—पाटन के उक्त पुस्तक-मंडार में १३७६ ई० का कथारलालगढ़ तथा ७—चोस्टन (अमरीका) के संप्रदालय में १३८० ई० का आकृतिकमण्डूरी।

इन ग्रंथ चित्रों में रंगुंजन का पूरा अभाव है, प्रायः एक चौकोर स्पान में एक आकृति दीखती है जिसका कोई निवाल नहीं। वस्तुतः यदि आयुर्वेद एवं चाहनों का भेद न हो तो आकृतियों को पहचानना भी संभव नहीं। किंतु भी कहीं कहीं उनकी भावभेदियां में चाहता है। पृष्ठिका प्रायः यादी, एकरंगी होती है।

कपड़े पर के चित्रों में पाटण के उक्त ग्रंथ-मंडार का १४२३ ई० बाला चौपानेर में प्रस्तुत हुआ पंचतीर्थी पट उल्लेखनीय है। इसके चित्रों की प्रतिकृति हैं इयन आर्ट चैंड लेटर्स नामक ग्रंथ में (१६३२ ई०, पृष्ठ ७१-७२,) प्रकाशित भी हो चुकी है। किंतु योद, कि संप्रति इस पट का पता नहीं लग रहा है। इसके बाल वसन्तविलास का नंवर है जिसका उल्लेख लघर हो चुका है। दैव-दूर्घितांक से अब यह भी चारिंगटन (अमरीका) की फौर आर्ट लेटर्स में पहुँच गया है। इन पट चित्रों में कामी सज्जिता दीखती है। विशेष रूप से वसन्त विलास के चित्रों में तो ऐसे लालात बहन्ता ही उत्तर आया हो। पुष्टित बन चुके लताएँ, मीरे, कल-कल करती नदी प्रेमी-मुगल की विमिज्ज शौकाएँ, पशु-पक्षी आदि एक नए लोक की अवधारणा

हरते हैं।

अपभ्रंश शैली वाले कागद पर के चित्र भी सम्मतः प्रेषियों में पाए जाते हैं। इनमें से युक्त का इमिट ऊपर हो चुका है। कल्प-नृक की सबसे पुरानी जात निश्चित प्रति १४१५ ई० भी है, जो रायल एशियैटिक सोसाइटी, बैबॉड के पुस्तकालय में है। इनी चारों की एक प्रति लीमटी के सेठ चारांद जी कल्पाणा जी की कोठी में है।

कागद की विशिष्ट प्रतियों में बौनपुर वाला कल्पयूत है जिसका उल्लेख ऊपर हुआ है। यह स्वर्णांचरों में लिखा है और इस समय बड़ीदे के नारखिहजी नी पोलवाले आनंदित में संरचित है। चित्रों के सिवा इसके हाशियों के अलंकार भी विशिष्ट और वही ही सुन्दर है। इच्छी तिथि १४६५ ई० है। माझे में प्रस्तुत १४३६ ई० वाले कल्पयूत, जो अब राष्ट्रीय संग्रहालय नहीं दिल्ली में है, के चित्रण बौनपुर वाली प्रति से शैली की इही से बहुत निकट है। इनमें नष्ट-नष्ट गतिशील धूपुरजन हैं एवं उनमें भी हुए रेखाएँ, पुष्ट रेख एवं आलंकारिकता दृष्टिय है। इस प्रकार सुलतानों के समालय में, कुछ फैलदी में जो नहीं शैलियों उत्पन्न हो रही थीं (§ २८ क), उनका अपभ्रंश शैली पर प्रभाव पहला स्वामानिक ही था। माझे में इसी वर्ष तैयार हुई महापुराण की एक प्रति के चित्र लोक शैली के निकट हैं।

अहमदाबाद में मूर्ति दग्धाविका जी के शाल-वस्त्र में कल्पयूत की एक प्रति है इस पर संबृत तो नहीं दिया है, किंतु संमतः यह १५५० वीं शती के उत्तरांचल उससे भी बाद की है। इस स्वर्णांचरी प्रति में अपभ्रंश कला शपनी उत्तमता एवं आलंकारिकता की प्रताकाढ़ा को पहुँच जाती है। नवाब की सम्मति में इसकी वरापरी करने वाली इस शैली जी कोई नौब जात नहीं। इसके हाशियों पर राग-रागिनी एवं तान, मूँहना तथा मिन्न-मिन्न दूल्हो और माव मंगी आदि के अनेक नित नाम सहित अंकित निराग गढ़ है; याय ही ईरानी चित्रों की प्रतिकूलियों मी बनाई गयी है।

बैनेतर (कागद पर लिखे) सनिव अन्नों में वालगोपालस्तुति की एक प्रति बोर्टन नंग्रहालय में, दूसरी शुब्रात के भी मोगीलाल जयन्तन्द संहितार के संग्रह में है। कम से कम दो प्रतियाँ प्रिस आव बैल्स भूजियम सुंबैद तथा एक मारत कला भवन में हैं; समशती की एक प्रति बड़ीदे के प्रो० मंतुलाल मच्चमूदार के लेख में तथा अन्य दो मारत कला भवन में हैं। भारत-कला-भवन वाले अवधी कथा-काव्य के पद्मो ली नवीं हो ही चुकी है (वेलिये § २५ च)। ऐसे बैनेतर अन्नों की छौर प्रतियाँ भी मिलती जा रही हैं। वाल गोपाल स्तुति के चित्रों में माना पूर्ण एवं समशती के चित्रों से नविमता तथा शोब्बृण्ण लिखा है।

१३३६ ई० में नुंगमटा नदी के बिनारे विजयगढ़ राज्य स्थापित हुआ। शीघ्र ही वह एक सामाज्य में परिवर्त हो गया, जिसके अंतर्गत कुन्ना नदीके ऊपर का सम्ना बंधिय

मारत था और उसे भी शीघ्र १५६५ ई० में, एक संघर्ष नगर की भाँति ओमल हो गया ('मूर्तिकला,' ₹ १००)। वहाँ के अधिगति कुबकराम दितीष के मंत्री और सेनापति इस्माया ने १३८७-८८८ ई० में विन-कोनी में एक संगीत-मंडप बनवाया और उसमें भित्ति-वित्र भी लिख दाया। इसके अंदर अग्नी तक बन रहे। इनकी शैली सर्वथा अपश्चंशा है। चैल वा गुबरात के इन शैली बाले चित्रों से इनमें परिकोरे अन्तर है तो इतना ही कि इनको चेहरे सबचरम न होकर एकचरम है। एकचरम चेहरे वो तो अजंता के हुँगकालीन निवी (₹ ८०) से लगातार चले आते हैं किंतु उनके विवाह का सबसे पुराना जात नगरा राघवर में मिला है। वहाँ के किले में परधर पर रेखा वित्र उल्लिखी है, जो १२६५ ई० के है। उनमें के चेहरे व्यापक रूप से एकचरम हैं, अन्यथा वे अपश्चंशा शैली के हैं।

ग—कश्मीर शैली—तारानाथ (₹ २५ क.) लिखता है—कश्मीर के सबसे पुराने वित्रकार पुरातन परिचय माँ ली की 'मध्य-देशीय' उपरीली में के अनुगमी है। किंतु पैरि हुसराज नामक कलाकार ने वहाँ की वित्रकला और मूर्तिकला में नई (तिर्यों नलाई जो उसके (तारानाथ के) तमम में, अर्थात् १६०० ई० में चल रही थी।

सेवा है कि इस विवरण के रहते हुए भी इउ शैली के संबंध में लाज तक कोई स्वीकार नहीं की गई, केवल स्मित्य ने इसके संबंध में इतना अनुगमन किया कि कश्मीर के सबसे बड़े समाट ललिताग्रिध ने ७५० ई० के लगभग कल्पीत वित्र लिया था। उसी समय मध्यदेश से, तोहफे के तौर पर, वह अपने यहाँ वित्रकार भी ले गया होगा, जिन्होंने वहाँ, 'मध्यदेशी' की उपरीली का प्रचार किया होगा। यह कल्पना बड़ी किञ्चित है। मानो स्वेच्छाते नई दुनिया के मैकिलो का विजय करके वहाँ के कारीगर अपने देश में ले गए हों। मारत में बनातन हुसराजक एकता के होने हुए ऐसी कल्पना की आवश्यकता नहीं इह जाती। अपने वहाँ विस प्रकार देश के किनी भी केन्द्र से धर्म, मंसुखि, समाजतीति और राजनीति आदि देश भर में छिटकती रही है उसी प्रकार मध्यदेशीय वित्रकला भी कश्मीर फूँकी होगी। साथ ही स्मित्य ने हुसराज का समीकरण कश्मीर की कुख्यात रानी दिला (१००० ई०) के भन्नी हुसराज से किया। किंतु राजवर्णमिश्री में इस विषय का कोई दर्शित नहीं मिलता कि हुसराज कलाकार भी था।

बस्तुतः कश्मीर वित्र-कला का एक बहुत पुराना केन्द्र जान पड़ता है। अपर मारत में भारतीय वित्रकला के प्रचार का काम मुख्यतः कश्मीर ही के द्वारा हुआ। बहुत वर्ष पूर्व प्रसिद्ध इताली विदान, जिसेप तुनिन ने प्रधिमी तिक्कत में ऐसी एक शैली का ज्ञान लगाया था। ये विज्ञ प्राप्तः ११वीं १२वीं शती के माने गए थे और तिक्कत के अन्त लेखीय शैलियों से

विलङ्घन ही भिन्न थे। इनकी मुख्यता यही भारतीय नहीं, वरन् उनके बस्त्राभूषणों में भारतीय संस्कृति स्पष्ट दीखती है। ऐसा समझा जाता है कि ये तत्कालीन कश्मीरी चित्रकारों के बनाए हुए हैं क्योंकि इस काल में पश्चिमी तिष्ठत पर तत्कालीन कश्मीरी संस्कृति का भारी प्रभाव था।

इन चित्रों में अजंता की परंपरा पूर्ण रूप से नली आ रही है, परन्तु प्राप्त सर्वेव अपने शैली की प्रसूत विशेषता अर्थात् 'परली आंख' दीखता है। इस प्रकार तारानाथ की उंगलि का पूर्ण समर्थन हमें इन चित्रों के द्वारा होता है; परंपरा (= नागर शैली) के साथ (इसुराज द्वारा प्रवर्तित नहीं रीति चाली) 'परली आंख' विद्यमान है।

राजसनान शैली (₹ २६), मुगल शैली (₹ ३५) और पहाड़ी शैली (₹ ५८) के निर्माण में भी कश्मीर शैली का हाथ रहा है। बल्कि यहाँ तक कहना अत्युक्ति न होगा कि श्रावकर-कालीन मुगल शैली अनेक अंशों में इसी कश्मीर शैली का लापन्तर है; इसी प्रकार पहाड़ी शैली के उद्भव में भी इसका अंश है (₹ १६)। यहाँ पर केवल इतनी सूचना देनी है कि १५वीं शती से १८ वीं शती तक के भारतीय चित्रकला के इतिहास में कश्मीर शैली का महत्वपूर्ण स्थान समझे बिना वा उसके विषय में पूरी छानबीन किए बिना, कोई ठोस काम नहीं किया जा सकता, अतएव विद्वानों को इस ओर प्रवृत्त होना चाहिए।

८—सिंहज के भित्ति-चित्र—सिंहज के पोलोजारबद्द नामक स्थान में अनेक मन्दिर और मूर्तियाँ हैं। उनमें से एक में १२वीं-१३वीं शती के किलने ही भित्ति चित्र बने थे। सेवा है कि समुनित रक्षण के अभाव में, हाल ही में, इनका अधिकांश नष्ट हो गया। हमारे जातकों के चित्र भी थे। शैली के अनुसार ये बेस्ता (₹ २० रु.) के उन भित्तिचित्रों के, जिनमें अपने शैली का आरम्भ नहीं हुआ है, फलतः पाल शैली के बहुत निकट हैं।

₹ २६. उत्तर-मध्यकाल में बृहत्तर भारत की चित्रकला—

९—सिंधवत, चीन, नेपाल—राजनीतिक पूर्व-मध्यकाल के आरम्भ में तिष्ठत के लोग भिरे जागली हे। किन्तु तोत और से भारतीय प्रदेशों और चीनों और से चीन द्वारा नहीं प्रकाश पहुँचा। खुलन और कुचा में जो भारतीय लिपि प्रचलित थी वह ७वीं शती के आरम्भ में तिष्ठत भी पहुँच गई। ६३० ई० में खोकनन-मंडो में वहाँ एक बाद्याव श्यामित किया उसने नेपाल के राजा और चीन के लगाट की बेटियाँ बढ़ाही थीं। वे दोनों बीद थीं। तिष्ठत के लोकन पर उसका बड़ा प्रभाव पहुँचा। ६४१ ई० में हाई ने अपने दूसरे चीन भेजे जो दो वर्ष बाद तिष्ठत के मार्ग से लौटे। इस प्रकार भारत और चीन के बीच तिष्ठत का मार्ग जल पहुँचा। इसके बाद तिष्ठती शासकों ने भी नेपाल, मंगय और कल्पीज से लगातार सम्बन्ध

भारत वनार्थ रत्ना ।

की नियन्त्रकला ६ठी शती में महायान सम्प्रदाय के अंतर्गत चौद वामपार्व, वज्रयान का जन्म दक्षिण भारत में हुआ । ३४३ ई० में नालंदा के आनार्य शासिरित निमन्त्रण पाकर तिब्बत गए । फिर १०४०-४२ ई० में विक्रमशिला से आनार्य दोषकर ओडिशा तिब्बत गए । इस प्रकार वहाँ वज्रयान की बड़ जमी जो आज तक लामाजर्म के लाए में प्रचलित है, अस्तु, भारतीय धर्म के साधनाथ मार्तीय कला का भी तिब्बत में प्रवाह हुआ । तिब्बत के १०वीं-१२वीं शती के विष पाल शोली के विलक्षण पाल हैं । वहाँ से वह शैली मंगालिया और चीन की ओर बही जिसका परिणाम वह हुआ कि वहाँ के चित्रों में भारतीय प्रभाव की एक दूरी लाहर आई । फलतः इस काले के चीनी चित्रों में पहले से भी आधिक भारतीयता पाई जाती है ।

विक्रमिदित्र के संघर्ष में तिब्बत, भारत के लाल-साध अपर-भारत का भी भूगणी है । वहाँ के ७वीं शती शती के चित्रपट, विभान में तिब्बती पटों के पूर्वज हैं ।

इसी नालंदा चीन ने विक्रमिदित्र में अदि तिब्बत से लिया तो उसे दिया भी । फलतः तिब्बती कला में चीनी प्रभाव भी पाया जाता है और वहाँ (तिब्बत में) चित्रों के दो प्रकार मिलते हैं । एक तो जो प्रायः सर्वथा भारतीय है । इसके अंतर्गत वहाँ के पुराने भिसिनिय और चित्रपट हैं, जो रेशमी वा दुरी कपड़े पर बनते हैं तथा जिन्हें वहाँ एवं नेपाल में 'पानका' कहते हैं । दूसरा, जिस पर चीनी प्रभाव है । तिब्बत के आधुनिक पट प्रायः इसी दूसरी भेणी के हैं । इनमें अधिकतर चुद के रूप रहते हैं जिनका निर्माण प्रभाण के अनुसार ऐसे हुए निष्ठों पर, लिया जाता है^१ । इनमें विशेष कला नहीं रहती । फिर भी कोई-कोई तिब्बती चित्रपट रंग और रचना की दृष्टि से बड़े मात्रे के होते हैं । इस प्रकार का एक पट बदना संप्रहालय में है जिसमें भैरव वर्म के दिसी भयानक देवता का भ्यान है, जो अच्छी से अच्छी पाल-कालीन त्वना से टक्कर लेता है, तारे चित्र की भलक (टोन) श्याम-हृष्ण (बल्मू घैंक) है । तिब्बत तथा नेपाल में ऐसी वाचन पोथियों भी तेवार होती आई हैं जिनमें पाल-कालीन पोथियों की परंपरा है । ये अच्छार काले कागद पर सोने वा चाँदी के अज्ञारों लिखी होती हैं ।

तिब्बत ने उच्च चीनी प्रभाव नेपाल को भी दिया । इस प्रकार वहाँ भी चित्रकला

१—राहुल जी ने तिब्बती चित्रकला के विभान और प्रभाण आदि का प्रायः सम्पूर्ण ना० प्र० प० (नवीन०) माग १८, प० ३२५-३४६ में लिया है । इससे पाया जाता है कि पुराने भारतीय वा इधर के मुगल शैली आदि के विभान से वहाँ विशेष अन्तर नहीं । यही विभान प्रायः तारे एशिया का है ।

को भारतीय और नीनी प्रभाव मुच्च शीलियाँ चली आती हैं। नेपाली चिकित्सा (धानका) तिक्कतों वटों का मुकाबला करते हैं और वहाँ नीनी सक पात-कालीन चिकित्सा प्रथाओं की परंपरा चालू है जिनमें तिक्कत की मांसि काली बनीन पर लोने नाँदों के अक्षर होते हैं। नेपाली दोनों (अर्थात् तेल के पक्के रंगी बाले) चिकित्सा भी बनाता है। नमस्तः यह उसका निक्षण है, क्योंकि इस विधान पर न तो पर्यामी प्रभाव है, न ऐसा काम तिक्कत चाहिए में होता है।

पंखे से नेपाली की चिकित्सा पर मुगल-शीली का भी प्रभाव पड़ा। पर इसकी एक अलग रास्ता है; चार्मिक विधी में वे ही विशेषताएँ और शीलियाँ चली आती हैं जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है।

जिस प्रकार तिक्कत ने चीन की चिकित्सा को प्रभावित किया उसी प्रकार नेपाल ने भी अपने कलाकार उधर भेजे। इसका एक निर्दिष्ट उदाहरण प्राप्त है। १२७६ ई० में चीन स्थान के तीसरे उत्तरायिकारी कुम्हार स्थान के शिल्प-कौशल संबंधी कालानों का व्यवस्थापन एक नेपाली कलाकार नियुक्त हुआ। उसने अपने चीनी स्थामी के लिये बहुसंख्यक मृतियाँ और चित्र बनाए, तथा रागिर्दि भी तैयार किया।

नेपाल के चिकित्सार तिक्कत में भी वसे और वहाँ की भारतीय परंपरा बनाए रखने में सहायक हुए।

१३वीं १४वीं शती की तिक्कत, चीन, नेपाल की चिकित्सा में आदान-प्रदान की धारा-प्रतिधारा के कारण एक व्यापक समानता है।

कश्मीर और तिक्कत का इस काल में और इसके बाद चित्र-चिपक का संबंध या, यह खोब की बहुत है।

ग—अपर-भारत—इस काल में चीन, तिक्कत और सबसे बढ़कर मंगोलों के आतंक-वश अपर-भारत की संस्कृति नष्ट-भ्रष्ट हो रही थी, जिसे भी वहाँ की चिकित्सा किसी न किसी स्थान में १३वीं शती तक जीवित थी, क्योंकि उसका संबंध भर्म से था और चार्मिक कुलों में अक्षर चित्रों की आवश्यकता पड़ती थी। एवं उपरोक्त होता था। माकों गोलों के याचा-बूजान्त में इसके उल्लेख पाए जाते हैं।

ग—वरम तथा स्थाम—इहसर भारत के पूर्वी भाग से हमारा सबंध प्राप्त हैं। शती ई० पू० से स्थापित हो गया था। कमशा: वहाँ की ज्ञानमता दूर की गई और आर्य समस्ता का प्रसार हुआ। ५८ ई०पू०-०८ ई० में वहाँ भारतीय चिलियाँ लूँ चढ़ीं और कई भारतीय राज्य स्थापित हो गए। इनमें से उस चेत्र में, जिसे आजकल चरमा कहते हैं, वही

शती में दूरने पगान में एक नई राज्योंनी निवेशित हुई। यहाँ के कई मंदिरों (पगोदा) में भित्तिनिष्ठ बने हैं। इनमें अधिकांश १४वीं-१५वीं शती के हैं। उनमें कहीं तो पाल-शैली की छाप है और कहीं स्पष्ट रूप से अपभ्रंश शैली का आलेखन है जिसकी चर्चा कर सकते हैं।

स्थान में भी अपभ्रंश शैली से प्रभावित विजयाएँ गए हैं, इसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। इनके सिवा वहाँ बाट-सी-ज्ञम में १४वीं शती के, पलवर पर उत्कीर्ण कुछ रेखालिख हैं जिनमें स्थामी शैली की कोई विशेषता नहीं पाई जाती। वे लिहल के पोलोकारथ के उच्च १२वीं-१३वीं शती वाले भित्ति-विशेषों से इनके व्यक्तिक भित्तिनिष्ठ मिलते हैं कि, उमारस्थामी के अनुसार, उन्हें लिहली शिल्पियों ने ही बनाया है। स्थान की निकारी ओ—भित्ति-विशेष, पुस्तक-विजय और निवास के रूप में पाई जाती है—कभी बहुत केंद्रे वर्जन तक नहीं पहुँची। ही, यही छुक के काम (=जातिवास, लेफर) ने निस्तन्देह बहुत उत्कृष्टता प्राप्त की है। इस शिल्प के मन्दिर के द्वारा और लिड्डीकर्पां किरातों के पुट्ठे एवं बेटियाँ बनती हैं।

पाँचवाँ अध्याय

६२७. १५वीं शती से सांस्कृतिक पुनरुत्थान—राजनीतिक इतिहास के अनुसार मध्यकाल का अन्त और अधीनीत काल का आरम्भ १५०६ ई० से होता है। किन्तु जहाँ तक संस्कृति का सम्बन्ध है, १५वीं शती से एक नियमित और व्यापक पुनरुत्थान आरम्भ हो जाता है। वह वह समय या जब गुजरात, मालवा और जौनपुर की स्वतन्त्र सलतनतें स्थापित हो गई थीं। ये तीनों ही संस्कृति और उदार राज्य की बेन्द्र थीं।

इस सांस्कृतिक नवयुग के अन्तर्गत हम जिन विषयों की उधारित की गिजते हैं उन्हें अब एक-एक करके लेंगे—

१—संगीत—जौनपुर के इवाईमशाह शको (१४००—१४२६ ई०)

तथा उसके पौत्र हुमेनशाह शर्की (१४५०—१४७६ ई०) के दखारों में मारतीय संगीत की विशेष उच्चति हुई। वहाँ से स्याल-गायकी की एक नई पद्धति नली और कम से कम तीन नए गायों की उपज हुई।

इसी शर्की सल्लमत में उस इलाके के जिसका केन्द्र कड़ा-मानिकपुर था, शासक मलिक सुलतानशाह के पुत्र बहादुर मलिक ने संगीत के बीणोदार और संबोधन के लिये एक बृहत् सम्मेलन किया जिसमें नारी दिशाओं के कलारंती की एकत्र करके तथा संगीतरक्षकर आदि संगीत के अंदारह अन्धों को बटोर कर सब विवादास्पद वासी का निर्णय कराया और १४२८ ई० में संसीतशिरोमणि नामक प्रन्थ प्रस्तुत कराया जिसमें कुल निर्णीत वासें निहित थीं। शीघ्र ही इस ग्रन्थ का प्रचार दूर-दूर तक ही रखा।

इसी समय के लगभग, मेवाड़ में प्रतापी और कलाप्रेमी महाराजा कुम्भा का राज्य प्रारम्भ हो चुका था। वह नीचड़ा संगीतप्रेमी, गायक और निपुण वीणा-वादक था। उसने संगीत पर संगीतरक्षक नामक ग्रन्थ लिखा, संगीतरक्षकर और गीतगोषिद की टीका की तथा अनेक वेवताओं को गेय सुनियाँ भी बनाईं। उधर कश्मीर में परम उदार शासक जैनुल आबदीन अन्य कलाओं की उच्चति के साथ-साथ संगीत की उच्चति में भी प्रहृत था। उसके दखार में मारतीय राग और एद गाये जाते थे तथा तीन वज्री भी। उक्त संसीतशिरोमणि की एक प्रति उसके पास उपायन में पहुँची थी।

‘इन्हीं’ दिनों व्यालियर का अधीश्वर मान सोमर हुआ जो संगीत का बहुत बड़ा कोनिद और भ्रुपद गायकी का प्रवर्तक था। नायक नसार-नैव आदि जो इन्हीं की शिष्य-मंडली में थे, देश में दूर-दूर तक फैल गये थे। इन्होंने मान-कुण्डल नामक संगीत के एक उत्कृष्ट ग्रन्थ की स्वनाम की थी। जिसका मूल तो अभी तक अप्राप्य है किन्तु इसका औरंगजेब कालीन फारसी अनुवाद मिल चुका है।

तिरहुत में विश्वापति और बंगाल में चंडोदास भी इसी शर्ती में हुए। उनके मेव पदों के कारण उन प्रांतों में भी संगीत के योग्य पुनर्व्यापान की सम्भावना होती है।

लारोश नह कि देश भर में संगीत का पुनर्व्यापान प्रारंभ हो गया था।

तर—ब्राह्म—उत्तर-मध्यकाल की आरम्भिक शतियों के साथ वास्तु-कला एक प्रकार से अस्त हो जाती है। १३वीं शती के प्रारम्भवाले कुतुय की

लाठ के सिवा १५वीं शती तक मुसलिम रास्ता का भी ऐसा एक उदाहरण नहीं बिसठी और झाँगुलि-निंदेश किया जाय। जिसु १५वीं शती के साथ रास्ता का भी एक निखिल नव-जीवन आरंभ होता है।

मेवाड़ में महाराणा कुमार ने बड़े भजा और सुन्दर मन्दिर, प्राचाद तथा कीर्ति स्तम्भ बनवाये। उसकी प्रजा ने भी उसका अनुकरण किया। कश्मीर, मालवा, गुजरात और बंगाल की राजतानी ने भी अच्छी-अच्छी मस्जिदें, मकबरे, सराय और महल बनवाये। इन सभी मुसलिम इमारतों का रास्ता और अलंकरण मारतीय है जिसमें सातानी रास्ता और अलंकरण के केवल वे छंगा लिये गये हैं जिनसे चाल्हा में कभी नहीं आ सकती थी।

मान तोमर का मालिगर दुर्ग और प्राचाद १५८६ ई० में तैयार हुआ। वह रास्ता का बड़ा उत्कृष्ट उदाहरण है। इस प्रकार यह लहर भी आपक थी।

ग—मक्कि—१५वीं शती के उत्तरार्द्ध में रामानन्द ने, जो रामानन्द की परम्परा में थे, देशभाषा के द्वारा अपना प्रचार आरम्भ किया। वे यिना किसी भेदभाव के लक्ष्य किया बनाते थे। इसी १५वीं शती में इनके मुख्य शिष्य कबीर हुए, जिनका महान् अक्षित्व भाष्मिक मिथ्याचार और स्वेच्छाचार के विकृद्ध ममक उठा। उन्होंने शाक मत का, जिसका बड़े रूपों में उस समय बोर था, एवं हिंदू-मुसलिम की वर्मानवता के कावे परिणामों का तीव्र विरोध किया और इन दोनों को निकट लाने के लिये सबसे पहले राष्ट्रसमय निशुंगा नक्किचारा बढ़ाई। महाराष्ट्र में उनके तुलाकालीन शस्त्रिय नक्क नामदेव हुए, जिन्होंने खाली साधनों का घोथायन बताकर मन की कुदि और हरि के धान का सन्द्या भारी दिलाया। इसी शती के उत्तरार्द्ध में निशुंगा नक्कि के सबसे सफल प्रचारक मुख नानक (१५६३—१५३२ ई०) हुए, और इसी शती के बीते बीते चैतन्य महाप्रभु (१५२५—१५३३ ई०) ने गुण मक्कि का प्रचार करके नड्ड्यात और वामपानी से बंगाल का उढ़ार किया। प्रायः इसी उपर्योग में उल्लभाचार्य ने जब को अपना फैन्ट बनाकर वही उत्कृष्ट समुण्ड-मक्कि का प्रचार किया। उन्होंने अपनी भगवत्सेवा-पद्धति में कलाओं को प्रमुख स्थान दिया। वज्र में आचार्य हित हरिशंख ने भी इसी शती में अपना सम्प्रदाय ललाया। वे उत्कृष्ट पद्धतें दिता ने। उनके सम्प्रदाय ने गावकी को विशिष्ट प्रणालि प्रदान की।

घ—साहित्य—विद्यापति ने १३८० ई० में अपनी उपभूषा की कीर्ति-

लगा पूरी की। इसके कुछ ही बाद से १८८७ है। तब वे मैथिल पद जिससे थे। नहीं काल साहित्यिक संकाति का है, किंतु कीर्तिलता आपनें यही अंतिम गश्य पुस्तक है; दूसरी और उनके पढ़ों की रचना ऐसी मैथिल में है जिसका मूँह अपनें यही थी और नहीं, बल्मान मैथिल की ओर है। उपर बंगला साहित्य का उदय राजा गणेश (१८०६-१५ है) के समय से हुआ। चंडीदास के प्रसिद्ध पद इसी काल के हैं। उपर वही ने पूरबी हिंदी में अपने पद दों और भोजने रखे। नामदेव ने मराठों के साथ हिंदी रचनाएं भी कीं।

इस शती के उत्तरार्द्ध में नानहान ने निरुंगा भक्ति के पद रचीं और इसके अंत होते-होते वो भी यापक हुए, उन्होंने अपनी रचनाएं कीं। इनमें से बैज्ञानिक की रचना में पर्याप्त साहित्यिकता और ब्रह्माद्या की रीति-कविता का वीच निहित है। सूरदास के पढ़ों का भी बनना बंभवतः १५वीं शती से आरम्भ हो गया था एवं रीति कविता के प्रथम कवि गंगा भी प्राप्तः इनी शती के अन्त से कविता करने लगे थे।

अब वही के कथा-काव्य पहले से ही चले आ रहे थे। १६वीं शती तक इनका पूर्ण विकास हो गया था। बद्यपि इनका उत्तर जगमनाला राज जारसी की पद्मावत १६वीं शती के पूर्वीं की रचना है जितु उसके पहले की भी कम से कम नार रचनाएं थीं जिनका इंगित जायसी ने किया है। इनमें से शेष कुछुक्षन कहत मुगावती का रचनाकाल १५०१ ई० है, शेष का उससे भी पूर्ते। इस प्रकार कथा-काव्य के साथ ही अब वही के राहित्य का विकास भी १५वीं शती में रिपर होता है।

इसी शती के अंतिम दराक में चंडीपुर दे, बैरागी सेना के प्रमा नव, एकनी हिंदी और उसके साहित्य का बनन हुआ जो उदू और खड़ी जाती के बाह मध्य का भूज है।

इस प्रकार बाह मध्य का नवीन युग भी १५वीं शती से आरम्भ होता है।

§ २८. चित्रकला का पुनरुत्थान—इस नौमुले सांकेतिक पुनरुत्थान ताली शती में चित्रकला का पुनरुत्थान न हुआ हो, यह शार्तम् है।

क—उपर कह चुके हैं कि 'आपने यहाँ मित्रिवित की वरपरा आज तक भली आई है' (§ २५)। तो, महाराणा कुमार के बस्तु में उसे निश्चयपूर्तक स्थान मिला होगा। इस काल के गड माड (मालवा) के नवन भी मित्रिवित किए गए थे। वहाँ के गदाराह के नवन में अवशिष्ट मेवसीराय और उनकी पत्नी के विच इसके साथी हैं। ताल में ही इंडिया आकिस लाल्हे थी, लेदम के लंब्रह से प्रसिद्ध विद्वान्—रामट रैकेलन ने नियामननामा नामक ग्रंथ की

एक सचिव प्रति का आविष्कार किया है। वह प्रति १५वीं शती के अंतिम दशकों में समयः मंडू के मुल्लान गवासुदीन खिलबी के लिए प्रसुत ही गई थी। इसमें अनेक चित्र हैं जो भारतीय एवं तमकालीन दैरानी शैलियों के मिश्रण से तैयार हुए। इनकी मुख्याहसियाँ बैर-मूपालों एवं संपुङ्कन में राजस्थानी शैली बीज रूप में बर्तमान हैं। चेहरे तो प्रायः सर्वत्र ही प्रकल्पमी हैं (३२ च.) ।

इसी के साथ अन्य सुलतानों की छवियाँ राजा में दैरानी शैली नाले नियन्त्रण तत् रहे हैं। दा० पटियाउलान ने ऐसे अनेक चित्रों का पता लगाया है। इनमें स्थान स्थान पर भारतीय अभिप्राय है।

त—राममाला और उसके घ्यान इस शती में विद्यमान हैं। यिन संगीत की इतनी उत्तमति के साथ राममाला के चित्रों की माँग न हुई हो, ऐसा नहीं हो सकता।

ग—कथा-काव्य-की सचिव प्रतियाँ और उसके बाद रीति-काव्य के लंबों के नियमी अपेक्षित रहे होंगे। और स्वोपरि—

घ—जिन प्रभास्तीकों ने लोक के विचार में उत्तम-प्रथल मना दी थी, उनके नियम उनके अनुगामियों के लिये आवश्यक रहे होंगे।

ङ—इसी प्रकार स्थान भक्तिमार्ग के मुख्य उपास्य कुण्डा की लौला और सुतियों के चित्रों की भी बही माँग रही होगी।

किंतु उच्च सब आवश्यकताओं को स्वीकार कर लेने पर भी प्रश्न यह खड़ा होता है कि इनकी पूर्ति के लिये जो विज्ञ बनते थे वे उत्तर-मध्यालाल में उपास अपभ्रंश शैली के होते थे परं संस्कृत के अन्य ग्रन्थों की माँति नियकता के भी दिन बहुरे थे।

मिस्त्र-चित्रों के संबंध में अभी तक कोई खोज नहीं हुई है, अतः उनका कोई सहारा नहीं रह जाता। राममाला, कथा-काव्य तथा कुण्डलीला और सुति के वे विज्ञ जिनकी चर्चा ऊपर यथाकथ ३२५ तक तथा ३२५ तक ३१ में ही चुकी है, इसी शती के बने हुए हैं। उनसे उच्च प्रश्न के विकद उत्तर मिलता है, क्योंकि वे सब अपभ्रंश शैली के हैं।

परन्तु बही यह बात है वही कुछ ऐसी चारों भी मिलती है जिनसे नियन्त्रकला का नवयुग भी १५वीं शती से प्रमाणित होता है। यह उत्थान राजस्थानी शैली के रूप में था जैसा कि हम अभी देखेंगे।

३२६. राजस्थानी शैली—क—उच्च अपभ्रंश चित्रों में से बालगोपालसुति की प्रतियों में दूचों की पत्तियों का जो आलेखन हुआ है उसमें अपभ्रंश शैली की परंपरा मिलकर छोड़ दी गई है और उसके स्थान पर एक दूसरा आलेखन काम में लाया गया है।

यह आलेखन १९३०-१७वीं शती के राजस्थानी शौली चले चिंतों के दृष्टों का वदः पूर्ण है। इसी प्रकार अपभंग शा चिंतों में लियों की चोलियों का छंकम सुनिश्चित चलता है; किंतु 'स्तुति' के चिंतों में उनका आलेखन उस प्रकार हुआ जैसा उस समय की स्थिरी पहनती थी, अर्थात् उन चोलियों के द्वारा पंछि का पल्ला नीचे से ओड़ा मोड़ा खुला रहता है। आरम्भिक राजस्थानी चिंतों में यह बात बराहर पाई जाती है। 'स्तुति' की बोस्टनवाली प्रति में एक बाहा सब्बाच्चरम चेहरे के बदले एकचरम चेहरा आया है जो राजस्थानी शौली का निष्ठन है। ऐसे दो एक और उदाहरण भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इन चिंतोंपासी से जान पहला है कि उस समय राजस्थानी शौली चल पाई थी जिसकी ऊँक निशेषतापूर्व अपभंग शा चिंतों में ली गई अन्यथा ये ऐसी संकीर्ण कला में बैठे थे जातीं।

इसी काल के कवीर, नानाकदेव, रितहरिवंश और बल्लमानार्थ की लुचियाँ भी मिलती हैं। यथापि ऐसी शब्दोंका समग्र अपेक्षाकृत इधर या है, किंतु उनकी अकृतियाँ इतनी निश्चित हैं और उनमें इतनी बास्तविकता है कि वे असंदिग्ध रूप से असली और समसामयिक चिंतों की पारप्रतीक प्रतिकृतियाँ प्रमाणित होती हैं। इन चिंतों में अपभंग शौली की कोई भूल नहीं निलती और न उस शौली में ऐसी राबीह लिपने की शक्ति भी थी, अतएव ये तीनों ही छाक्षियाँ मूलतः राजस्थानी शौली भी हैं।

रामती और बाबबहादुर के बनविहार और शिकार के चित्र तथा रामती की अकेली छवि भी परंपरा से नहीं आ रही है। इनमें भी मूल राजस्थानी प्रहृति अभी लक्ष जाती जाती है। रामती-बाबबहादुर की कहानी १५६२ ई० तक तय हो चुकी थी। अतएव इन चिंतों के बीच उसके पहले के होने चाहिएँ।

उपर एक कल्पनार की आमु या चले राम-रामगी और नृत्य के बरण आदि के चिंतों का उल्लेख हुआ है (§ २५, ल १)। इनकी शौली अपभंग होते हुए भी इनमें बो पीने-दो एवं डेहचरम चेहरे हैं उनपर सह राजस्थानी शौली का प्रभाव है। ऐसा प्रभाव इस शौली के अस्तित्व बिना कैसे पहला।

कुछ चर्चे पूर्व प्रसिद्ध लोकी काले खंडालावाला ने सिद्ध किया था कि जौनपुर वाले ऊँक कल्प-नूप के चेहरे वस्तुतः एकचरमी हैं किंतु भी उनमें भर्ली अलि चली आ रही है।

इन प्रमाणों से राजस्थान शौली का आरम्भ १५वीं शती के उत्तरार्द्ध से १६वीं शती के पूर्वी के बीच, संभवतः १५०० ई० के लगभग, असंदिग्ध रूप से प्रतिपादित होता है।

ल—राजस्थानी शौली का अपभंग शौली है, चिंतों में उनका अन्तर नहीं है किन्तु विचार और आलेखन सम्बन्धी कुछ जातों में। जहाँ तक विषयों का प्रश्न है, अप-

अपनी शैली की, अबीह के अमाव और जैन नियों की प्रचुरता के सिवा आर्थिक राजस्थानी शैली से बहुत कुछ व्यापकता है। दोनों में राजमाला, शृंगार, शृणु और कृष्ण के नित्र मिलते हैं। रेतोंक शैली में उनकी प्रधानता है, अपनी शैली में वे गौण हैं।

दोनों में विभान और व्यालेन्स के मुख्य अंतर ये हैं—

अपनी ये विभ मुख्यतः आर्थिक हैं, और इकाहे कागद पर बने हैं जब कि राजस्थानी विभ मुख्यतः छिप निय है, अबीह वे अलग अलग वस्त्रियों (एक लंग व्याये हुए वई वर्त कागद) पर बने हैं (₹ ५० रु.)। दूसरा अन्तर एकद्वयम चेहरे का है। अपनी शैली में तीर्पंकरों वा देवी-देवताओंके सम्मुख चेहरों को छोड़कर, शेष चेहरे सवाचश्म है। इधर राजस्थानी शैली में एकद्वयम चेहरों की प्रधानता है जिल्लों अपनी शैली सवाचश्म चेहरों में परली छाँग के विलक्षण विकल पर वे निरर्थीक ही बाने के कारण और परले गाल के प्राप्त निःशेष हो जाने के कारण जो कुछ वस्तु रहता है वह एकचश्म चेहरा है। वही आर्थिक राजस्थानी शैली में जो का त्वयि ले लिया गया है। तीसरा अन्तर रंगों का है। अपनी शैली की वर्णिका मुख्यतः लाल, लालवर्दी और वीले रंग की (विलक्षण रूपान् धैर्घ्य से नोना ले लेता) है। इसके विपरीत राजस्थानी शैली का निपक्ष अनेक नटकीले रंगों का प्रयोग करता है और उनका वज्रन् ऐसा रस्ता है कि, व्यापि उसके मुख्य रंग मीलाल और वीले ही हैं, वे सब रंग 'चोला' करते हैं एवं अस्थि लाल-वीले को अनदेखा कर देती हैं।

इन मुख्य मेंों के निता राजस्थानी नित्र अपनी ये शैली की अन्य विशेषताओं—जन्मी-उरेह (आपरिमिक डाईग), नाड़ी के अमाव, मुलाहृति, आैल, अलंकरण, पेर पालो एवं बल के आलंकारिक व्यालेन्स तथा बारात पर के बेलबटो—को बहुत दिन तक नियाए जलता है। इन तुलनात्मक व्यापकता का भारी यही निकलता है कि राजस्थानी शैली अपनी ये शैली का एक नवीन उत्पाद है। दूसरे शब्दों में, १०वीं १०वीं शती से जो अवनति होती आ रही थी उसके बदले अब उभयति का क्रम चल पहा।

यह पुनर्व्याप्ति गुबरात और दक्षिणी राजस्थान—मेवाह में हुआ जान पड़ा है। आर्थिक राजस्थानी चित्रों में अधिक वास्तु १५वीं शती के गुबरात का है। अकबर के समय में गुबरात, अन्य कलाओं के साथ साथ विवरकला का एक मुख्य केन्द्र था। अकबर के मुख्य विवरकलों में से कम से कम छः गुबराती में। इस इच्छे कामों चाहिये—१५वीं शती का प्रसिद्ध गुबराती तुलसान महामूद बेगङ्हा कला का एक प्रमुख समाधानदाता था। कश्मीर

उसका मिथ्या था और वहाँ उस समय जेनुलशाहदीन का परम उभत और उदाहर राज था जैसा कि इस अध्याय के आरंभ ही में कहा जा चुका है। ऐसी कोई भी कला न भी जिसे उस महामना ने समझत न किया हो। जार (₹ २५ रु) इस देख चुके हैं कि वहाँ श्रमणी निधन-कला की एक शैली विद्यमान थी। इसमें अवंता की सजोवता पर्याप्त मात्रा में बच रही थी जैसा कि इस अप्पों देखेंगे। सो-उच्चर कश्मीर में और इधर गुबरात में जब ऐसे चानक बने हुए ये तो वहाँ से विकलारी का इधर आना सर्वथा संभव है। कुंभा ने भी श्रमणी मुण्डाहक्ता के कारण कश्मीरी निधकार चुनाये हों तो आश्चर्य नहीं। अपवृश्टि शैली से राजस्थान शैली की जो विनियोग (अर्थात् नृत्यनाट्य) है, उनमें से कई निष्ठनपूर्वक कदमोंर शैली की है।

वहाँ सह इमने देखा कि— (१) राजस्थानी शैली का उद्भव अपवृश्टि शैली से, (२) गुबरात—एवं भेलाड—में, (३) कश्मीर शैली के प्रभाव द्वारा, (४) १५ वीं शती में हुआ। ऐसे कठिन नियम प्राप्त हैं किनमें नहीं पर मुगल प्रभाव नहीं पाया जाता तार्थीन वे निष्ठन पूर्वक १५वीं शती की परम्परा वाले रामिनी में का है।

इन प्रारंभिक राजस्थानी चित्रों में पुरुषों का जो पहनाया, अपर्ण गढ़ी, बाना, पावनामा और पटका, पाया जाता है उसके कारण में मुगल कला से व्युत्पन्न नहीं प्रभागित किये जा सकते क्योंकि वह परिच्छेद मुगल नहीं भारतीय है जिसे अकबर ने कुछ परिवर्तन पूर्वक महण किया था।

किंतु राजस्थानी शैली के १५वीं शती से आरम्भ के लिये हम उक्त चित्रों की ही साक्षी पर अवलंबित हों, सो नहीं। अकबर के लिये १५६० ई० से आरम्भ करके १५७५ ई० ही साक्षी पर अवलंबित हो, सो नहीं। अकबर के लिये १५६० ई० से आरम्भ करके १५७५ ई० तक जिससा अमीर हम्मा की एक विस्तृत विद्याली नैयर की गई थी (₹ १५ रु १.२)। इस विद्याली में कितने ही अंश देखें हैं जो अलंदिव्य और निविदाद रूप से राजस्थानी हैं। इनके सम्बन्ध में तक भी अपवृश्टि कला नहीं। इन्हें देखते ही इनकी शैली के विषय में किसी शंका की मुंजाइया नहीं रह जाती। अताएव इन उदाहरणों के सामने कोई दलाल नहीं चल सकती। यदि हम्मा विद्याली के समय तक राजस्थानी शैली का एक निश्चित रूप न हो गया होता तो वह इसमें कहाँ से आती। इस निश्चित रूप के लिये कम से कम पचास वर्ष का समय तो चाहिए।

इम्मा नामी वाले उक्त अंशों के अध्यन्त निकटवर्ती रागमाला के भी कुछ विचार प्राप्त हैं। इनमें की वास्तु शैली अकबर-नास्तु से कुछ पूर्व भी है (कलक ७)। ऐसे चित्रों का

१—देखें—‘हिंदुस्तानी’, अपरैल १९३१, पृ० २२७-२३८.

समय हम्बा चित्रकली से दूर नहीं।

इ ३०. राजस्थानी शैली का वर्गीकरण तथा समुचित नाम— शोः कुमारस्थानी ने राजस्थानी शैली का वर्गीकरण पहाड़ी शैली के साथ राजपूत शैली नाम की एक प्रभान शैली के अन्तर्गत किया है; अर्थात् उन्हें अवैत्तीन काल की भारतीय चित्रकला के मूल दो वर्गों में है—राजपूत शैली और मुग़ल शैली। इन्हुं राजपूत शैली मानने की ओर एक गुंजाई नहीं है। यद्यपि राजपूत-जाति एक शासक-जाति थी, तो भी एक ऐसी जाति का प्रभाव समाप्त रूप से कला पर नहीं पड़ रक्खा जिसके देश भर में भिज-भिज केंद्र हो, साथ ही परम्परा एवं राजनीतिक परिस्थिति ने भिज-भिज हो। फिर राजस्थानी और पहाड़ी शैलियों के कलात्मक लिंगस्तो, जैसे—पिण्यो, अभिलाङ्क, अंकन शैली आदि में इतना अन्तर है कि दोनों एक शीर्षक के अन्तर्गत नहीं आ सकती। पहाड़ी मुख्यतः आलंकारिक, दूलही शामिल-जनात्मक (=जनात्मक) कला है। राजस्थानी का जन्म १५वीं शती में अपशंश शैली से हुआ, जैसा कि हमने अभी देखा है; पहाड़ी का जन्म १७वीं शती में हुआ जैसा कि हम आगे देखेंगे (इ ४८)। यह समय और प्रकृति का अन्तर भी विशेष महत्वपूर्ण है। इन अन्तरों के होते हुए राजपूत नामक एक व्यापक वा प्रधान शैली की स्थापना नहीं टिक सकती।

राजस्थानी शैली के आरंभिक इतिहास के सम्बन्ध में यहाँ आब तम १५वीं शती एवं उसके बादवाले उन लकड़ी तथा घटनाओं की ओर प्रहृत होंगे जिनका स्थानी और व्यापक प्रभाव आगामी शतियों में, यहाँ की चित्रकला पर ही नहीं, समृद्धी संस्कृति पर पड़ा।

छठा अध्याय

₹ ३१. मुगल साम्राज्य का आरंभ—जिन दिनों इसर राजस्थानी शैली (₹ २६) का जन्म हो रहा था, उन दिनों—१५८३ ई० की बात है मारत में मुगल साम्राज्य के संस्थापक, अकबर के पितामह बावर का जन्म हुआ। वह महान् विजेता और संदर्भक लेन्दर की पर्वती पीढ़ी में था। बावर की माता वा कोई मातामरी नगेव नान के बंश की, अर्योत्तम नंगोल थी। इसी से यह बंश मुगल (= नंगोल) कालाया, अन्यथा यह दूरानी (तुक़) था। मुगल बादशाहों को जैसे अपनी तैमूरिया (तुक़) परंपरा का गवं था, ऐसे ही अपनी नगेव-नानी (नंगोल) परंपरा का भी अभिमान था और वे दोनों कुलों की रीति बड़े गौरव से बर्तते थे।

बावर के शैशव में तैमूर-बंशियों के हाथ में तैमूरिया साम्राज्य के कई छोटे छोटे राज्य भर चब रहे थे। उन्हीं में से आमून-सिर प्रदेश के फसाना राज्य का राजस्थान उमर शेख बावर का पिता था। बावर जब म्यारह बरस का था तभी एक दुर्घटनाकाश उमर शेख गत हो गया और उसे राज्याल्लीन होना पड़ा। तभी से बावर के बीच में बावर-माहे आरंभ हुए। अवधि: १५८३-१५८४ ई० में, अपने देश से मदा के लिये विदा होकर वह काहल शाया और तभी से उसकी हाँ भारत पर गहरी। १५९६ ई० में उसने भारत पर अक्षय किया। इन दिनों वहाँ की आंतरिक दशा बड़ी दुरी हो रही थी, फलतः कई भारी लहाइयों के बाद १५२७ ई० में विजय लखनी ने भारत का राजमुकुट निरिचत रूप से बावर को पहना दिया।

₹ ३२. मुगलों में संस्कृति और कला-प्रेम—तैमूरिया बंश आरंभ से गंगारी और गुणियों का आबद्धता था। स्वयं तैमूर बहुत बड़ा संदारक दोते हुए भी, कलाकारों का रक्षक था। किसी नवर को बीतकर भले ही उसकी सारी जनता को जपा डाले किन्तु कारीगरों को अपनी राजानी में देता था (₹ ३३ च.)। तैमूर का पुत्र शाहरुख कहि था और उसके दरबार में विचार भी थे, जिनमें से एक शाहरुख के राजदूतों के संग बीन तक गया था। ५४ वीं शती के अन्त में इस बंश के मुलतान हुनेम भिजों ने अपने समय के अन्देरे से

अच्छे चित्रकारों को आपने पहाँ रखा था, जिनमें विहबाद मी था जो ईरानी शैली का सर्वमंदिर निपत्तकार है। इसी मांति एक अन्य तैमूरिया, बैंगंग मिर्जी के दरवार में इसी १५८३ ईसी में मीर अली रहता था जो कारसी लिपि के नस्तालीक नामक भेद का सर्वथ्रु लिपिहर था।

बाहर में भी यह कुलगत कला-प्रवृत्ति पूर्ण सम से विद्यमान थी। किंतु इसके सिवा यह ऐसा ग्रीढ़ गया-लेखक था कि उसका आत्मचरित, जो तुकी भाषा में है, विश्व-साहित्य की नीज है। इस रामकहानी में उसके घटनाक्रमों के बहुत विशद और लक्षीय वर्णन तो किए ही हैं, मनुष्यों के नत्-शिश एवं प्रकृति तथा स्वावर-जंगम जगत् के ऐसे सच्चे श्रीर सज्जीव शब्द-चित्र भी खीचे हैं कि मानना पड़ता है कि वह पहुँचा हुआ मुलाखिर था; भले ही उसने रंग और तृतीका का प्रयोग कभी न किया हो। विहबाद के लियों की उसने मार्मिक उमीदों की है अपनी वह कहती ही नहीं, कला का आलोचक भी था।

हुमारू (१५३०-५६ ई०) ने भी वह पारंपरीय बाय प्राप्त किया था। वह कहना कि उसका कला-प्रेरणा, विषय के दिनों में उसके ईरान-प्रवास का फल था जहाँ शाहतहमार्य ने उसे इस भौत प्रवृत्त किया था, गलत है। ईरान में तो उसे निरादर के सिवा कुछ शौर, बहुत गोङ्गा ही नसीब हुआ था। आरम से वह अपनी कल्पना द्वारा अनेक कलात्मक चीजें बनवाता था जिनमें चित्रकारी को भी स्थान मिलता था। उसका विषय-प्रेरणा इसी से समझा जा सकता है कि अपनी मुद्र-नामाओं तक में वह अपने संग लंबिक पुस्तकें रखता था एवं वह वह शेष्याह से हारकर मास्चाह और सिंध के दूसरे मार्ग से ईरान की ओर जा रहा था तो उसके गाड़ि के साथियों में चित्रकार भी थे। इसी यात्रा में एक दिन वह अपने बेरे में नहाने का काला पड़ने वैठा था। कहीं से उड़ा हुआ एक पलेल वहाँ आ गया। बादशाह ने उसे फड़ कर कतरनी से उसके पर काटे और अपने चित्रकार से उसकी तस्वीर बनवाकर छोड़ दिया।

हुमारू ने अपनी विषय का आग़ एक बरत ईरान में लिया था। १५४४ ई० के अन्त में जब वह वहाँ से कालुन लौट रहा था तो राते में, तबे ज में, शीराज-निवारी स्थाना अबदुस्समाइ नामक कुरुक्षुल चित्रकार और लिपिकर, जिसकी उपाधि शेरीफ़ कला के कारण शूरीकिलम थी, उससे मिला। चित्रकला-प्रेमी बादशाह ने स्थाना को अपने नाम बनाने के लिये कहा किन्तु वह न चल सका। मगर १५४७ ई० में, जब बादशाह कालुन में पैर बमा चुका तो उक्त स्थाना तथा मर मंसूर नामक चित्रकार का पुत्र मीर मैयद अली नामक को 'जुदाई' उपनाम से बनिता भी करता था, उसको सेवा में आ गया।

मिठु हुमारू के समय तक मुगल दरबार की कोई अपनी चित्रकला न थी। उसमें ईरानी शैली (५३३ ई०) के अन्तर्गत हिरात की कलम को ही आधय मिला था। अकबर

के समय से इस रिपोर्ट में परिवर्तन हुआ। उस परिवर्तन पर विचार करने के लिये मह आवश्यक है कि उस समय तक की ईरान तथा अन्य मुसलिम देशों की चिन्हाकारी के इतिहास और किसेप्रताओं का सिद्धावलोकन कर लिया जाए ताकि उक्त अकाद के आधार में विच विचारका का विकास हुआ उसका ठोक-ठोक विवेचन किया जा सकता है।

६. मुसलिम देशों की १६वीं शती के आरम्भ तक का चित्रकला—

न.—इराक—इराक मूसा के उपरेश्यों का अनुसरण करते हुए इजरात-मुहम्मद ने, निष्ठागा बलुओं—इक, फूल और मकानों के चित्र लोड़कर, अन्य नियों का आलेलन निष्ठिद दृढ़तारा। किंतु द्वीं शती का अन्त होते होते खलीफाओं में यह निष्ठेव दूटने लगा। उन दिनों बाले बगादाद के खलीफा विशाल प्राच्याद बनवाने लगे जिनमें मनुषों और प्राणियों की आकृतियाँ मिल-जिली में हैं। १३वीं शती से जनता भी प्राणियों के चित्र बनाने लगी।

इस बीन आरबी में आर्मिक साहिल के लिया ऐसा वाहिन्य में तेवर हो जला था जिसके प्रति पक्के मुसलिम उपेक्षा या कम से कम उदासीनता रखते थे। ऐसी पुस्तकों में विजान गतिशील, खगोल, निकिता आदि के साथ सजोपरि अपने पंचतत्व का अनुवाद भी है। इस पुस्तक के एशिया एवं योरप के अधिकांश में फैलने की जगह इसकी कवानियों से कम रोचक नहीं। पहले पाल; इठी शती में ईरान के स्माट खुसरो अनुशीर्षकों के राजकाल में पंचतत्व संस्कृत से पहलवी (उस समय की ईरानी) में अनूदित हुआ; द्वीं शती के उच्चरार्थ में इस पहलवी का अरबी अनुवाद हुआ। सम्भवतः पहले पेसी भी सोक्षिय पुस्तकों का विचार आरम्भ हुआ। इनमें से वैज्ञानिक पुस्तकों का विचार आवेताओं के मुद्रितार्थ किया जाता था। चित्रकला का निरूपण कपा-बाड़ मध्य के चित्रों में ही होता था।

१६वीं से : ३वीं शती तक के अरबी अन्यों बाले चित्र शाम और ईराक शती के है जो ईसाई धर्म से सम्बन्धित भी और इस्लाम के जन्म के बहुत पहले से जली आती थी। यह ईती निर्विवाद कम से अधि-मारत की चित्रकला (₹ २६ ल) से उत्पन्न थी। जो विद्वान् इस हृद तक जाने की तैयार नहीं थे नी इतना तो मानते ही है कि, उसमें पूर्वतः प्रभावित थी। वह मिह जो चुक्क है कि देवी मरियम और यिशू ईसा का चित्र बीज गारीबी के चित्र से उत्पन्न हुआ है। इस्लाम के उदय से एर्व बीद सम्प्रदाय परिवार का मुख्य धर्म था, जिसका वित्तार जापान से लख एशिया तक था। बखुब गम्पदाय को एक कोने में दबाकर, वह ईरान के भी बहुत बड़े अंग में फैला हुआ था। अस्तु, उक्त मारतीय प्रमाण इन खलीफा-कालीन बगादाद लेन के चित्रों पर भी पाते हैं। यो तो प्राप्त: इन सभी चित्रों में यह प्रमाण विद्यमान है किंतु कुछ उदाहरण तो प्रेसे हैं जिसके तम्बूष्ठ में कोई ननुनक्ष चल ही नहीं रहता। इसम

में की आहूतियाँ सो मुद्रा और आनन्द में कुद्र के बहुत जटीय हैं। इस कला के मिश्र बाले चित्र भी ऐसे ही हैं।

ख—ईरान— इस्लामी प्रचार के पीछे पीछे उक्त शैली ईरान में भी पहुँची। किंतु गोडे ही दिनों बाद वहाँ मंगोल प्रभाव की तहर आई और ईरानी चित्रकला में चौनीयन व्याप उठा। इस चौनीयन में भी भारतीय प्रभाव था जो बौद्ध मत के कारण चौन पहुँचा था (६६ २२, २६ क.)। किंतु यह प्रभाव स्वल्प था। हाँ, महमूद गजनवी के आदेश से जो काम करने वा जिन पर उसकी दरवारी संस्कृति का प्रभाव है उनमें भारतीय अपभ्रंश शैली का प्रभाव कुछ विशेष रूप से गाना जाता है, क्योंकि उस स्थान के समाव में भारतीय कलाकार भी थे।

ईरान में उक्त मंगोल प्रभाव चल ही रहा था कि १३वीं शती के उत्तरार्द्ध में मध्य-एशिया में तैमूर का उदय हुआ (६ ३२)। चहुत बहा उत्तरार्द्ध होते हुए, नो वह ऐसा कला-प्रेमी था कि वहाँ पर कल्पनाम करता था वहाँ के भी चुने हुए कारीगरों को अपनी राजधानी समरकल्द में भेज देता था। १४०६ई० में तैमूर की मृत्यु हुई। उसके पुत्र शाह्रुख ने अपने तामाज के सबसे भीतरी बंश पर्व ईरान के पूर्वी भागवाले हिरात नगर को राजधानी बनाया। उसकी कला-प्रियता के कारण इसी हिरात में ईरानी चित्रकला की एक नई शैली का जन्म हुआ जिसे आबकल हिरात शैली कहते हैं और पुराने लोग हिरात कलम। भौमिक रियति एवं आभयदाता के अभिभवन के कारण स्वभावतः इस शैली पर अभिभारत की चित्रकला (६ २५ ख) का कानी प्रभाव था। इस शैली में ईरानी कला का जितना उल्कर्णी हुआ उतना तब तक की किसी शैली में नहीं हुआ था।

१५वीं शती के उत्तरार्द्ध में उत्ताप चिह्नाद इस शैली का सबसे बड़ा चित्रकार हुआ। वह हिरात में ही तैमूर के बंशब हुएन मिर्जा के दरबार में था (६३२)। १६वीं शती के आरंभ में इस साम्भव्यदाता का अन्त हो जाने पर ईरान के सफ़ी बंश का पहला स्थान शाह इस्लाहित चिह्नाद को तबै ज ले गया। इस प्रकार चिह्नाद शैली का प्रचार ठें ईरान में भी हुआ—और ऐसा हुआ कि उसके पहले जितने बड़े-बड़े चित्रकार हुए थे, लोग उसका नाम तक भूल गये एवं चिह्नाद एक स्वर से ईरानी शैली का सर्वथेष्ठ चित्रकार माना गया तथा आब तक माना जाता है। चिह्नाद की इस अद्भुता का मुख्य कारण रंगों और लिखाई की उत्तमता के साथ-साथ यह भी है कि उसने ईरानी कला में जो भी चित्रांश प्रभाव थे, उन सब का बड़ा सुन्दर समन्वय करके उसे एक रूप कर दिया।

ग—भारत की मुसलिम-विजय के मुख्य उद्दैरेसों में भाष्य-प्रचार भी था। अतएव यहाँ के मुसलिम-शासन भारीक नियमों के अधिक प्रचारन रहे। फलतः मुगलों से पहले के प्रामाणिक मुसलिम-विजय ग्रामों नहीं मिलते, मुहम्मद तुगलक (१३२५-४१ ई०) का एक तथा वर्धित विजय कलकत्ता संग्रहालय में है, जिसे वह १८ वीं शती की दौरी शैली बाले शाहनामे की जिसी प्रति का पत्रा है। इसे किसी आधुनिक जालिए ने बसली पर जमाकर फीकी स्पाई से मुहम्मद तुगलक का नाम लिख दिया है, जिससे हेचत तथा कुमारस्वामी तक पोछा क्या गए। अब स्टेजा कैमरिश ने शपनी पुस्तक एवं सर्वे व्यव पेटिंग इन द डेन्म' में प्रमाणित कर दिया है कि वह विजय दक्षिण शैली का है और '१८वीं शती से पहले का नहीं हो सकता।

मुहम्मद तुगलक के उत्तराधिकारी फौरोज तुगलक (३५१-४८ ई०) ने अपनी आलमकथा जिली है। उससे पता चलता है कि विजय-प्रेमी होते हुए भी उन्हें प्रातादी में, जो प्राणियों के विजय है, उन्हें भारीक कर्त्तव्यवश पुत्रवा दिया या और बर्गीनों के दृष्टि अंकित कराए थे। इस एक घटना में उन दिनों के अमरतीय मुसलिम शासकों की तारी भाजना निर्दित है।

इच भारीक पावनी का एकमात्र अपनाव मुजलान इखुलमिश (१४११-३६ ई०) का जादी का टंक (चिक्का) है। जिसे उसने बंगाल-विजय के उपलब्ध में चलाया था। इस पर जोड़ा उड़ाते हुए उसकी बड़ी ही बानधार तसवीर बनी है। पिछे वह भी नानने का दूरा कारण है कि प्रावेशिक मन्त्रमतों में, विशेष रूप से माईू में कुछ सचिव प्रतिष्ठा, इद्वीं शती के ग्रामम में तैयार हुई। इनमे निवामतनामा नामाक पाक-शासन की एक पुस्तक है। इसमे दैरान की शीरिज चेत्र बाली तुक्की शैली के साथ साथ मारतीप अभियाय भी राष्ट्र रूप में प्रकट हुए हैं। सम्भवतः यह प्रति स्थानीय गयामुहीन जिली (१४६८-१५०० ई०) के लिए तैयार हुए थे। यह प्रति अब इंडिया आफिल लाइब्रेरी में है। उसके पुन एवं उत्तराधिकारी नाइर शाह के (१५० —१० ई०) के लिए बास्ती की एक लिचिव प्रति राष्ट्रीय संग्रहालय नहीं दिल्ली, के संग्रह में है। इसके चित्रों में भारतीयता का पुट कह दें। यह एक चित्रारणीय चित्र है कि उक्त दोनों में दो भिन्न भिन्न रैलियां प्रकट होती हैं।

मुसलिम-शासकों के उक्त दृष्टिशय में परिवर्तन मुगलों के साथ हुआ, जिनका कुलगत कला-वे म स्थानीयता में मूल निवास के कारण था, जाऊ जीन के पड़ोस और बोढ़ प्रभाव के कारण कला पूर्णतः बात थी।

५२४. ईरानी चित्रकला की विशेषताएँ— कई बार और कई ओर से मार्तीय प्रभाव पड़ने पर भी ईरानी कला का एक स्वतंत्र और मिस्त्र निष्ठा है जो मुख्यतः जीव सम्बन्धित है उसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं—

रेखाओं में गति होते हुए भी मार्तीय मोलाई नहीं है; कोण है। इसी प्रकार उसमें ढील भी नहीं है; चित्रकार, जहाँ जो जो रंग अपेक्षित है उसमें लगा तो चाता है, किंतु उनमें साथा और उजाला (उक्तोत्तन) लगाकर—अंकित वस्तुओं की मिचाई-डैचाई नहीं दिखाता। परिणाम यह होता है कि रंगीन चित्र मी रंग भरा हुआ उपाट रेखाचित्र मात्र रह जाता है। ईरानी चित्र का अन्य निष्ठा आलंकारिता है, उसके सभी आशेजन आलंकारिक होते हैं। अभिभूक्ति की अपेक्षाकृत बहुत कमी रहती है। चित्रकार अलोका मात्र को नकाशी मानता है और नदी, पर्वत, घृत से लेकर पक्ष, पक्षी एवं मनुषा तक का आलंकारिक अकल रहता है; नकाशों के कार में बनाता है। उसकी (लखी) स्थीलिंग लिंगिका और पुरुष सरो का इच्छा है। इस आलंकारिता के तीन कारण हो सकते हैं—

(१) ईरानियों का उत्तान प्रेम, (२) इस्लाम के प्रभाव से आलंकारिक कला की प्रमुखता, एवं (३) ऐसे ही चित्रों का बुनावट, सुरक्षाती और इमारती तथा जकड़ी भी रेखाई आपादि भीशलों में, जिनकी विशेषता तरहदारी ही है, प्रमुख होना। ईरानी कला की और विशेषता में सुधूफ़न, नाड़ुफ़न तथा विरलता है। फ़लतः उसमें प्रकावला, उदासता और पतता (भीड़माड़) का अभाव रहता है और इन्हीं सब विशेषताओं का परिणाम यह होता है कि जब ईरानी चित्रकार जिसी घटना वा कथानक को अंकित करता है तो उसका यह उद्देश्य गीया हो जाता है और दर्शक के सामने उसका संयोजन नकाशी की तरह के रूप में उपस्थित होता है, जिसमें गति होने पर भी जीवन का अभाव रहता है।

५२५. अकबर और उसकी समाजित आरम्भिक मुगल शैली—काङुज में राज्य बनाकर, १५५६ ई० में किस प्रकार हुमायूँ ने पुनः मारतवर्ष की हत्याकाल किया और जहाँ महोने राज्य करके चल बढ़ा तथा उसका तेरह बरस का बेटा अकबर गद्दी पर बैठा (१५५६ ई०), वह सब कथा यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं। राजनीतिक इतिहास द्वारा वह प्रायः सबको लिखित है।

अकबर एक 'विभूतिमत्सत्त्व' था। उसमें जिस महापुरुषता का उत्तरांतर विकास हुआ उसका मूल मन्त्र 'सुलह कुल' अर्थात् 'सबसे मेल' था; तूरे शब्दों में उसका प्रत्येक कार्य समन्वय-कुद्दि की मेरेया से संपर्कित होता था। फ़लतः उसमें मारतवर्ष की स्वकृति के

मग ईरान-मध्य एशिया की संस्कृति को मिला देने की लोकोत्तम प्रतिमह और द्वामता थी। इस भेलन मे नारतीप संस्कृति की ही प्रभुता रहती थी क्योंकि, अल्मदरी अकबर को नारतीप संस्कृति ने अपना अनुग्रह बना लिया था। यो उसने वहाँ की संस्कृति को देशकाल के अनुकूल बनाने के लिये ही उच्चमे अपेक्षित परिवर्तन और भेलन भर किये थे। सीकरी का स्वापन, तानसेन का शोगोल, दीनश्लाही, अकबर का पहनारा, उसका सामाजिक बीवन, उभय-खोदार खानार-विनार, रहन-सहन, सारंग यह कि उसकी विवार और कार्य-पद्धति मात्र उसकी उक्त मनोवृत्ति की मूर्त उदाहरण है। इसी प्रकार उसकी आभित विश्वकला भी उसकी मनोवृत्ति की प्रतीक है, जैसा हम आगे देखेंगे।

अकबर ने किशोरावस्था मे चित्रकारी का अभ्यास भी किया था। इस सम्बन्ध मे बहाँगीर ने अपने ज्ञात्मचरित में एक मनोरंजक घटना लिखी है—अकबर के लिहासनारीग होने पर जब हेमूँ ने विद्रोह किया और अन्ततः फ़क़ड़ा गया तो खानबाना के पिता वैरमल्हाँ ने, को अकबर का अभिनावक था, प्रार्थना की कि हज़रत इस कातिर को मारकर गिरा (घर्मुद) के पुश्पकमणी हो। × × अपने करमाचा कि मैं तो इसे रखें ही डकड़े-डकड़े कर चुका। काखुल मे जब मैं खाजा अम्बुलमद शोरीकलम से चित्रकारी सीखता था तो एक दिन मेरी कलम से एक ऐसी तस्वीर निकली जिसके अंग प्रस्तुत छिप-गिप थे। एक गार्ववक्ती ने पूछा कि यह किसकी सूरत है तो मेरे मुँह से निकल पड़ा—हेमूँ की।

स्प्राट होने के कुछ समय बाद ही, प्रातः १५६० हॉ से उसने चित्रकला के प्रति अपने रक्षण ग्रे मे से प्रेरित होकर चित्र बनवाना शारम्भ कर दिया जिसका कम उसके जीवन पर चालू रहा। इस सम्बन्ध मे अपनी ओर से कुछ न खड़कर, अबुलमकर ने आईन-अकबरी मे जो कुछ कहा है उसका सारांश देना हम अविक उपर्युक्त समझते हैं क्योंकि प्रामाणिकता के लिया उससे कहीं प्रश्नों पर प्रकाश भी पड़ेगा।

क—आईन मे उल्लेख—आईन के आरम्भिक अध्यायों मे से पक शुलिष्ठि पर है। उसी के अन्तर्गत विश्वकला का विषय भी है, जिसका सारांश इस प्रकार है—

किशोरावस्था से ही श्रीमान की अभिशिष्य विश्वकला की ओर रही है और वे सब तरह से उसे प्रोत्साहित करते हैं। विश्वकला की वे अभ्यासन एवं मनोरंजन का हेतु मानते हैं। उनके इस प्रक्षेपण से यह कला उन्नत हो रही है और अनेक विश्वकारी ने प्रतिद्वंद्वि प्राप्त की है। विश्वकला के दरोगे प्रति समाह समस्त विश्वकारी के काम श्रीमान के सम्मुख उपस्थित रहते हैं जो काम की उच्चता के अनुसार कारीगरों को इनाम देते हैं जो उसका बेतन बढ़ाते हैं। विश्वकारी की सामग्री मे बहुत कुछ उन्नति हुई है एवं रंग बनाने का तरीका विशेष

उच्चत हुआ है जिसके कारण आब नियों की आभृतपूर्व तैयारी होने लगी है। अब
ऐसे-ऐसे उच्छृङ चित्रकार तैयार हो गये हैं कि इनके नित्र चित्राद और धूरप के
चित्रकारों से टक्कर लेते हैं। इन उच्चम चित्रकारों की संख्या भी से ऊपर है
और जो कारोगरी में पूरे वा मशहूर शैली के हैं उनकी संख्या तो बहुत बड़ी है।

कलम की बारीकी, तैयारी, पोड़ापत्र आदि जो आब के नियों में आवा
जाता है वह अप्रतिम है, यहाँ तक कि निष्ठामा कस्तुओं में भी जीवन जान
पड़ता है।

हिन्दू नियकारों के नित्र हम लोगों (मुस्लिमों) की सावना से कहीं ठंडे
होते हैं। तारे संतार में ऐसे बहुत कम कलाकार हैं जो उनके नम्रता हो।

अमुक चित्रकारों में निम्नलिखित उल्लेखनीय है—

१—तत्र जननिवासी मीर देवदत्ती।

२—शीराब-निवासी खनाजा अब्दुल्लामद। यथापि ये चित्रकारी तो
पहले ही से जाते थे जिन्हें इन पर भीमान की कृपादिति हुई है, यह
कला की बाबा आकृति के बदले उसकी अन्तरात्मा की ओर प्रवृत्त हुए हैं।
खनाजा के चित्र वे उत्ताद हो गये हैं।

३—इसवन्त (सम्भवतः बरवन्त)—यह बाति के कहार में और इन्होंने
शफ़ा दारा जीवन चित्रकारी की उपासना में लगा दिया। वहले कला के बैम-
बश दौवारों तक पर लिखाई करते थे। एक दिन भीमान की दृष्टि इन पर पड़ी
और इनकी योग्यता को देखकर भीमान ने इन्हें खनाजा के रूपों किया। शीर्ष
ही पे अर्घ्य सब चित्रकारों के आगे निकल गये और इस समय के सर्वथेषु उत्ताद
हुए, जिन्हें दुर्भाग्यवश इन्हें उत्ताद रोग हो गया जिसके प्रकोप में इन्होंने शाम-
चार कर लिया। इनकी अंकुर कृतियाँ कृतियाँ हैं।

४—बदामन—पृष्ठिका बताने, आकृति के श्रालेखन, बंदे हुए रंग
लगाने, राशीह लगाने तथा चित्रकारी के और कई अंगों में यह सर्वोत्तम है;
यहाँ तक कि कई ब्रालौचक इन्हें इसवन्त से भी अच्छा उपकरते हैं।

निम्नलिखित चित्रकारों ने भी प्रसिद्धि प्राप्त की है—

५—केशो, ६—लाल, ७—मुकुंद, ८—मिस्तीन, ९—कल लकुल-
माक, १०—माधो, ११—बगल, १२—मोहर, १३—लोमकरन, १४—तारा १५—
धौंसिला, १६—हरवंच तथा १७—राम।

१—यह दुर्घटना १८८४ ई० से है।

भर्म (मुस्लिमधर्म) के कठूर अनुयायी, जो नमीनम्ब (कुरान) के शब्दों पर ही ध्यान देते हैं, इस कला के विरुद्ध है किंतु अब उनकी शर्ति भी खुलने लगी है। एक दिन अधिकारी ने, जब वे अंतर्राष्ट्रीय मिशनों के साथ देढ़े थे, कहा कि 'ऐसे वितरने ही व्यक्ति हैं जो चित्रकला से नफरत करते हैं किन्तु ऐसे लोगों को मैं पस्त नहीं करता।' मुझे तो ऐसा लगता है कि ईश्वर को पहचानने के लिए चित्रकार का एक अनीखा मार्ग है; जब वह किसी सबीब रस्ते की आकृति बनाता है और एक के बाद एक अंग-प्रशंसन लिखता जाता है। फिर भी उठाने वाल नहीं बल सकता तो हठात् उसका ध्यान ईश्वर की ओर जाता है जो जीवन का एक मात्र दराता है और इस प्रकार उसके बान की दृष्टि होती है।'

चित्रकारी को ग्रोसाइज़ मिलने के कारण अनेक उस्का फृतियाँ तैयार हुईं। फारमी की गद्य और वचनाएँ चित्रित की गईं। इस प्रकार चित्रों की नेतृत्वा बहुत बढ़ गई। इन्हाँ के किसी के चित्र बारह जिलों में तैयार हुए। चतुर चित्रों ने उनमें के चौदह सौ प्रत्येक के अद्भुत चित्र तैयार किये। चोरी-नामा, बरसनामा, यह किताब (अर्हेन-अकर्तरी), रम्यामा (महाभारत), रामायण, नल-दमन (नल-दमयनी), कलीला-दमना (पंचतन्त्र), अथार शानिया (पंचतन्त्र का दूसरा अनुवाद) इत्यादि मी चित्रित किये गये।

अधिकारी ने स्वयं अपनी शब्द लगवाई और आज यी कि साङ्गाचा के नव उमराओं की शब्दीहै तैयार की जाय। इस प्रकार एक विद्यालय चित्राभार प्रस्तुत हुआ। यहाँ फलक है में ऐसी ही एक उस्कालीन शब्दीहै प्रस्तुत की गई है। इसका विषय है—बीरबल, जो उस काल के विशिष्ट योद्धा एवं चित्रको में से थे।^१ इस चित्र में उनका मनन शीत स्वरूप स्वबद्ध दीखता है। मुगल चित्रकार, जिस प्रकार याहू साम्य दिखलाने में चतुर थे, ऐसे ही व्यक्ति के मनोभावों अथवा प्रकृति को भी थी।

१—शब्द ह के संग की 'लगाना' किया, जो आज भी चित्रकारी की मापा में चलती है, विद्व चित्र की (§ २४ क) तद्योग, फलतः प्रानीन दरम्यान की विद्यमानता-सूचक है। ऐसे और शब्द भी हैं, जैसे—खुजाई=उन्मीलन। —उन्मीलित दूलिक्षेत्र चित्रम्—कुमार-संभव; बद्र मुतान, वैल मृतमी=गो मृतिका इत्यादि।

२—बीरबल का विद्युपक वैसा का तो बहुत बाद, मुहम्मद याद काल से गारम्म हुआ।

अबुलख्ल के इस चित्ररण में अकबर-कालीन सुगल शैली का प्राप्तः समूचा इतिहास निहित है। अब हमें केवल उग्र प्रश्नों पर चित्रार करना रह जाता है जिनका स्पष्टीकरण उक्त चित्ररण में नहीं हुआ है। इनमें पहला, इस शैली के उद्गम का है, क्योंकि वह दैरानी कला के भीतर नहीं आती।

स—अकबर शैली का उद्गम—चित्रण के अनुसार इस शैली के चित्र चार चित्रागों में विभक्त होते हैं—(१) अमारतीय कथाओं के चित्र, जैसे—किसा अमीर हम्मा, शाहनामा आदि (२) मारतीय कथाओं के चित्र जैसे—रामायण, महाभारत, नलदमवन्ती आदि (३) ऐतिहासिक चित्र, जैसे—तावारीख—जानदान तैमूरिया (नीचे ल ३, ल ४) अकबरनामा (नीचे ल ३) आदि तथा (४) बीकिनीचित्र। इन चारों चित्रागों के चित्रों की शैली में एक तो व्यापक समानता है दूसरे इनमें हिरात शैली की कुछ चिह्नोंप्रता होते हुए भी इनका निष्कर्ष है कि चित्रों की जरा भी चिंगाह है वह तुरत कह देगा कि हिरात शैली से इनका दूर का सम्बन्ध है। यह निष्कर्ष समूह नहीं लिख नारतीय क़इमीर शैली का है जैसा कि हम अभी देखेंगे।

स—१—हराजा चित्रावली और उसका निर्माण काल (१५६०-६१-१५७५ ई०) अकबर ने तैयार कराए चित्रों में समाजनकाम से संबंधित निस्ता अमीर हम्मा के चित्र हैं; अतः उक्त चित्रण के लिए उन्हीं का विश्लेषण उचित होगा, क्योंकि इस शैली की व्याया वस्त्र में निर्मित होने के कारण उनमें इसके मूलतत्व तथा चित्रातीय दृष्टि, पृष्ठ-पृष्ठक दीर्घ-पहुंच हैं। आगे तो मिल जुलकर एक हो जाते हैं।

परन्तु पहले हम्मा चित्रावली का उमय निर्णय कर लेना चाहिए, क्योंकि भारतीय चित्रकारी के अधिकार्य ऐतिहासिकों ने एक स्तर से इसका आरंभ हुमायूँ के पिछ्ले दिनों में माना है, चिन्तु वास्तविकता कुछ और है। इस चित्रावली के चित्र में आभी तक चार पुराने उल्लेख मिले हैं—

१—१८ वीं शती के मध्यास्तिक उस्ता में, चित्रका साथीर इस प्रकार है—अकबर निस्ता अमीर हम्मा का यहाँ दर्शित या। यहाँ तक कि वह इसके दास्ताओं को, कहाँही कहने वालों की नीति, महलों में मुनाया करता। उसने इसकी आश्वर्य घटनाओं को चित्रित भी कराया था। पचास चित्रकारी ने पहले तो मीर सेपदब्ली 'बुदाई' के, फिर खुबाजा अबुरुसमद के निरीक्षण में यह कार्य किया था।

२—प्राप्तः ये ही बातें १६वीं शती के अन्तवाले सुप्रसिद्ध फरिश्ता में हैं। अर्थात् मध्यास्तिक उस्ता का खोल संबलतः फरिश्ता है। अतः उन्हें दुहराना अनावश्यक है।

३—आरंभ अकबरी में, चित्रका अनुवाद ऊपर दिया जा चुका है।

इन तीन उल्लेखों के सिवा अब एक और उल्लेख मिला है। अकबर के वरवार में अम्बुज कादिर बदायूनी (बदायू-निवारी) नामक फारसी अरबी आदि का वह पंडित था। वह संस्कृत भी या, अतः बादशाह ने जो भी संस्कृत के अनुवाद कराए, वह तो उसने किए था उसमें उसका हाथ रहा। उसके एक इतिहास भी लिखा जिसमें विशेषतः उसके अकबर-संबंधी संस्मरण है। उसकी इस अंशशाली शारे' निजी जानकारी की होने के सिवा वही सच्ची और तरी है, इसी में—

४—बदायूनी लिखता है कि इस वर्ष (१६० हिं० = १५८२ ई०) की घटनाओं में से एक यह भी है कि अकबर ने भारतवर्ष की प्रगति पुस्तक महाभारत के अनुवाद की आज्ञा दी। इसका कारण यह था कि बादशाह ने शाहनामा तथा किसी अमीर हम्मा को नवाह जिल्दी में, पंद्रह वर्ष के समय में लिखवाया था और उनके चिशों में वहाँ रखवा लगा था। विचार यह हुआ कि ये तब कवियों की उपज हैं। पर भारतीय पुस्तकों का तर्फ है—फिर क्यों न इम कारसी में इनका अनुवाद करावे। (सारीण)

इन उल्लेखों से यह तो साफ ही हो जाता है कि इम्बा चिवाकली, दुमायू ने नहीं, अकबर ने आपने लिए, अपने राज्य-काल में तैयार कराई थी। साफ ही बदायूनी के उल्लेख से इस कृति के काल-निर्णय पर भी विशेष प्रकार पड़ता है। एक तो वह पंद्रह वर्ष का समय देता है, दूसरे इंगित करता है कि महाभारत के अनुवादार्थमें से कुछ ही वर्ष पहले यह तैयार हुई थी। इसी प्रतीक में वह वह भी बताता है कि इम्बा चिवाकली के तैयार हो जाने के बाद अकबर ने जो और कहानियाँ सुनी और लिखवाईं।

अबुलफज्जल के लंबां से १५७५-१६० के बाद अकबर के विचारों में विशेष व्यक्ति और गोमीरता प्रारंभ हो गई थी। अब जो ग्रन्थ तैयार कराएं गए, उनका एक दूसरा चैत था, जैसा इम अमीर बदायूनी से मुन तुके हैं। अतएव इम्बा चिवाकली की पूर्वी का समय १५७५-१६० के पहले रखना चाहिए, क्योंकि यदि यह इस नए युग के बाद पूर्ण होती तो उसके बाद अकबर का ध्यान उक दो और कहानियों के मुनने तथा लिखने की ओर न गया होता। फलतः इम इस चिवाकली की पूर्वी का समय १५७४—०५-१६० रखते हैं, जो उसके आरंभ काल के विषय में बड़ा अनुकूल परिणाम देता है, अतएव स्थोकाय है। १५७३-१६० के प्रारंभिक महीनों से लेके मुड़ने पर १५८०-८१-१६० तक पंद्रह चांद वर्ष (जिसके अनुसार बदायूनी की गिनती है) बड़ी कुशादसी से पूरे हो जाते हैं। ये जो वर्ष हैं जब अकबर अपनी वाय माहमंडणगा और माता हमीदाबानू बेगम मरियम-बगानी से प्रभावित होकर बेगमर्हा का वर्षम लोड़ डालता है तथा अगले चार-वर्ष उन्हीं महिलाओं के हाथों में पहला है,

अधीन १५६० ई० में खुटकारे की सोस लेता हुआ वह खुटपन के उस भातापरम में पुनः पहुँच जाता है, जिसमें अपनी प्रिय हम्मा कहानी सुनकर चला हुआ था। अतः १५६०-६१ ई० सबसे अनुकूल समय है जब अकबर को हम्मा-चित्रावली भवनाने का उद्दीपन हुआ हो।

हम्मा चित्रापटों में पहनावा—कहचपारी अचिंत्यों की छोड़कर शेष पुश्यों का पहनावा पारंपरीण मारतीय है; अथोर जामा चित्रोंके दामन के चारों कोने चिकोगुआकार में नीचे लटके होते हैं, और पाजामा। उक्त चिकोगुआमन कम से कम गुलकाल से चला आता था, जिसे अकबर ने सीधा कर दामन कम से कम गुलकाल से चला आता था, जिसे अकबर ने सीधा कर दिया था (§ २६ क, नोट-१)। लो-परिच्छद चिकोगुआमनचाली लंबी कुरती तथा ओड़नी पाजामा है। मूर्तियों से, कश्मीर में इस पेशाक का पता ई० इसी शर्ती से लगता है।

ख—२—इस चित्रावली का निजस्व—हिरण्य शैली की कुल चातों की छोड़कर, इन चित्रों की अधिकांश चातों में अपना निजस्व है। यथा—

(१) ये आलेकारिक चित्र न होकर घटनाचित्र हैं, (२) इनमें विरलता नहीं नीड़ भाड़ है, एवं प्रकोपता तथा उदासता है; (३) इनमें संयोजन का एक अपना प्रकार है; (४) इनमें को रेखाओं में गुलाई है और लिङ्गाई ने ढौल; (५) इनमें पक्षचरम चेहरों की अधिकता है जिनकी आंखें पटोलाक्ष [§ २५] वा भीनाक्ष हैं [§ ३८ क] तथा मानव आकृतियों का आलेखन स्फूर्तिमय है, उनके पहनावे एवं मूरा हिरात से भिन्न हैं; (६) चिरोप रूप में मारतीय लिंगों की आकृतियाँ दृष्टि हैं; (७) इनके जज त्पत्ति, पहाड़, पेंड-पालो बाबल, पशु-कशी तथा दानवों का आलेखन अलग है, एवं इक्षों में केले, बट, पीपल तथा आम और पशु-कशी में हाथी, मोर आदि भी हैं; (८) इनमें हाथ पांस की मारतीय मुद्राएँ पाई जाती हैं तथा जलों में चिरोप प्रकार की शिकन और कहरान; (९) उनमें के हाथियों ने वह नारी परंपरा मीढ़द है जो मोर्जन जो रहा काल से जली आती है [§ ४० ल], अधीन (१०) हम्मा चित्रों का वास्तु सर्वथा मारतीय है।

ये निजस्व ऐसे हैं जिनकी परंपरा मारतीय चित्रकला ही में पाई जा सकती है। किंतु इस मालिका के एक चित्र का एक अंश इन सब निजस्वों से कहीं बदलकर है। इसमें कुछ देवताओं की छवियाँ अनित हैं। ये पाल शैली की अति निकट परंपरा में हैं। ऐसी परंपरा कश्मीर शैली के अतिरिक्त कहाँ वर्ती थी।

विभाग की दृष्टि से भी ये चित्र भारतीय हैं, क्योंकि एक तो परिज्ञाम में ये उन्होंने फूट से अधिक लंबे और प्राप्त; दो फूट बौहुड़े हैं, दूसरे ये सूती कपड़े पर बने हैं अचौती ये पूर्णोल्प से चित्रापट हैं। इरानी चित्र न तो इतने बड़े होते ये न सूती कपड़े पर बनते।

निजस्व के इस विश्लेषण से यह परिज्ञाम निकलता है कि यथापि इन चित्रपटों में इरानी शैली की हिरात-शास्त्रा का एक लाल अंश विद्यमान है फिर भी इसका मुख्यांश मारतीय है, जो मुख्यतः कश्मीर और अल्पतः राजस्थानी शैली का है। ऊपर आगे निजस्व विशेषताएं गिनाई हैं प्राप्त; वे सभी कश्मीर शैली की हैं और समस्त चित्रों में सर्वत्र पाई जाती है। राजस्थानी शैली की विशेषताएं, अधिकतर चित्र भर में व्याप नहीं उसके माध्यमिक में, इकठ्ठीर पाई जाती हैं, सो भी किसी किसी चित्र में (₹ २६ का अन्तिम पैरा)। दूसरे शब्दों में यह अकबर-नालीन मुगल शौली आरंभ से ही अनेक अंशों में कश्मीर शैली का लगातर है जैसा कि इम जार (₹ २६ ग) कह तुके हैं।

'आईन' से भी हमारा समर्पन होता है। अबुलकज़ा की इस उच्च का और क्या अधृत हो सकता है?—'हिन्दू चित्रकारों के चित्र इम लोगों की मावना से कही जैव होते हैं। ताँदे संसार में ऐसे बहुत कम कलाकार हैं जो उनके यमकदा हों।' राजस्थानी शैली के लिये तो यह हो नहीं सकती, वह तो अभी विलक्षण आवंटिक अवस्था में थी, किन्तु अपन्ने शैली के लिये लक्षण यह तो है। दूसरी कोई शैली भारत में थी नहीं। फलतः यह कल्प एकमात्र कश्मीर शैली के सर्वत्र में ही रहता है जिसके १६वीं शती में अस्तित्व का प्रमाण तारानाथ ही नहीं देता, अपितु वह अनुशुल्क भी देती है जो उस्ताद रामग्रामाद के भरने में न ही आती है। अकबर शैली से विलक्षण मिलते हुए, १६वीं-१७वीं शती के अनेक छिप्प चित्र मिलते हैं जिनका विषय मुख्यतः रामायण दरावतार तथा कुम्भनारित होता है। इनके पांच अकसर संस्कृत श्लोक भी रहते हैं। उक्त प्रानेगते इन्हें कह भीर कलम का बताते हैं। कश्मीर शैली की सत्ता का एवं अकबरी शैली से उसके सर्वत्र का यह भीवित प्रमाण है (₹ ३७)। वह अनुल आवंटीन के समय में वहाँ सभी कलाओं का सूब उत्कर्ष या तो चित्रकला का भी न रहा होगा। साथ ही प्राच्य कला के अन्वेषक दुनी नामक इताली विद्वान् को इसी काल वाले कश्मीरी चित्रकारों के अंकित चित्र भी लिंगे तिन्हत आदि में भिले हैं एवं अधिकांश वाले परमानन्द दास के एक पद में कश्मीर के बने दरावतार आदि के चित्रों की जर्मी है।

अब इस सम्बन्ध में इसके लिया, कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि—अनुस्तुप्य के लिये में अबुलकज़ा के इस कलम की है—'वह से इन पर भीमान, की कुपारहि हुई है, यह कला की बाह्य भावनार्थ के बदले उसके अन्तरालमा की ओर

प्रबृत्त हुए हैं; यही ध्यान हो सकती है कि अकबर ने यथाजा से कश्मीर शैली प्रहण करायी थी ।

मारतीय चित्रकला के सभी विद्वानों का, जाहे वे कुमारस्वामी को दृष्टिले हो, जाहे स्मिथ की दृष्टिले, यान् इस बात की ओर गगा है कि—(१) अकबरी चित्रों का निष्ठस्य ईरानी कला से विलक्ष्य पृथक है। स्मिथ ने तो यही तक निरीहण किया कि—पर्वत मी कश्मीरी पर्वतों के लाल्हगिक आलेखन है। अतएव ये चित्रपट वही के बने होने चाहिए किंतु कश्मीर शैली की विद्यमानता का पता न रहने के कारण वे उक्त दोनों बातों का सामंजस्य न कर पाएं।

इन्हाँ चित्रपटों तथा रथनामा वाली उक्त दैवताओं को लकड़ियों की जब हम इन भालुओं के दाप देते हैं तो उन चित्रपटों के उद्घाटन में कश्मीरी भाग निर्विवाद हो जाता है।

इन्हाँ चित्रावली के नीदह सौ चित्रों में से जब प्राप्त: हेड़ सौ चित्रों का पता है, जिनमें से गिनती के दो मारत कला-भवन काशी, दो बम्बई के भी आदेशिर के संग्रह में, एक हैदराबाद राज्य संग्रहालय में और एक बड़ोदा संग्रहालय में है, ऐप स्वके सब विदेशों में है।

इन्हाँ चित्रों के बादवाले अकबरी चित्रों में, उनके दोनों तरफ ईरानी कला का कानिष्ठानी तथा भारतीय कला का सुखांशु, एकदिल ही जाते हैं, जिनके नमूने मुख्यतः अन्य चित्रों से प्राप्त हैं। अकबर ने जो शब्दोंहैं तेवार कारबाई यीं उनमें की बहुत ही कम मिलते हैं (फूलह—८) जब कि मूलतः उनकी संख्या इजारों रही होगी, अब सारे संसार में उनके सौ से अधिक उदाहरण नहीं रह गए हैं। कालस्य कुटिला गति: ।

अकबर के संग्रहालयपाले उसके निज मदुकर गले में पहनते भी थे। ऐसे चित्रों का भी कोई नमूना अब तक नहीं मिला। वह प्रथम ईरानीजैव के समय तक विद्यमान थी। सम्भवतः वह एक मारतीय प्रथा थी। वैष्णव आज भी ठाकुर जी के विष कदुकी के रूप में भारण करते हैं।

१—जहांगीर के प्रिय नित्रकार अबुलहसन (§ ४०) की शैली मूलतः ईरानी थी किन्तु वेढ़े से वह जहांगीर वालीन मुगल शैली (§ ४०) के चित्र बनाता। शाहजहाँ के दूरवार का चित्रकार मुहम्मद नादिर समरकन्द का था किन्तु वह सर्वथा मुगल शैली के चित्र बनाता बल्कि इस शैली के वेढ़े ही उत्कृष्ट नित्रकारों में से था। ईरानी नित्रकारों द्वारा अपने आबद्धता की शैलि के अनुकूल मुगल शैली प्रहण करने के अन्य उदाहरण भी प्राप्त हैं किससे वह उपर्युक्त प्रमाणित होती है।

ले—३—अकबर कालीन चित्रित धर्म—अकबर कालीन वर्तित प्रथा शर्मो तक आये हैं। इनमें से कुछ की एकाधिक प्रतियाँ हैं। इसका कारण यह है कि याहू पुस्तकालय आगरे के लिये दिल्ली और लाहौर में भी था, उपहार के लिये एकाधिक प्रतियाँ तैयार कराई जाती याहूजादे तथा उमरा (मुख्यतः खानखाना) भी अपने लिये चित्रित प्रथा बनवाते और पुस्तक विक्रेता भी ग्राहकों के लिये उनकी प्रतियाँ प्रस्तुत रखते। अस्तु, इन प्रामुख्यकों में से कुछ मुख्य की, किंचित् विवरण यहाँ दिया जाना, उनकी तैयारी के समावित सम्बन्ध कम से यहाँ दी जाती है—

(१) तारीख-खानखाने-तैमूरिया—इसमें तैमूरिया बंद के बारेम से अकबर शासन के बाईठने वर्ष (१५७० ई०) तक का इतिहास है। इसकी संवित्र प्रति खुदावस्था वर्त्ती प्राच्य पुस्तकालय, पटना में है। यतः इसमें दसवांत की कुर्ती भी है, अतः यह उसकी मृत्यु (१५८४ ई०) से पहले, संभवतः (१५८२-८३ ई०) में प्रारम्भ हुई एवं संभवतः १५८२-८४ ई० वा उसके तनिक बाद तैयार हुई। इस प्रति पर शाहजहाँ का लेख एवं बादशाही मुहरें भी हैं। (२) राजनामा (महामारत)—यह अनुवाद १५८२ ई० में एक वर्ष^१ के सतत परिष्ठम और कई दलों के एक संग काम करने से पूरा हुआ और इसकी संवित्र शाही प्रति १५८२ ई० में, तीन बिल्डों में, तैयार हुई^२। संप्रति यह झज्जपुर राज्य के पोधीलाने में है। संयोगवश नादिरशाह के अकामणे से एक वर्ष^३ पूर्व मुहम्मदशाह ने इसे महाराज जयसिंह स्वाइं को दे दिया या बिल्से सारे लंगर की संवित्र पुस्तकों का यह कौसलुम भग्नि नाश से वा मारत के बाहर लेने जाने से बच गया। इसकी अन्य कई प्रतियाँ की भी पता है। (३) रामायण—जिल्ही एक संवित्र प्रति अयपुर के पोधीलाने में उक्त राजनामे के चाप है। एक अमरीका में भी सुनी गई है। (४) बाकश्रात नामी (बाबर की आत्मकथा)^४—तुकी से इसका जारी अनु-बाद खानखाना ने किया, जिसकी एक प्रति १५८८ ई० में अकबर को मेट भी। स्वामावतः यह प्रति पहली और संवित्र रही रही। संप्रति इसकी तीन प्रतियाँ शात है—एक लिटिश लंग्हालय, लैन्डन में, दूसरी संवित्र, लाठय लैन्डिन संग्रहालय में, तीसरी क्रांत के लूट्र संग्रहालय में। नौथो राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली एवं पौन्नवी लूट में है। सम्पवतः लूट एवं रस बाली प्रतियाँ एक ही

^१—संभवतः कुछ समय तक विवरकारों का एक दल तवारीक में एवं दूसरा राजनामे में काम करता रहा।

प्रति के कुछ लोटित शब्द हैं एवं उसका एक भाग लिंडेन के बॉदलिंगन पुस्तकालय में भी है। (५) अक्कवर-नामा—यह १६०४-५ ई० में पूरा हुआ। इसकी एक सचित्र प्रति नाउम कॉस्टिन संग्रहालय में है, जिस पर बहाँगीर का १६०६ ई० का लेख है। यह निश्चित रूप से इसकी प्रथम प्रति है, क्योंकि इसमें सौ से ऊपर लिंग है। जिनकी तैयारी के लिए कम से कम चार वर्ष का समय चाहिए। अच्यूत, यह १६०५ ई० में बनकर तैयार हुई होगी। इसी सन में अक्कवर का अवसान हुआ; अतः राघवरोहण पर बहाँगीर ने अपना नाम चढ़ाया। अक्कवर-नामे की एक निश्चित प्रति डबलिन के चेस्टर बेटी के अद्वितीय संग्रह में भी है। यह है ती उसी काल की, किंतु इसके लिए कॉस्टिन वाली प्रति की अंशी के नहीं है। संभवतः यह खानखाना वा किसी राजादेश के लिए तैयार हुई थी।

इनके लिए अनवारे मुहैली^१ की अक्कवर कालीन कम से कम चार चित्रित प्रतियों का पता है। इनमें से एक १५८६ ई० में लाहौर में तैयार हुई थी (फलक ८) जो अब भारत कला भवन संग्रह में है। दूसरी लंदन के विटिय संग्रहालय में है। इसके पूर्ण होने का समय १६१० ई० है किंतु इसके दो चित्र १६०४ ई० के हैं, अर्थात् पुस्तक का चित्रण अक्कवरकाल में ही प्रारम्भ हो गया था। इसमें दस हिन्दू और छः मुस्लिमान शृण्यों के आलेखन हैं। तीसरी रामपुर राज्य के पुस्तकालय में और जौधी रायल एशियॉटिक लोटायटी, लंदन में है। अनवारे मुहैली का एकमात्र चित्र मारत-कला-भवन में है जो किसी सचित्र प्रति का ही पता रहा होगा। अब वसली पर है। इसका निकार तारा है जो अबुलकाश की आईनवाली खूनी में आया है। अतः यह समाट के पुस्तकालय की प्रति रही होगी।

फलक ८ वाला चित्र अक्कवर जौधी की परिषद्वता का एक उपर्युक्त उदाहरण है। इस दश्य में अनवारे मुहैली की एक कथा अंकित है: एक समाट अपनी एक रानी पर बहुत अधिक मोहित हो गया था अतः राज-काज में बाधा होने लगी थी। एकवार

१—इस प्रथा क्लेनेक चिकित्सा पृष्ठ कई अमरीकी संग्रहालयों एवं निजी संग्रहों में है।

२—यह पंचतंत्र का एक अस्य फारसी अनुवाद है जिसे १५८३-८६ की शती में, मुस्लिम हुक्मन वायज अल-कायफी ने अपने आभ्यदाता शेख अहमद-अल-मुहैली के नाम पर किया या पंचतंत्र का यह स्वप्न फारसी वाले भग्न में सफ्से अधिक लोकप्रिय है।

जब उसे इस सिखति का अनुभव हुआ तो उस ने उक रानी को उप से लिखा दिया। जाने की अग्रिमता की इन चिठ्ठों की पहली लिशेषता होती है, जो निश्चल, परन्तु उदास स्नाट उसकी आदा पालन में तब्दील होती है, जो उपटाली हुई रानी, घटाए हुए, अन्य अधिकों (विशेष रूप से एक माँकों जो पाल से ही लिपट गया है) आदि में दृश्य है। सारी घटनाओं को ऐसी भुवरता से संबोधा गया है कि न तो कही अधिक भीभाइ है और न कही खड़दूर है, दरंग का ध्यान सीधे मुख्य इश्य पर आकर ढक जाता है। इश्य की नयंकरता बढ़ाने के लिए, जीवी प्रमाण वाला एक मगर मी मुँह बाएं बड़ा चला आ रहा है। चित्र के रंगों में शुक्रियानापन है, फिर भी वे बेंटकर नवास्थान पर इस रूप से लगाए गए हैं कि चित्र का कोई भी स्थल आवश्यकता से अधिक गौण या महत्वपूर्ण नहीं हो गया है। एकाप आङ्ग-चिठ्ठों एवं उनके वर्णों के अंकन में यूरोपी चिठ्ठों का प्रमाण भी दृश्य है।

अकबर की आज्ञा से बंचतंत्र का फारसी अनुवाद अद्वितीय ने संघीय संस्कृत से १५८८ ई० में, अग्रार दानिश नाम से किया। इसके कुछ संवित परंपरे इस समय बंबई के एक भारतीय चित्र-ब्यापारी के पात्र विकारार्थ हैं।

इनके अतिरिक्त तारीख रखीदी, दाराकनामा, समाज निजामी तथा वहारिस्ताने जामी आदि की प्रतियाँ, इंगलैंड भूरप और अमरीका के निजी वा सार्वजनिक संग्रहों में हैं। इनमें से कुछ पर तो लिखियाँ हैं। शेष की लिखियाँ निभित करने का लीना मार्ग यह है कि यदि इनका अकबर काल की है तो उसकी लिखित धृति उसके समाज-काल से जो प्रायः आईन, बदायूनी आदि से प्राप्त हो जाता है, तार से सात बरस के मोहर निर्मित होनी चाहिए। यदि शेष पाले का है तो वेश-भूषा एवं आलेखन शैली, जिसमें अकबरी-काल में ही विकास पाया जाता है तथा विक्रार्दी के नाम से जो प्रायः सब चिठ्ठों में पाप जाते हैं, उसका नम्य निर्धारित करना चाहिए।

उक्त योग्यियों के सिवा अनेक योग्यियों के छित्र पर भी मिलते हैं जो संसार भर के निजी और सार्वजनिक मारतीय संबद्धों में ऐसे हुए हैं। इस प्रकार का, हरिवेश के फारसी अनुवाद का, जो अकबर ने मुख्ता शीरी से, संभवतः 'भारत' के अनुवाद के बाद कराया था, एक सवित्र जला भरत कलाभवन में है। इसका तामग लगभग १६०० ई० में है। इसमें यह कथा श्रृंखित है कि आदि राजा और ने पुष्पियी से कहा कि मैं तुमे हुईंगा, जिसे अस्तीकार कर चुप्ती गाग का रूप सेकर भासी और राजा ने उसका पीछा किया। नाम

स्त्री पुरियों आकाश में भागी जली जा रही है, पमुच्चाणि प्रथु उसका नीछा कर रहा है। नीचे लड़े लोग चिता और अचरज से देख रहे हैं कि अब क्या होता है। इस चित्र में जैसी गति और सजीवता है, रंगों में ऐसी ही तरापट और मलाइयत भी है।

तवारीख अलपी आदि चित्रनी पुस्तकों की समूची प्रतियाँ अभी-अभी तक विद्यमान थीं। मारतीय चित्रों की माँग के कारण चित्र व्यापारियों ने इन्हें बहुत बेरहमी से छिप-मिप कर डाला।

८—४—अकबर शैली की चित्रोंपत्राएँ—अकबर के पुस्तकालय में जौरीपूर्व हवार पुस्तकें थीं। कैजी के देहात के बाद (१५८५ ई०) उसके संग्रह से भी चार हवार तीन सौ पुस्तकें शाही पुस्तकालय में आईं। लगभग तीस हवार-पुस्तकों के इस विद्यालय संग्रह में हवारों नहीं तो लेकड़ी चित्रित पुस्तकें अबश्य रही होगी। अब जो चर रहा है वह महासागर का एक चिंदु मात्र है।

इनमें के चित्रों के रंग मीने जैसे दीवाज और ओपदार हैं। अबुलफज्ज की यह उठिं कि रंगों के सम्बन्ध में बहुत उत्तमि हुई है, इनके देखने से प्रस्तुत हो जाती है। इनमें तीन भेषियों के रंग का प्रयोग पाया जाता है (१) ऊहुइदाते वा चमकते हुए जिनमें मुख्यतः क—लिंग, घोड़ी (पीला) और लालबद्धी (नीला) तथा क—लिंग, मुत्ताती और बंगाल (हरा) है; (२) जुते हुए, क—गैल, हिरंजी, रामरब तथा हरा-दाढ़ा और क—नील तथा स्पाही। संकेद का प्रयोग रंगों को इलाका बरने के लिए वा स्वतन्त्र रूप से हुआ है। अकबर कालीन चित्रों में ये रंग वा इनके मिश्रण, साथ का रंग मिला कर, बदरंग नहीं किये गए हैं। इसी से इरदम टटके जान पहुँचे हैं।

इन्हा चित्रों के बाद अपने पूर्ण विकासकाल में यह शैली ईरानी, कहमीर तथा राजस्वानी चित्रोंपत्राओं को आध्यतात् करके एक बड़े ही मूल्य रूप में प्रकट होती है। इसके उत्कृष्टतम नमूने—पठना पुस्तकालय वाली तवारीचे स्वानदाने तेमूरिया, जयपुर का महाभारत तथा साउथ कैलिंग टन भंगहालय वाली अकबर नामे की प्रति हैं। प्रथम दोनों में दसवंत की कृतियाँ भी हैं। यथापि इन दोनों का विषय चिक्कुल प्रतिकूल दियाओं का है किर मी शैली की दृष्टि से दोनों एक हैं। यही एकता इन्हीं में नहीं सभी चित्रित अकबरी चित्रों में व्याप्त है, अकबर के चिद्रात वाक्य ‘मुत्ताह कुल’ का मूर्त्तक है। इस एकता जो इस रेखाओं की गुलाई, आक्षेत्रन में बौल, गति, एकचरण चैहरो (३२६ ल), इस्त मुशाओं, जलों की शिक्कन तथा कहरान, इब्बों के स्वाभाविक आक्षेत्रन पर्वं अभिव्यक्त संयोजन के रूप में पाते हैं, जो सभी

अकबरी संघनियों में सर्वथा समान है। इस एकता को हम नियों की दो और तातों में पाते हैं—एक तो प्रायः सभी ऐसे नियंत्रणाधिक, बहुत करके तीन चित्रकारों के सहयोग से बने हैं। एक ने टिप्पाई थी है दूसरे ने गद्दकारी (=रंगमेही) और तीसरे ने खुलाई। दूसरे इनके आविष्कार कलाकार, प्रायः पंचानन्दे प्रतिशाल, हिन्दू हैं।

इस प्रकार अकबरी शैली अपने विकसित हथ में, अपना निजस्व प्राप्त कर हेने पर भी, सर्वथा मारतीय रहती है, क्योंकि एकता की उच्च विशेषताएँ ईरानी शैली (६३४) से सर्वथा विपरीत एवं पूर्णतः मारतीय हैं। उनमें को कुछ ईरानीय है वह नस्कारी में वा आलंकारिक आलेखन में है, किन्तु वह गौण है। अर्थात् ईरानी कला की विशेषता इस शैली की एक अद्वितीय बोरा बन गई है। कारीगरों का उच्च सहयोग उनकी भेसियों के समय से चला आता है। एकचक्रम चेहरों की मांत्रि ईरानी शैली में इस बाल का भी अभाव है।

यथापि यह शैली अकबर के कारखाने में लालित-पालित हुई भी, किन्तु चित्रकारों के जो विषय आलेखन के लिए दिये गये थे उनमें अधिकारी, जैसे भारतीय लोक वा धर्म कथाओं के एवं अकबर के जीवन के (क्योंकि उस समय के मारतीय अकबर को पूर्ण बन्म का तपसी मानते थे), उन (चित्रकारों) की मालामिल्यकि एवं परम्परा के सर्वथा अनुकूल थे। इसी से इन नियों में इतनी सज्जीवता और उन्मुक्तता पाई जाती है।

उच्च तो यह है कि अकबरी चित्रकला भी अपनी एक अलग शैली है। यदि वह मुगल शैली के अन्तर्गत आ रही है तो केवल इस कारण कि अकबर मुगल था।

६. ३६. नियों और चित्रकारों के प्रति अकबर का मानव—अबुलमल्ल ने आईन में बताया है कि अकबर का नियंत्रण और चित्रकारों से किताना ग्रेम भा और उनके प्रति उसको कैसी उदार और आदर दिया थी। उसके किटने ही चित्रकार मन्त्रपदार एवं शोहदों पर थे। १५७३ ई० में जब उसने, अपने चुने से चुने तत्त्वाइत सरदारी को लेकर अहमदाबाद पर तूकानी भावा किया था^१ तो उसके उच्च दल में तीन चित्रकार भी थे। उसके बाद यदि कोई विशिष्ट अतिथि आता था तो उसे अपने नियंत्रकों की भी सेव कराता था। जहाँगीर

१—अकबर ने, २३ अगस्त को आगरे से नियंत्रकर दूसरी लिस्मर के शाहमदाद नाम में युद्ध शुरू कर दिया था, अर्थात् सारा मार्ग केवल नींदिन में तय किया था जो उस शाल की सवारियों की दृष्टि से वायुयान की गति हुई।

लिखता है कि अब्दुस्समद को अकबर नहीं सम्मान से रखता था। १५७३ ई० में अकबर ने अब्दुस्समद को अपनी टक्काल का अपनाया था।

कृ ३७ १६वीं शती में दफनी शैली—जिन्हें के दक्षिण वाले भूभाग में भी वित्तकला का पूर्ण प्रचार था एवं मध्य काल में वहाँ की प्राचीन परम्परा अवास रूप से चलती रही (कृ २४ ल-१ का अन्त)। विजयनगर साम्राज्य (प्रायः १५४०-१५२८ ई०) के अन्तर्गत लोपाची नामक स्थान पर अनेक भित्ति वित्त हैं, जिनमें वह परम्परा पूर्ण रूप से विद्यमान दीखती है। ऐसा अनुमान होता है कि दक्षिण में ऐसे ही कई और केन्द्र थे। प्रायः १५२७ ई० में दक्षिण के प्रसिद्ध बहमणी साम्राज्य का अन्त हो गया एवं उत्तका स्थान बीजापुर की आदिलशाही (१५६०-१६२८ ई०) अहमद नगर की निजामशाही (१५८०-१६२६ ई०) एवं गोलकुंडा की कुतुबशाही (१५१२-१६८० ई०) ने ले लिया। ये सभी सल्तनतें बड़ी विद्या प्रेरिती थीं।

१६वीं शती के उत्तरार्द्ध में इन सल्तनतों का पूर्ण विकास हो चुका था एवं उनके शासक, गवा बीजापुर के अली आदिलशाह प्रथम (१५६०-८० ई०) और इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (१५८०-१६२७ ई०) वही ही कला-प्रेरणी द्वारा दीखती है। ऐसी पूरी आराय की जाती है कि इस काल में इन सीनों केन्द्रों में वित्तकला का पूर्ण प्रचार रहा होगा। लेद है कि १६वीं शती वाले वित्तों के जो भी दफनी उदाहरण मिले हैं, उनमें यह निष्ठय करना असम्भव सा है कि वे कौन से क्षेत्र के हैं। चेल्टर बेटी संग्रह में तबूम उल तबूम की एक संचित प्रति ऐसी ही है जो अली आदिलशाह प्रथम के पुस्तकालय में थी। परन्तु इसमें भारतीय प्रभाव इतना चमत्कार है कि सम्भवतः यह किसी शम्भू क्षेत्र से वही आई। इब्राहीम आदिलशाह के काल से बीजापुरी वित्तों का, विशेष रूप से उनकी शब्दों का एक अच्छा लासा वर्ण मिलने लगता है। इनसे बहुत भिन्न वर्णी एक काफी बड़ी राजमाला-विद्यावली मिलती है। इसमें रानों के ज्ञान, उत्तर भारत के ज्ञानों से भिन्न है। फिर भी इन सभी वित्तों में एक मौलिक साम्य है। उनमें आकृतियों जानदार हैं, उनके बहुत अद्वितीय हैं, जो वित्त का अधिकार्य लें करते हैं, उनपर वही वहें बूटे जाने हैं। भजनों के अलंकरण तथा पुष्टिका भी, बनस्पति की प्रधानता है। सीब्र वर्णविधान है। अहमद नगर में कनी तारीफ हुई थी और इस प्रति भी ऐसी ही है।

कृ ३८ १६ वीं शती में राजस्थानी शैली—इस शती में यह शैली उस अध्ययन से क्रमशः आगे बढ़ रही थी जिसमें हमने उसे १५वीं शती में छोड़ा है (कृ २८ ल)।

इस काल में जैनेतर विद्यों की तो बाढ़ आ गई। देवी माहात्म्य के वित्तों में युद्ध विषयक प्रबन्ध आकृतियों मिलती है। युद्ध के ऐसे पौर दृश्यों के द्वारा अपन्ने शैली की

पुरानी जड़ी बुद्धि परम्पराएँ हूँटीं। इनमें कई चिह्नित मन्थ तो लोक शैली के निष्ठ हैं, उनकी रणाडेवार रेखाएँ हृष्टव्य हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इन आलेखनों में भी कई ग्राहोरिक मेद देते हैं।

दूसरी ओर वैष्णव बाल-गोपाल खुति के अंकनों में जीवन का उल्लाच मरा पड़ा है, बाल-कृष्ण की लीलाओं के अंकन में वही चारता है जो पैष्ठे उलसी और सर के लक्षित पदों में भिलसी है और जिनसे हम सभी परिचित हैं, वथा यशोदा का मालन निकालना, एवं बाल-गोपाल की मालन-बीरी, लक्ष्मणम् में प्रतिच्छ्वाया देखना, भूते पर पौड़ना, गाये चराना, गोकिंशो के साथ बंशी विहार एवं सर्वोंपरि गोकर्ण आरण्य। गोकर्ण का आलेखन आलंकारिक है। कहीं कहीं, गोचारण दर्शों में जैसे बाल-गोपाल नाचने को मुदा में हो। यह परम्परा तनिक बाद तक भी चलती रही।

अब यह शैली अपभ्रंश शैली के मुख्य गड़, जैन चिह्नित पोषियों पर अपना अधिकार बपाने लगती है। १५६२ ई० की उत्तराध्ययन शृणु की एक प्रति बहुदा संप्रहालय में है। इसके चित्रों में हम उच्च संकलण के उदाहरण, अर्थात् राजस्थानी और अपभ्रंश शैली का चिह्नित सम्मिलण पाते हैं। १६वीं शती के साथ अपभ्रंश शैली उमात ही जाती है; १७वीं शती में गुच्छकर जैन पोषियों एवं चित्रों में पूर्ण रूप से राजस्थानी शैली का व्यवहार दोनों लगता है।

फली आँख के अमाव से मोटे तौर पर राजस्थानी शैली का उद्भव माना गया है। कल्पुत: यदि हम गुलकालीन चित्रों से १६वीं शती तक को शैलियों का लिहायलोकन करें तो हमें एक प्रवृत्ति स्पष्ट दीखेगी—बेहरे पौने दो चरम से एक चरम की ओर आ रहे हैं। अपभ्रंश शैली के कुछ अन्य परवर्ती चित्रों में हमें एकचरमी बेहरे साथ साथ परली आँख मिलती है, तो १६वीं शती के उत्तरार्द्ध में घोरे घोरे तिरोहित होने लगती है।

कुछ चिदानंदों का मत है कि १५६१ ई० की उच्च प्रति से राजस्थानी शैली का उद्भव मानना नाहिए; समवतः मुगल शैली के इतर कलाकार जब अपने अपने चेत्रों में छुड़ते तो वे मुगल शैली की अनेक विशेषताएँ अपने साथ लाए और यह प्रमाव अपभ्रंश शैली पर पड़े जिनान रह सका जो ५६२ ई० वाली चिह्नित प्रति में एकचरमी बेहरों, मुगल सम्बन्धितात् एवं पृष्ठिका के आलेखन में दीखता है।

कल्पुत: राजस्थानी शैली का कल्प बहुत पहले ही हो चुका था, और उसका प्रभाव जैन चित्रपटों पर हम देख चुके हैं। संयोग-वर्ण, कुछ वर्ष पूर्व १५४० ई० में सुर दिल्ली में चिह्नित महापुराण नामक एक दिग्बावर जैन प्रम्भ की प्रति प्राप्त हुई। इसमें प्रायः साते नारों की चित्र हैं पर एक भी आँखि अपभ्रंश शैली में नहीं। इसी के संनिकट मारत कला भवन

मेरुपन कृत मृगावती नामक आवशी काल्य को प्रति है जिसके दो ओर पचास चिन प्राप्त हुए हैं। इन चिनों में उम्मुक्ष और बरेलू वातावरण है। योही रेखाओं और रंगों में जीवन आलेखन है। जीवन का व्यापक दृश्य है। इस दी में प्रिस आव बेल्स संग्रहालय, बड़हों को लौर नंदा को एक संदित्त निश्चित प्रसिद्धि मिली है जो तकालोन शैलियों के लिये बड़े दी विशिष्ट रूप का परिचय देती है। इसे भूलना न जाहिए कि १६वीं शती में फैदे शासक बड़े दी कलाग्रे मी गे—संभवतः यह उनमें से किसी एक की प्राक्-आकर्षी राज्याभिस शैली है।

इन रम्भी चिनों में पातों की प्राक्-आकर्ष कालीन वेशभूषा द्रष्टव्य है। इनके बाखु भी घूर्देवती हैं। पिर भी इन चिनों में राजस्थानी शैली की अनेक परवती विशेषताएँ, उदाहरणार्थ उसकी आलंकारिका वर्तमान है। वहाँ कहीं गतिमता दिखलाने के लिए उड़ते हुए वज्रों का प्रयोग किया गया है।

इन चिनों से यह स्पष्टस्थित है कि राजस्थानी शैली लोक में व्याप्त भी एवं उसका प्रसार राजस्थान की वर्तमान परिवर्ति से कहीं अधिक व्यापक था।

तनिक बाद ही, राजस्थानी का प्रस्फुटित रूप दीखने लगता है, जिसमें सर्वोत्तम स्व० न्हानलाल च० मेहता संप्रद के नीर पचाशिका चित्र है। ये एक संस्कृत शृगार काव्य पर आधृत है अतः माधुर्य माव से आकृत प्रोत है। इनमें नायिकाओं की भिन्न भिन्न मनोदशा बड़े ही मृदु अंकनों द्वारा प्रकट हुई है। सर्वेष माव-शम्भु एकचरमी चेहरे हैं, उनकी अंगें बहुत बड़ी हैं और चेहरों के आलेखन में आरम्भिकता है। परम्पुरा प्रकृति चित्रणों में विशेष आलंकारिकता है, जो प्रत्येक वस्तु को अपने संबंध में दालती चलती है। इस, कलापति भी प्रारम्भिक आवस्था में है।

यदि इन और देवाशिका चिनों की इम इसी वर्ग के अन्य आलेखनों से तुलना करें तो इसे इनकी विशिष्टता प्रभावित किए जिना न रहेगी। इस वर्ग के अन्य उदाहरण हैं: लाहौर संग्रहालय में लौर चन्दा की प्रति जिसके जीवन की विविधता है, प्रिस आव बेल्स संग्रहालय वाले गीत गोविन्द चित्र जो अपने गीतमय विभानों, उल्कट प्रहृति-सीदर्य के लिए प्रसिद्ध है, एवं कलाभवन एक अन्य संग्रहों में विलारे हुए भागवत के प्रकाश चित्र। माराकर के इन बड़े दृश्यों में, वहाँ गतिमता है, वहाँ कहीं कहीं गोपों की दृश्य मुद्राओं द्वारा उल्लासमय वातावरण है। इस वर्ग में अल दिनास वा धुषिका के आलेखन में ऋमराः सुगल प्रभाव दीखने लगता है। पिर भी इनकी, आकर्षी चिनों के अन्तर्गत राजस्थानी अंशों से इसकी विनिष्ठता है कि इम उन्हें आकर्ष काल के प्रारम्भिक वर्षों से बाद नहीं ले जा सकते। इस वर्ग के सामने साध राजस्थानी शैली परिवर्कता दापत कर सकती है।

गुजरात का पुराना केन्द्र मी राजस्थानी शैली के इस नवजागरण में अपना योग दे रहा था। १६वीं शती के उत्तरार्द्ध में अपने शैली वाले सब नरमी चेहरों से बदलना मुश्किल पा लेता है। इस कांडे में अर्जैन-वैष्णव आलेखनों में स्व० मेहता लंगह की गीत गोविंद चित्रावली बहुत ही प्रसिद्ध है। गीत गोविंद वदावली को प्राप्तः देवुं सौ तनिष्ठ लकड़े आकार वाले चित्रों में संबंधित किया गया है। इन चित्रों में बहुत चिलास नाली परम्परा का प्रस्फुटन है, चारों ओर बन वैष्णव है, वही बहुत लचीली ढालें सारे दृश्यों को बेरे हैं, मुखों की भरपार है, मानवाङ्कियाँ मानो जिन्हें उल्लास से किंवि तुई किसी श्रवास लप में बद है। भागवत की ऐसी ही एक अन्य चित्रित प्रति की तिथि १५८८ ई० है।

क—ब्रज में राजस्थानी शैली का केन्द्र—उत्तर (५ १५ स-२) इमने चर्चा की है कि हमारा चित्रावली में मीनाह अर्थात् फड़कती हुई महली की तरह बीची आंखें भी पाई जाती हैं। वह एक संयोग हो, यो नहीं; क्योंकि उन चित्रावली में ऐसी असंग अनेक बार लिखी गयी है और वहाँ से उत्तरी गई है वही इनका भूत्ताप भी नीचूर है। चित्रित राजस्थानी शैली में सर्वत्र ऐसी ही अंक आई जाती है। इतना ही नहीं, बहुमौरकाल चीतने न चीतने नेत्र का गह प्रकार मुगल शैली में भी व्यवहृत होने लगता है और १७वीं शती के उत्तरार्द्ध में तो इसका एकाधिकरण हो जाता है।

यह अर्थात् १६वीं शती के 'पूर्वीद' से राजस्थानी शैली का एक दूसरा केन्द्र बनने की सूचक है। यह केन्द्र ब्रज होना चाहिए, जहाँ उस समय देवाव-पुनर्जनन में पूरी सक्रियता आ चुकी थी। वही के कृष्ण-चित्रों में इस कटावदार अर्थात् का पहले पहल आलेखन हुआ होगा, क्योंकि यह उस काल के रहिकराम कृष्ण की छुवि के अनुरूप है। अब भी नाय-द्वारा के चित्रों में इसका आलेखन विशेष रूप से पाया जाता है, क्योंकि वहाँ के चित्रकार उसी परम्परा के हैं जो आरम्भ ही से बहुत सम्प्रदाय सम्पन्न है, जिसका मुख्य केन्द्र नाभद्वारा के पहले जब था।

इ३४. १६वीं शती में चित्र-चाहमय—यों तो आकर ये भी सीकरी में भित्ति-स्थित बनवाए, ये, जो हमारा चित्रावली से मिलने जुलने हैं, जिन्हें लिखित रूप में यह प्रथा दक्षिण भारत में ही व्यक्ति थी। कलत. १६वीं शती में केल के अंगुष्ठी शिल्परज नामक वास्तुरास्त की पुस्तक में निजांकर का चिदानन्द और विशान मी दिया है। इसकी बातें चित्रसूत और अभिलिखितार्थ-निलामणि की परंपरा में है अतः उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं। शिल्परज निर्वेदम्, सीरोज में प्रकाशित हो चुका है। विहार-ऐश्वर्य उडीसा रिलाई बनेल (भाग ६, अंक १) में जापवाल का इस पर एक लेख भी है।

सातवाँ अध्याय

§ ४०. जहाँगीर (१६०५—१६२७ ई०) तथा जहाँगीर कालीन मुगल शेर्ली (१६१०—१६२७ ई०)—जहाँगीर बड़ा ही सद्दय, सुखिं-संपन्न, परले दरबे का चित्रप्रे मी, प्रकृति-सौदर्य-उपासक, वृक्ष-खग-मूर-विकानी, संमलकती, विशद-वर्णनकार और सबके ऊपर पक्का विश्वासु, निर्माण-निरीक्षक और प्रशाकारी था । जिस नात को उसकी बुद्धि गनारा न करती उसे वह पास न फटकने देता । यद्यपि उसकी विशेषताओं के और भी पहलू है किंतु हमें इन्हीं से काम है । उसके समय की चित्रकला भी उसकी इन्हीं वृत्तियों की प्रतीक है ।

अकबर की वह चित्रकला, जिसकी रेखा-रेखा में भारतीय संस्कृति के उस महान् प्रतिसंरक्षक की मानवा और प्रेरणा थी तो वह परम्परा एक स्वतन्त्र चारा के स्वर्ग में चलती रही और जहाँगीर के राज्यारोहण के प्रायः पाँच वर्ष बाद तक बनी रही । तृतीय और जहाँगीर काल में पुनः एक बार मुगल काल का सम्बन्ध ईरानी शैली से होता है । जहाँगीर के आध्य में उसकी कुमारावस्था से ही आङ्का रिक्त नामक एक ईरानी चित्रकार था । उसका पुन अद्वृद्धन जहाँगीर का बड़ा प्यारा निवारक था । अकबरी प्रभाव के समाप्त होते ही जहाँगीर-कालीन चित्र-कला पर उसका पूर्ण वा आंशिक प्रभाव मिलने लगता है । साथ ही जहाँगीर का आशय उतना उदार न होने के कारण चित्रकला के नियमों का दावरा बहुत सीमित हो गया । अब उसमें लोक वा भार्यिक कथाओं के चित्रों तथा स्वाली नियमों का अभाव हो गया । उसका मुख्य सम्बन्ध जहाँगीर विषयक घटनाओं और उसका ध्यान आहुष्ट करने वाली वस्तुओं से रह जाता है । इसी कारण योहे ही दिनों में उसमें से ईरानी प्रभाव भी दूर हो जाता है और उसके बदले असलियत और निर्माण-निरीक्षण आ जाता है ।

बहाँगीर ने भी अपना आत्मनरित लिखा है। यथापि साहित्यिक दृष्टि से यह वैती उच्चकोटि का नहीं है, जैसा बाबर का, फिर भी यह बहुत सुन्दर और वहे रोचक शब्द-चित्रों एवं चित्ररथों से पूर्ण है, तथा चित्रों की जर्नी तो इसमें सर्वत्र विषयमान है। स्त्रौ मुँ देवीप्रशाद ने अपने बहाँगीर नामा में इसका अधिकांश हिंदी पाठकों के लिए सुप्राप्त कर दिया है। राज्यारोहण से बाहर यह तक का आत्मनरित पूरा हो जाने पर बहाँगीर ने अपने सेवकों को देने तथा देशांतर में भेजने के लिए उसकी कई प्रतियाँ प्रस्तुत करने की आदा दी। जौदहर्वे यह में उसकी पहली प्रति तैयार हुई जिसमें अबुलहसन ने दरबार का मुख्यित्र बनाया था। इस उपलब्ध में उसे नादिरज़्माँ की उपाधि मिली। बादशाह ने यह पहली प्रति अपने अभिलेखपूर्वक शाहबहाँ की दी। फ़नदहर्वे यह अपने दूसरे पुत्र रत्नेक देखने के लिए इसी प्रति भेजी। इनमें से अभी तक एक भी उपलब्ध तो नहीं किंतु उसके अलग-अलग चित्र जो बहाँगीर की जीवनी से सम्बन्ध रखते हैं, संसार भर के मारतीय संग्रहों में फैले हुए हैं (कलक—१०)। इन चित्रों के सिवा बहाँगीर जो भी सुन्दर का चित्रबद्ध यहु पक्षी (कलक—११), इस वा वह देखता उनके चित्र तैयार करा लेता। इस प्रकार के चित्रों का मुख्य निर्माता उसका दरबारी चित्रकार उस्ताद मंसूर था।

* अपने कोइ, कल्पा वा सौहार्द आदि की वृत्तियों के परितोपार्थ में वह चित्र बनवाता था—जैसे, यदि कोई उसे दगा देकर निकल जाता तो उसके चित्र की भर्त्यना करने में उसे शार्ति मिलती। इसी प्रकार अपने एक दरबारी इनापत्त्यों को, परम दयनीय अंतिम दृश्या में वह देखने गया और उसके प्रति अपनी बहाँन भूति, उसका अस्तियशेष चित्र बनवाकर व्यक्त की। इस चित्र का प्रथम रेखांकन बोस्टन संग्रहालय में और रेनीर प्रति ओल्डफ़ॉर्ड के बॉडिलियन पुस्तकालय में है। इसके तथा अन्य कई चित्रों के तैयार होने की ठीक-ठीक तिथि बहाँगीर के आत्मनरित के महारे बताई जा सकती है। अब सौहार्द-नियमसंक्षिप्त चित्र का उदाहरण लीजिए—

चित्रनदास नामक एक परम कृत्याल चित्रकार उसकी सेवा में था। उसके बारे में बादशाह ने अपनी रामकहानी में लिखा है कि राज्योंह लगाने में यह अपना जोह नहीं रखता। इसी लिये उसने अपने जो राज्यदूत ईरान के रास्तक शाह अब्बास के गहरे भेजे थे (१६१७-१८५०), उसके संग चित्रनदास को ही शाह का निज बनाने के लिये भेजा था। बहाँगीर लिखता है कि 'उसने मेरे नाई शाह अब्बास की ऐसी तस्वीर शब्दी शब्दी लगाई कि मैंने जो उसे शाह के नौकरों को दिखाया तो वे मान गए। मैंने चित्रनदास को एक दाढ़ी और बहुत छुल-

पुरस्कार दिया'। विशनदात के इस आलेखन की एक प्रत्यक्षी प्रतिकृति संप्रति बोस्टन संग्रहालय में है। विशनदात के बनाए हुए बहुत ही थोड़े चित्र यह ऐहे हैं।

इन्हीं विशनदास का बनाया गेत्र फूल नामक छूटी संत का चित्र कला-भवन में है। संभवतः इसपर जहाँगीर की हस्तलिपि भी है। हम देखते हैं कि ये पहुँचे हुए संत अपनी कुटी के आगे अपनी धुन में मस्त हैं और उनका प्रमाण उत्तर मीड़ पर ल्याया है जो उनके दर्दनों के लिये वहाँ एकत्र है। ऊपर एक हरा भरा नीम का पेड़। इस हश्य में वही तरापट लूँचा रहा है। छूटों पर कीछों का एक बोड़ा अपनी धुन में बैठा है। सब्दे लाभुओं पर जहाँगीर को अपार अदा थी। वह उनके दर्दनों को जाता और उनके चित्र बनवाता। उन्हीं में का यह चित्र है। एक चित्र में हम उसे तलालीन चिद्रूप स्थामी के बासंग में पाते हैं।

क—जहाँगीर कालीन चित्र—संभवतः अकबर के समय में उसकी माता हमीदा बानू बेगम की ओर जहाँगीर के समय में नूरजहाँ की भी शारीर तैयार हुई थी।

मुगल शैली के विद्वान् दा० इरपन गोखेटज़ ने नूरजहाँ के एक चित्र को बास्तविक प्रसारित किया है। इस स्थापना पर गंभीरता-पूर्वक विचार होना चाहिए। जनुअति के अनुसार जहाँगीरी सिक्कों पर समाट का नूरजहाँ के साथ चित्र का उल्लेख मिलता है। केवल समाट के विचाले सिक्के मिले भी हैं जिनमें उसकी आकृति अत्यन्त वास्तविक बनी है। साथ ही जहाँगीर के बास्तविक-प्रेम को देखते हुए मानना होगा कि यदि नूरजहाँ की आकृति वाले सिक्के ढाले होंगे तो उनमें पूरी परायेता रही होगी।

जहाँगीर-काल में लियाँ चित्र अक्षित करती थी, इतना तो मिथित है। मारत-कला-भवन में उस काल का एक ऐसा चित्र है जिसमें एक चित्रकारी एक छोटी भी शारीर लगा रही है।

क—जहाँगीर शैली की विशेषताएँ—इसने ऊपर देखा कि जहाँगीर कालीन मुगल शैली ने एक नया रास्ता लिया है। उसमें सूँड़ि न रहकर असलियत आ गई है; वही कारण है कि वह ईरानी प्रमाण से नी सूच हो गई है। बारीकी और तैयारी में वह असूरी चित्रों से कहीं आगे बढ़ गई है। यथापि उसके दरवारी हश्यों में मुगल अदब-कायदे के कारण गति और नवीनता नहीं हैं तथापि उसके जीवनी-संबंधी अन्य हश्यों में काफ़ी गति और सौन्दर्यता भी पाई जाती है। शिकार के चित्र इसके अन्तर्गत उदाहरण हैं। उनमें के हथियों में वह सारी परम्परा मौजूद है जो मीएन जो दहों के समय से नली आती है जिसकी बच्ची अकबर-कालीन चित्रों में भी को गई है (इ० ३५ ल २)। फलक—१० में एक और दरवारी गंभीरता, दूसरी ओर मूलों और मिल्कों के चित्र में यथेष्ट भाग और अभियुक्ति है। पात्र-विषयों के चित्र

में भी कमाल का स्वभाव दिलाया गया है। उदाहरणार्थ फलक—११ बाजे बाज के निव की कठोर आँख और सिमटी पलक द्वारा उचका स्वभाव पंडित।

इन विशेषताओं के कारण जहाँगीर-काल मुगल-कला का पूर्ण गौवन है। इसमें उसका निःखल खिल जाता है और वह एक महान् पुरुष की कला न रहकर, एक अशिक्षित वड़े दिलबार बादशाह की कला हो उठती है।

ग—जहाँगीरी चित्रों में स्वाभाविकता—यह एक समस्या है कि जहाँगीर कालीन चित्रों में इतनी स्वाभाविकता कहीं से आई। उत्तर देने के लिये शैश भारी है—‘फिरंगी प्रभाव से’। किन्तु इसी से कम्होप नहीं किया जा सकता। निःसंदेह यह बात सर्वविदित है कि जहाँगीर के समय में यहाँ यूरेप के निव काफी तादाद में आ चुके थे और आ रहे थे, इतना ही नहीं जहाँगीर उनकी कदर और संघर्ष भी करता था। उस समय यहाँ के कारीगर उनकी प्रतिकृति और उनके आधार पर स्वतन्त्र निव भी बनाते थे। जहाँगीर-कालीन कुछ चित्रों की पृष्ठिका वा अंश-विशेष में यूरोपीय हस्त भी नकल किए गए हैं; फिर भी देखना तो यह है कि उक स्वाभाविकता यूरोपीय शैली की है जा सकती। इमरार उत्तर है कि यह स्वतन्त्र है। जहाँगीरी चित्रों के चेहरे एकचक्षम हैं जो यूरोपीय कला में अभाव रूप से पाए जाते हैं। जहाँगीरी की इजारों तस्वीरों में केवल एक डेढ़बहस्त तस्वीर मिली है, जो भी उस पर नाम नहीं दिया है। रूप-सादाश्वर से अनुभाव किया जाता है कि वह जहाँगीर की है। यदि फिरंगी प्रभाव होता तो जहाँगीर की इजारों डेढ़बहस्त और एकाघ एकचक्षम तस्वीर मिलती। इसी प्रकार साथा और उजाले के प्रयोग से यूरेप की तस्वीरों में पूरा छौल दिलाया जाता है। जहाँगीरी चित्रों में वैसा साधा और उचाला नहीं पाया जाता। हाँ, कहीं-कहीं ईरानी प्रभावपरा स्वाह-कलम में पहल (एवं त्रुमाव) दिलाकर साधा का सुभाव कर दिया जाता है जिससे साधा का काम नहीं रह जाता। फिर इन चित्रों का दृष्टिकोण (पर्पेक्टिव) विशेषी चित्रों से विलक्षण पृथक् है। चित्रों के ये ही तीन मुख्य अंग हैं। जब इनमें इतनी विभिन्नता है तो कैसे जहाँगीरी स्वाभाविकता, ‘फिरंगी प्रभाव से’ पैदा हुई मान ली जाय। सर टार्मच रो ने लिखा है कि बादशाही निवकार शरीर लगाने में अद्वितीय हैं। यदि उनपर यूरोपीय प्रभाव होता तो वह इसका उल्लेख न करेंगे जाता।

यदि जहाँगीर के बीचन से निकला इतनी संबद्ध थी कि वह मिसी निव को देखकर यह तक बता देने की शक्ति रहता था कि उसका जैन अंश जिस उत्ताद का बनाया हुआ है; यदि वह चित्रों के लिए इंगलैण्ड के राजदूत टार्मच रो से मोल-भाव कर सकता था; यदि तैमूर के असली निव मिल जाने की तमाकना से उसे एक नया राज पाने की

प्रस्तुता हो सकती थी; और यदि चित्रकारी को चित्र के गुण-दोष बताते हुए उसके चित्र पाने जाते हैं तो—जब कि उसने अपने चित्रों का विषय आफ्नी जीवन-पठनाओं और अपने निसर्ग-शैली में द्वारा सीमित रखा था—तो उसने इस बात पर पूरा बल न दिया होगा कि उसके लिए स्वामानिक चित्र बनाएँ, जायें; विशेषतः जब कि वह हर बात में तथ्य और वास्तविकता का बड़ा सूक्ष्म निरीक्षक था। जहाँगीरी चित्रों में असलियत का इससे सीधा और साध-कारण^१ कहा हो सकता है।

जहाँगीर के प्रगाढ़ चित्र प्रेम के उदाहरण—

(१) जहाँगीर अपने आत्मचरित में खिलाफनारोहण के चौदहवें बरस लिखता है—“मेरी चित्र की रचना पहचान और यहाँ तक बढ़ गई है कि प्राचीन और नवीन उसकादों में से किसी का काम मेरे देखने में आता है, मैं उसका नाम सुने चिना ही भट्ट उसे पहचान लेता हूँ कि अमुक उस्ताद का बनाया है। यदि एक चित्र में कई चेहरे हों और हरेक चेहरा अलग अलग चित्रकार का बनाया हुआ हो तो मैं जान सकता हूँ कि कौन चेहरा किसने बनाया है। और यदि एक ही चेहरे में आँखें किसी की और मर्हे किसी की बनाई हुई हो तो मैं मैं पहचान लूँगा कि बनानेवाले कौन है।” *

(२) इंगलैंड के राजकूत सर टॉमस रो ने अपने यात्रावृत्तात में लिखा है—“बादशाह को मैंने एक चित्र दिया था। मुझे विश्वास था कि मारत में उसकी नकल होना असंभव है। एक दिन बादशाह ने मुझे बुलाकर पूछा कि उस चित्र के तहत प्रतिकृतिकार को क्या देंगे? मैंने कहा—चित्रकार का पुरस्कार ४० रुपये है। उत्तर मिला—मेरा चित्रकार मंसवादार है, उसके लिए यह पुरस्कार बहुत योड़ा है। रात में मैं पुनः बुलाया गया और मुझे मेरे चित्र जैसे लूँ: चित्र दिखाएँ गए कि इनमें से अपना चित्र लूँट लो। दुःख कठिनता से मैं अपना चित्र पहचान नाया और मैंने वित्तिकृतियों के अंतर बताया। उपरात पुरस्कार का मोल-भाव पुनः आरम्भ कुआ × × ” (सारांश) ।

(३) जहाँगीर के एक उमरा ने उसके पास एक तस्वीर भेजी जिसे फिरमी अमीर तैमूर की बताते थे। बादशाह राज्यार्थीहर के तीसरे बरस लिखता है—“जो यह बात कुछ भी सच होती तो कोई पदार्थ इस चित्र से बढ़कर भेरे समीप नहीं था” * ।

(४) ऐसा एक चित्र पेरिस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में है, जिसे न्युक्लिन ने अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया है (फल्क—२४ ची) ।

१—जहाँगीरनामा, दूसरा भाग, पृ० ३३८

२—जहाँगीरनामा, प्रथम भाग, पृ० ११४

ध—एकचक्रम शब्दीह का कारण—इनके भी बड़े कारण लोचे गए हैं किंतु ठीक नहीं है जो उस्ताद रामप्रसाद को परम्परा से शात है अर्थात् एकचक्रम चेहरे में उसके प्रत्यंगों अर्थात् ललाट, नाक, औठ और ढुँही का सुरहद काम रहता है अतः शब्दीह जल्दी लग जाती है; शब्दीह लगानेवाले को कष्ट नहीं होता।

एकचक्रम चेहरे अर्थात् चिनामें मुँह का केकल एक दस दिलासा जाता है जहाँगीर-कालीन चिनों में पूर्ण रूप से प्रचलित हो गए, उनमें आंखें कटावदार बनने लगीं। जहाँगीर शैली की ये दोनों विशेषताएँ नितांत मारतीय हैं। मारतीय परम्परा में एकचक्रम चेहरे नहीं ही आते थे (₹ २८ रु.)। अब शब्दीह के सम्बन्ध में उच्च मुक्तिया होने के कारण वे मुगल शैली में एकाधिपत्य पा गए।

इसी प्रकार इन चिनों का संयोजन अर्थात् रमर्याइता उत्पन्न करने के लिए ठीक जुहान द्वारा निर्दिष्ट दंग की न होकर मारतीय हंग की अर्थात् सम भरातल पर है—आकाशीय नहीं। ऐसी एक भरातल पर वाली जुहान अजंता से अपश्चंश शैली में होती हुई राजस्थानी शैली तक चली आई है।

ह—मुगल चित्र का विभान और सज्जा—यह: जहाँगीर-काल में पुस्तक-चिनों के बदले अस्तित्व लिख नियम ही बनने लगे ये जो मुरझोंवा चिनाभारी में रखे जाते थे अतः उनके विभान और बजा एवं इसी प्रसंग में उनके रंगों की छुल चर्चा आवश्यक जान पड़ती है।

योड़े में मुगल विभान यह है कि अच्छे फिल्म बाले कागद के दो तीन पर्ण को लेई से एक में साट लेते हैं, इसपर लिकटी (एक में मिली हुई स्पाही और मुलासी) वा अपावरण (एक में मिली स्पाही, मुलासी और ब्योही) से जो शब्दीह वा ख्याली चित्र बनाना होता है उसे अकिञ्चित कर जाते हैं। इसे टिपाई रखते हैं। फिर इससे फलसे सफेदे का तीन अस्तर देते हैं कि नीचे की आकृति दिखाई देती रहे और जमीन वैथ बाय, बाद सफेदे की जमीन पर फिर से तम्हालकर टिपाई कर जाते हैं। इसे सकली टिपाई रखते हैं। तब चित्र को उलटकर मोटे आइने पर रखते हैं और योड़े से बटे डारा खोटते हैं, इससे अस्तर बैठकर बराबर हो जाता है और उसपर आप आ जाती हैं। फिर बहाँ-बहाँ जो-जो रंग अपेक्षित होता है उसे दो-दो तीन-तीन बार लगाते हैं। इसे गदकारी कहते हैं; और उच्च प्रकार से खोटते जाते हैं। इससे ओप के सिवा द्वावत भी आ जाती है और चित्र

मीनाकारी जैवा जान पड़ता है। तब हुपरेखा (सुरहद के खत) से आकार और अंग-प्रस्तरण का निर्णय करते हैं । इसे सुलाई कहते हैं। साथ ही जहाँ छाया वा सौंदर्यवर्धक रंग लगाने की आवश्यकता रहती है (जैसे आँख के कोये में रतनारापन) उसे भी लगाते जाते हैं। इसे साथा-सुखमा कहते हैं। तब आभूषण, और यदि स्त्री-निव हुआ तो साथ में मेहदी, पैर में महावर आदि ऐंगर और अलंकरण बनाते हैं। इसे मोतीमहावर कहते हैं। उपरीत मीना यह अर्थात् जिसमें से नीचे का तन वा दूसरा तन आदि दिखाई पड़े, जैसे स्त्री ही ओढ़नी और पुछ का हुपट्टा, बनाते हैं। इसे मीना ओढ़ना कहते हैं। अब तैयारी की थोटाई करते हैं जिसके साथ चित्र तैयार हो जाता है।

इसके बाद चित्र बसलीसाज और तब नकाशा तथा खतकश के हाथ में जाता है पसलीसाज उसे कागद के कड़ पर्ती साटकर बनाई गई दफ्ती पर बमाता है जिसे बसली कहते हैं और तब नकाशा एवं खतकश बेलो तथा पट्टियों, तरतों आदि से उसके हाशिये की सजा (अलंकरण) करते हैं।

ऐसे हाशिए भी उच्छृष्ट दस्तकारी के नमूने हैं। उनपर बेल, बटे, शिकारगाह, बेल-बटो के बीच बीच पशु-गच्छी वा ऐसे इश्य, जिनका संबंध चित्र से हो वा जो चित्र से मेल लाते हो, बने रहते हैं। जान पड़ता है कि हाशिए के शेषोंक चित्र नकाशा नहीं, चित्रकार ही तैयार करते थे। क्योंकि कभी-कभी तो वे प्रधान चित्र से भी उच्छृष्ट होते हैं। कुछ हाशियों पर सोने के तचक का छिड़काव रहता है जिसे अकशाँ कहते हैं। इन हाशियों से चित्रों का सौंदर्य दूना हो जाता है।

बसली के पीछे अकसर कारसी मुलिपि के उच्छृष्ट नमूने बमाए रहते हैं और उनके भी हाशिए बने रहते हैं।

बसली की प्रथा मुगल चित्रों का निवास है। यही से यह प्रथा १७वीं शती में ईरान में भी प्रचलित हुई; परन्तु राजस्थानी चित्र १६वीं शती में भी बसली पर बनते थे, अतएव बसली की परम्परा भारतीय ग्रामाञ्चित्र होती है।

इस प्रकार प्रस्तुत और सजित किये गए, बहाँगीर कालीन चित्र अब भी बही संस्था में प्राप्त है।

बहाँगीर संबंधी चित्रों के साथ साथ, इनमें उस काल के ग्रामः सभी प्रमुख व्यक्तियों

—ग्रन्थ-चित्रों में यह ओप, उन्हें मुलायम हाथों से सावर माँजिकर पैदा करते हैं।

के निवारी चिनका मुगल शासन वा राजनीति से बिक्रद किंवा अनुकूल संबंध था, मिलते हैं। इस प्रकार ये बहाँगीर-काल की एक विशाल निवाला बनाते हैं। ऐसे चिंतों के मुख्यके का एक उल्लेख नमूना बलिन राजकीय पुस्तकालय में है। इसे बहाँगीर ने शाह-अब्दुल्लाह के पास उपहार में भेजा था किन्तु वहाँ से इसका एक अंश अपने वर्तमान छिकाने पहुँच गया है रोप हरान के शुल्कान संग्रहालय में है।

आठवाँ अध्याय

अकबर काल की भाँति बहाँगीर और शाहबहाँ काल वाले अधिकारी चिनकार दिनहूँ थे। इनमें बहाँगीर कालीन विशानदास, मनोहर तथा गोपन्धन एवं शाहबहाँ काल के अनुगम्भीर, चतुरमणि, होमहार, वालनन्द और विनितर विशेष उल्लेखनीय हैं।

६४२. मुगल चिंतों में प्रयुक्त रंग—ये रंग प्रधानतः चौदह है जो चार दर्गों में विटते हैं। (क) लालिच—१—गैल, २—हिरोजी, ३—रामरंज, ४—हरा ढारा, ५—लालचर्दी (लालचर्द को बफकर पानी में नियाते हैं। परसीला अंश नीचे बैठ जाता है, रंग ऊपर उत्तरा आता है) एवं ६—सोना तथा ७—नांदी (उपर छल फरके)। (ख) रातायनिक—८—फेदा (फूँका जरता), ९—सिंहूर (फूँका सील), १०—गोडी (केवल आम की तरी खिलाफ ग़ज को एक सास तथा की मिट्टी पर बौखते हैं, जो उसके भूल से वही

स्थायी एवं तेज़ पीली हो जाती है), ११—स्थायी (काष्ठल), १२—जंगाल (सिरके के प्रभाव से तवि का रुपान्तर) । (ग) आत्मिक—१३—गुलाली (एक प्रकार के छमि को सुखा कर कई मसालों के संग पकाते हैं, जिससे यह, रक्त-जैसा गहरा लाल रंग तैयार होता है)। (घ) बानस्पतिक—१४—नील (नील झुप का सार) । कुछ विद्वानों का यह कथन गलत है कि अन्य जातियाँ एवं बानस्पतिक रंगों का भी प्रयोग मुगल चित्रों में होता था । उच्च दोनों के लिया ऐसे अन्य सभी रंग उड़नेवाले होते हैं । इसी प्रकार वह भी गप है कि मुगल चित्रों में पिसे रत्न लगते थे । पिस जाने पर रत्नों में बर्द्ध नहीं रह जाता । प्रायः इन्हीं रंगों का प्रयोग राजस्थानी और कश्मीरी चित्रों में भी पाया जाता है ।

§ ४२. फारसी सुलिपि—अग्नी फारसी सुलिपि भी चर्चा हुई है । उसके संबंध में कुछ अधिक कहने की जरूरत है । चित्रण वर्जित होने के कारण अरबों ने अपनी कला-प्रवृत्ति रेखा और रूपों से निर्मित नकाशी एवं लिपि की छटा द्वारा व्यक्त की । वही इब्रत-मुहम्मद के उपदेशों को मूर्त रूप प्रदान करती थी । इस प्रकार अरब में कृषी, नस्क, तुगरा आदि कई सुन्दर और अलंकृत लिपियों का जन्म हुआ किन्तु उनमें मुख्यतः कोणी और रेखाओं की वहार थी ।

१५वीं सदी में ईरान ने इस लिपि में गोलाई उत्पन्न की, जिसका एक मुख्य भेद नम्मालीक है । इसमें वृत्त लंबो और शोणो का सौदर्य है । सुलिपि की यह शैली मुगल चित्र-कारी की जानकरी रही । अबुलफज्जल ने लिपियों का अपान जितने व्यौरे और बारीकों के साथ किया है चित्रण का उससे कहाँ थोड़े में किया है सो भी उसे लिपिकला बाले, अध्याय के अन्त-गत रखकर । इसी से मुगल हंस्कृति ने लिपि की महत्त्व समझ ली जा सकती है ।

§ ४३. १७वीं शताब्दी में राजस्थानी शैली—अकबर ने जिस संस्कृति का निर्माण किया वह देश की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति के इतनी अनुकूल थी कि समृद्ध देश ने उसे वही शीघ्रता से अपना लिया । राजस्थानी शैली पर भी उस नवचेतना का प्रभाव पड़ा । फलतः अधिकतर आरंभिक राजस्थानी चित्र इसी काल वाले मिलते हैं । इन चित्रों का एक मुख्य विषय रागमाला है, साथ ही हृष्ण-नीला और नारियकभेद के चित्र भी मिलते हैं । इस काल को पृष्ठिका में जो पुनरस्थान हुआ था उसकी तीन शाखाएँ मुख्य थीं—१—संगीत, २—कृष्णमङ्कि संग्रहालय तथा ३—रीतिकाल्य । तीनों आरंभिक राजस्थानी शैली के मुख्य विषय है ।

पर राजस्थानी चित्रकार का ढाँड़कोला कुछ दूसरा ही था । इसमें अगत् ही उसकी परिसीमा न थी; वह अपने कल्पना जगत् की सुधि करता । अतः राजस्थानी चित्रों के मुगल

पा श्रावुनिक यथार्थवादी दृष्टिकोण बाले आलोचक उत्तुतः उस शैली के साथ अन्याय करते हैं क्षीकि चित्र में जो तत्त्व है, उस्में वे नहीं देखना चाहता। चाहते, उसमें जो तत्त्व नहीं है उस्में के दृष्टुने में लगे रहते हैं। राजस्थानी शैली का नियन्त्रकार प्रभमतः व्यवस्थाप (पैटन) का प्रेम है जिएका प्रयोग पृष्ठिका के इचो आदि में पूछा पूछा पाया जाता है। उतना ही उसे रंगो का प्रेमी भी है। यद्यपि उसका वर्ण विद्यान सीमित है, पर उन वर्णों में आकर्षण है। ऐसे विरुद्धे बादलों में आकर्षण होता है, यद्यपि उनमें कोई सुभग आकार नहीं होता; कह सकते हैं राजस्थानी विचारक इसी रूप में ऐसे आकर्षक रंगो का प्रयोग करता है।

१७वीं शती में राजस्थानी शैली के चेतीय प्रभेदों का विकास होने लगता है। इनमें मेवाड़ मुख्य है। १७वीं शती के आरम्भ तक मेवाड़ की राजनीतिक स्थिति ढांचादेल थी। फिर भी उसके शासकों की चित्र प्रेम में इससे रुक्त है कि जब वे छारे देश से विचित हो चाहें नामक एक नीतिरी मार्ग में केंद्रित हो, तब मीं उनके समाजमें चिनकला फूल-फूल ही हो जाएंगे। १६०५-१६० में नियारदीन नामक विचारक ने एक रागमाला अंकित भी ओ मेवाड़ की पुरानी परम्परा की साल नहीं है। इन चित्रों में प्रारम्भिकता है, और चौर पंचाशिका वर्ग से गढ़ा लगता।

इस विचारली के विचारक का मुख्य नाम बड़ा भासक चिद्र हुआ। वह विद्यानों ने इसे मुख्य शैली का कलाकार करार दिया। परन्तु वह एक मेवाड़ी पारम्परीय विभक्तार था, यह उसकी शैली से स्वत है। कल्पुतः मेवाड़ी शैली में उसके बादका प्रमुख विभक्तार साहबदीन नामक मुख्यलम कलाकार हुआ जो समझ है, उसी कुल का व्यक्ति हो। साहबदीन के विचित्र कई बहुत ग्रन्थ चित्र मिले हैं और सम्मतः वह एक बड़ी विभक्तार मंडली का अध्यक्ष रहा होगा।

प्रायः १६३५—४० से मेवाड़ शैली का रूप निश्चर गया। विशेष रूप से दृश्यों में प्राकृतिक छटा का आलंकारिक और मोहक रूप चित्र में प्रधान हो गया। १६५०-६५१ तक उसने पूरी प्रीलूता प्राप्त कर ली। अब उसके संपुर्ण वर्णों में दृश्यों और आकृतियों के छुटाने का व्यान रखा गया है। इतना ही, दृश्यों में एक विशेष प्रकार की व्यामितिक चिद्रणी भी भी गई है। सारी पृष्ठिका भिन्न भिन्न वर्णों के लड़े पा बेड़े डुड़ी में बैठी है। ऐसी विभावलियों में उदयपुर (राजस्थान) का सूर्यवंश (१६४५-६५१) पूजा के भाग्यकल के बड़े सम्बन्ध (६४८-६५१) एवं मुख्यतः यिस अव वेल्स-ब्रह्मालय, सुमहै बाले रामायण चित्र (१६४८-६५१) प्रमुख हैं। प्रथम दो का विभक्तार साहबदीन एवं अंतिम का मनोहर था।

ऐसी बहुद् चित्रावलियों की परम्परा बहुत कुछ उसी रूप में प्रायः १६७५ ई० तक चलती रही। कुंवर संग्राम थिंड लंगड़ के गीत गोविन्द चित्र एवं राष्ट्रीय संग्रहालय वाले ऊर्जोसंवाद के चित्र इसके बहुत ही मधुर एवं मार्मिक उदाहरण हैं।

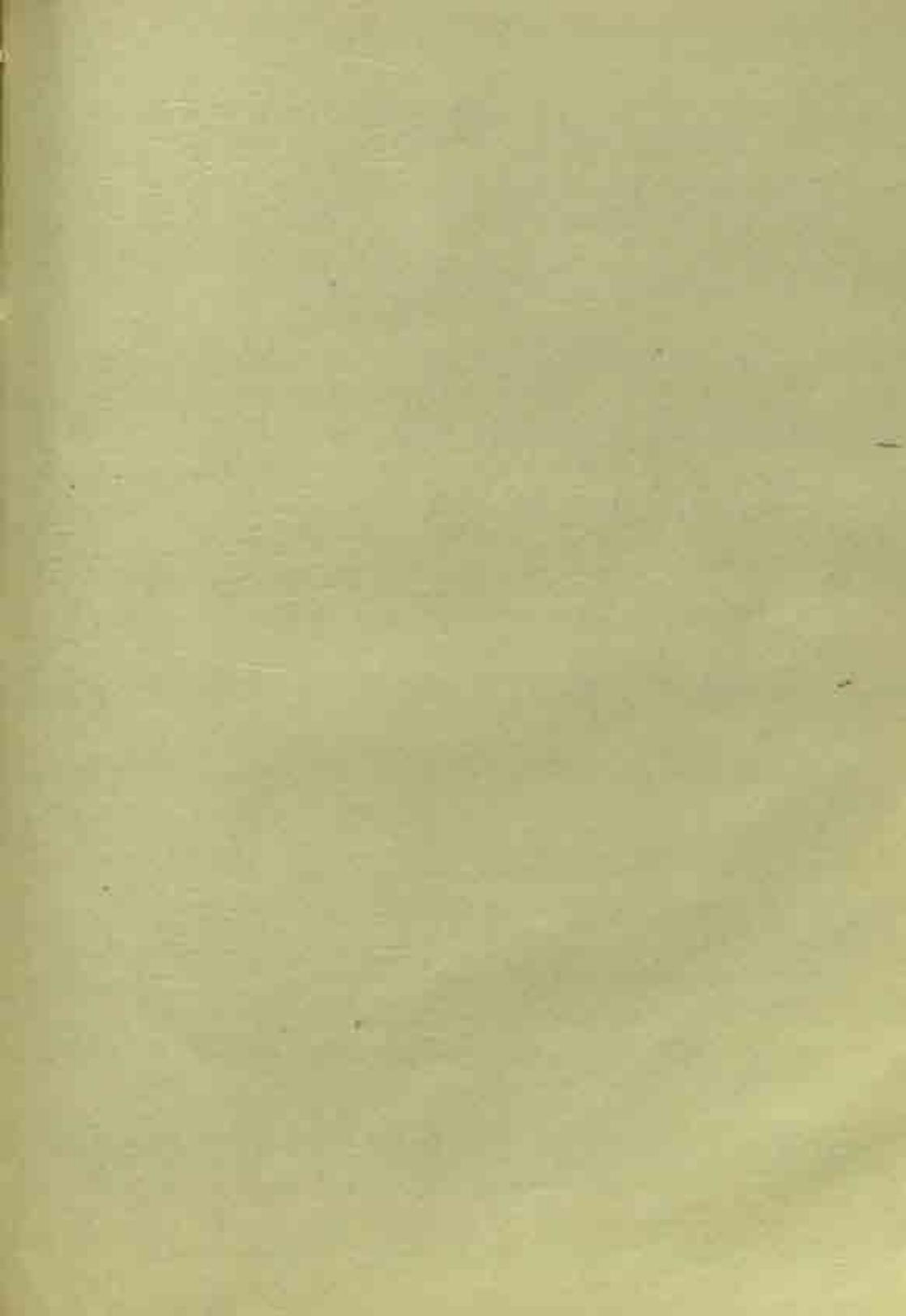
उदयपुर में महाराणाओं के भी चित्र बने।

प्रायः १७०० ई० तक मेवाड़ी शैली का रूप बहुत कुछ अल्पतर रहा, यथापि अब, न सो ऐसी यही चित्रमालाएँ ही मिलती हैं, न ऐसी आलेखन भी उदाहरण। परन्तु कुछ अक्षरों में संपुर्जन और बण्ड विभान की अति चाढ़ता है।

अन्य देशों में, यथा चूंदी (§ ३६ फलक ६) आमेर और सम्बतः जोधपुर में भी चित्र शैली का इतिहास मिलता है, परन्तु वह बहुत ही स्थग्न है। चूंदी शैली को तो मेवाड़ी शैली का एक नया एवं स्थानीय रूप ही मानना चाहिए (फलक ६, १३)। आमेर एवं जोधपुर वाले चित्रों में अत्यधिक आरम्भिकता है। बीकानेर में १७वीं शती के उत्तरार्ध में मुगल शैली से अत्यधिक प्रभावित एक स्थानीय शैली चलती रही। इस पर एक्षरी शैली का भी प्रभाव दीखता है, यथा लंबी आकृतियाँ, कुछ विशिष्ट पेड़ पालों एवं फूल आदि। इसके बर्दां विभान में भी मुगल शैली से पारंपर्य अर्थात् स्थानीय विशेषताएँ हैं। यहाँ भी मुस्लिम चित्रकार थे, जिनमें उत्ताद सन्तुरीन विशिष्ट हुआ।

राजस्थान देश के बाहर, गुजरात में यह शैली विकसित हो रही थी परन्तु उसमें अधिकतर साम्प्रदायिक और प्राणीहीन आलेखन मिलते हैं। एक दूसरा विशिष्ट देश था, कुन्वेलखण्ड। काल्य और संगीत की उपरानी परंपरा के साथ साथ चित्र शैली में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँगीर के समकालीन गहरी के महाराज वीर सिंह देव अपनी कलाशियता के लिए इतिहास-प्रसिद्ध है, उनके बनवाए जहाँगीरी महल बासु के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

बहुत कम से यह आशा की जाती थी कि कुन्वेलखण्ड में चित्र शैली होनी नाहिय थी। आचार्य कुमार स्थामी वर्त उनके अनुसरणकर्ता विद्वानों ने पहले भी कुछ चित्रों को इस देश में रखा था। अब कुछ और प्रमाण मिले हैं, जिनसे लिद होता है कि १७वीं शती के प्रारम्भ में कुन्वेलखण्ड में एक विशिष्ट चित्र शैली नज़र रही थी जिसका आचार्य कुमारस्थामी द्वारा ईमित चित्रों से निकट का सम्बन्ध था, यथापि आचार्य कुमारस्थामी वाले निर्दिष्ट चित्र, जिन्हें उन्होंने १६वीं शती के उत्तरार्द्ध में रखा था और वे 'प्रारम्भिक राजस्थानी' मानते, अब १७वीं शती के मध्य वा 'उत्तराद्द' वाले सिद्ध हुए।



प्राचीन-संग्रह-कालीन

मेहरा, ब्रह्मदेवी देवी, नवी १५५
(अद्यते त्रिपुरा देवी का दर्शन)

—३—



बुन्देलखण्ड शैली में सबसे प्राचीन उदाहरण और ब्रतिका के भित्ति नियोग में है। ये १७वीं शती के प्रारम्भ के हैं। इनमें आलंकारिकता है और शैली स्थिर ही रही है। वही वही आलंकार नोकीली मुख-झुड़ा इनका गिरजा है, जिसे पूर्ण से पंचियों की जिम्माई आलंकारिक है परन्तु उनसे परों के आलेखन में एक मुलायमपन है जो लकड़ीन बहांगीरी शैली से उद्भूत होती है। दूविता महल की पटन में रुख का बहुत ही गतिपूर्ण आलेखन है।

इन्हीं नियों से मिलते बुलते गंध नित्र वा निष्ठमालाएँ तनिक बाद से मिलने लगती हैं। इसी शैली में १६३५ है० में बनी रामगिरिया की एक प्रति मिली। इनकी भुवाइति आदि उक्त भित्ति नियों के निकट है। पुष्टिका दो वा तीन तेज रंगों के जहे ढक्कों में बैठी है इनमें दो वा तीन आङ्कितियाँ उभरती हैं, उनमें बहुत गतिमत्ता तो नहीं है, परंगिमाओं के द्वारा भालालाएँ गहरे रूप में प्रकट हुई हैं। पुष्टिका में एक दो आलंकारिक वृक्ष मानों फूलों के गुच्छे से लहे हैं।

इन्हीं नियों का निकास रामायण की एक बृद्ध निकाली में हुआ है। रामायण के कथानक में निकार को जीवन के विभिन्न दश्य निश्चित करने का अवलम्बन हुआ। उसमें आलंकारिक एवं प्रतीकात्मक संपुङ्जन है अचर्चित आङ्कितियाँ महल के अनुषार छोटी बही हैं। दश्य को मुक्तिवानुसार व्यामितिक आङ्किति में बौंट दिया गया है। युद्ध के दशों में प्रकाशद निश्चय है, वीर रस से औत-ग्रोत आङ्कितियाँ जैसे उड़ रही हीं। वही कही बन्दरी और राजसों के अर्घन में हासा का पूरा पुट है।^१ यहाँ फलाक^२ में इनी निष्ठमाला का एक उदाहरण है। इसमें कुम्भकर्ण को निद्रा से बगाने के प्रयत्न दर्शित। उसके बहुताकार को बगाने के लिये, हाथी का प्रयोग किया गया है। कुपी भूक रहे हैं, बदूके लूट रही हैं, तुरंगी बढ़ रही है, साथ ही रुख भी हो रहा। शास्य का पुट है ही, रुख में प्रवीन लय और गति भी है।

इस शैली का विस्तार कित्त किस देश तक था, इस ठीक ठीक नहीं तमसा का सका है। परन्तु वह निश्चित है कि इच्छ शैली के अन्तर्गत कई उपमेद हैं, इनमें से कुछ नियों की लकड़ीन मेगाही नियों से संतुक्तता है। पलतः कोई आशनर्य नहीं कि यह शैली मालवा सेते सुए मेवाइ के ज्वेत तक को लूटी रही ही। मालवा प्रदेश उत्तर भूमि-शाल में वही संतुक्ति का केन्द्र एवं अपनें शा शैली का एक प्रमुख केन्द्र (₹ २५)। इसी ओर पर यह शैली आङ्कित उत्तर प्रदेश के कुछ केन्द्रों तक भी पेली रही ही तो आशनर्य नहीं।

१७वीं शती के उत्तराद्दे में इस शैली का पूर्ण वैभव दीखता है। इनमें मुख्यतः तो रागमाला चित्र है, परन्तु इधर हाल में अमर शतक नामक एक संकृत शृंगार काव्य, रामचरित और कृष्णलीला की कई चित्राखलियाँ, दुर्गापाठ आदि के चित्र भी मिलते हैं। परंपराएँ इन चित्रों में एक और प्रारंभिकता का होती बात है, इनके दर्शन का विषयान कम होता जाता है और दूसरी ओर मोटा परदाब बढ़ता जाता है। इनकी रेखाएँ मोटी और आकृतियाँ छड़ होती जाती हैं। इस प्रकार प्रायः १७०० ई० तक इनका अभिक द्वारा देखा जाता है और प्रायः उसके बाद यह शैली लुप्त हो जाती है। पिछले काटि के इन आलेखनों में विषय वस्तु का विस्तार हुआ, आकृतियाँ भीरे धीरे प्रधान होती गईं और प्रकृति से उनका सम्बन्ध लूटता गया। प्रायः अन्य चित्रों की पुरानी परंपरा में चित्रों के बेहें कई कई लोट और उनमें विविध दश्य अंकित हुए हैं।

इस शैली का नरम विकास प्रायः १६५० ई० से १६८० ई० तक के उद्घास्त्रणों में मिलता है। रागमाला के अंकनों में भी शृंगार इस के अनेक इयं, दूसरे शब्दों में नायिका मेद की रसिकता और युगल ग्रेम की मधुर मावना चाहकार हुई है। चित्रकार का मुख्य उद्देश्य प्रकृति की गई से नई कल्पनामयी छढ़ा उद्घाटित करना है और मानव आकृति एवं उनकी मानवनाएँ उचके उपाय मात्र हैं। रागमाला चित्रों में आकृतियाँ गति और ताल से चित्र हुए, जैसे उनमें लीज़ हैं। मिन्न मिल्न यह पक्षियों से कन्त-उपरक्षन सेवित है। चट्टकों रंगों में चित्र चिमाजित है—एक-एक चर्चा मन को फड़ा लेता है, चित्र मानो रंगोंन चादलों का संवाद हो।

इन चित्रों के ठीक ठीक काल मिथरेश में भी काले लंडलालाल के रौप का भारी महसूस है। उन्होंने कुछ यह पूर्व राष्ट्रीय संवाहालय संघर्ष से १८६० ई० में तैयार हुई एक नियमाला प्रकाशित की। यह माधवदास नामक चित्रों की कृति है और नरसिंह शहर में तैयार हुई। प्रायः चित्रान् नरसिंह शहर को मालवा रिथ्त नरसिंह गढ़ मानते हैं।

गहरा कलक १२ में बनाड़ी रागिनी का चित्र एक प्रतिनिधि उदाहरण है। यद्यपि ऐसे चित्र परंपरागत होते हैं, पर उनमें कलाकार का निवास भी पाया जाता है। कलाकार प्रत्येक रागिनी के निर्दिष्ट मालों को अक्ष करता और इसमें वह जितना सफल होता उतना ही चित्र मार्मिक होता। बनाड़ी चित्रों में परम्परागत कल्पनों का एक लोड़ा भी अंकित किया जाता, जो प्रसूत चित्र में बहुत ही लज्जित है। ऐस प्रकार के चित्रों की प्रतिका वहे गहरे रंगों की यथा काली हिरोंची की वा ईंगु की होती है। चेहरों पर अपर्ज्ञ शैली की स्पष्ट लाप है। रंग चित्रान् बहुत चट्टकीला होने पर भी बहुर्ग नहीं होता। चित्रों की

चोटिने, नाहों और गहनों में बड़े बड़े काले पूँछ से होते हैं। १७वीं शती के उत्तरार्द्ध वाले चित्रों में आरंभिकता के बदले पुष्टता पाई जाती है तथा पटोल नेत्र के बदले मीनाच का प्रयोग होने लगता है, अथों ब्रज-उदयगम और मालवा-नुबरार उद्गम की भारतीय का संसाध होकर एक प्रवाह चलता है। अब राजस्थानी चित्रों में जीवन अधिक पाया जाता है। चित्रों का विषय भी सामिक और चिस्तुत ही गया है, पहले रायमाला का प्राप्त एकलत सामाजिक या अब नायिक-मेद और कुश्यालीला का भी उत्तरा ही प्रचार हुआ। नायिक-मेद के चित्रों में पूँछ काल में केशब और परती काल में विहारी के पश्च सुरुपतः बाधार माने जाते हैं। पहले के सबीं ग को चित्रित करने में चक्कल संपुर्जन (कंपोजिशन) पाये जाते हैं प्रायः चित्रों में एक ही भाव के दो दृश्य दिखलाए जाते हैं। इसमें प्रेम के विविध रूपों का मार्मिक विषय पाया जाता है। फिर भी उनमें अपभ्रंश शैली की कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं। इस प्रकार राजस्थानी शैली अपने लोक में ही विकसित हो रही थी। उस पर मुगल प्रभाव पहुँचा, उसमें वैतन्य आया पर उसका स्वरूप न बदला।

कु ४४. १७वीं शती में दृकनी शैली—इम दृकनी शैली के १६वीं शती वाले इतिहास को अपर (कु ३७) ऐज तुके हैं। १६वीं शती के चतुर्थ चरण में अहमद नगर और बीबापुर के राजों का मुगलों से राजनीतिक संपर्क हुआ जो कम और बेश शाहबद्दी के प्रारंभिक वर्षों तक चलता रहा। इस बीच, शीत युद्ध के काल में, मुगलों और बीबापुर के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी हुआ। फलतः इस काल बाले बीबापुरी एवं अहमद नगरी शब्दों में हम स्पष्ट मुगल प्रभाव पाते हैं, जिसके पालस्करण बहाँगीरी शैली के अनुकरण में सारी पुष्टिका महीन कलम आदि चिशेषताएँ दिखियोंचर होती हैं। रंगों में भी यथापि उनका निष्कर्ष बना रहा पर १६वीं शती वाला तीव्र वर्ण चित्रान् लिरोहित हो चला।

१६२२ है० तक गोलकुंडा राष्ट्र बना रहा। उसमें मुख्य स्पष्ट से शब्दों तेपार होती रही। इसके बाद वह मुगल ग्राहित प्रेरेण्य था। १८वीं शती में आचक जाही के फैज़बादों पर वहाँ एक बड़ी ही सुमधुर चित्र शैली उत्तर्न हुई, जिसे हम हैवराजाई शैली के नाम से जानते हैं। इनमें शब्दों के अतिरिक्त, नायिकाओं के स्कूट चित्र, रायमाला चित्रादि बहुत बड़ी संख्या में तैयार हुए। इनमें मुगल शैली की तेजारी और राजस्थानी प्रभाव में विषय बहुत है। फिर भी लंबो आकृतियाँ वृक्षों और झूल पत्तियों में नकाशापन मोटी लिखाई, तीसे रंग आदि दृकनी शैली की विरोधताएँ प्रमुख हैं (फला० १४)। १८वीं शती के उत्तरार्द्ध में वह शैली लोक में और अधिक व्याप्त हो गई (फला० १५)।

१८—१९वीं शती में इकनी शैली के अनन्दित स्थानीय भेद दीखते हैं। १७वीं शती में राजस्थानी और मुगल प्रभाव बाली अनेक स्थानीय शैलियों में मिलती है जिनका ठीक ठीक निर्वाचन नहीं हो सका। इंगलैण्ड के वॉइलियन पुस्टकालाप में आनंद विद्याप लॉड द्वारा प्रस्तु एक रागमाला के चित्र इसी कोटि के हैं। इस दी में कुछ अन्य चित्रों का स्थान निर्वाचन किया जा सका है। कला-भवन के कुछ निष्ठित प्रभावों से यह लिद हो गया है कि आगरा और दिल्ली में भी स्थानीय शैलियाँ भी जिन्हें हम राजस्थानी शैली के अन्तर्गत रख रखते हैं। स्थानावलः इनपर गहरा मुगल प्रभाव था।

नवाँ अध्याय

ई ४५. शाहजहाँ काल (१६२८—१६५३) को मुगल शैली—शाहजहाँ काल से मुगल शैली एक दूसरे ही रूप में सामने आती है। यब चादशाह का उससे कोई निची सम्बन्ध नहीं रह जाता। वह मुगलई बैनर और तहक-भाइक के, जो इस सम्प्रथमी पराकाढ़ा को पहुँच गई थी, प्रदर्शन का एक अंग मात्र रह गई जैसा कि शाहजहाँ की अन्य कृतियाँ नहीं हैं। अब चित्रों में हृषि से ज्यादा रियाज, महीनकारी, अस्थिक घोरे, रंगों की लूटी तथा शान-शौकत एवं अंग प्रस्थानों, विशेषतः हस्तमुद्राओं की लिखाई में बड़ी सफाई और कलम में कहाँ से कमजोरी न रहने पर भी दरवारी अद्वय-काषदों की बहुत-कमदी और याही दबदबे के कारण, इन चित्रों में माव का नईया अभाव खेल एक प्रकार का सनाटा पाया जाता है, यहाँ तक कि जी ऊपरे भी लगता है।

इस प्रकार के नित्रो से अलंकृत ग्रन्थ समय के इतिहास, वादशाहनामा, जी एक प्रति उसने तैयार कराई थी। इसमें कहाँ सौ नित्र है। यह प्रति तितर नित्र हो गई। इसके अनेक नित्र मिल-मिल लंगों में पाये जाते हैं, उसका एक निशिए और बिटेन के विष्वस ग्रासाद संग्रह में है।

इनमें के दो भारत-कला-नवन में हैं, जिनमें से एक शाहबहाँ काल की अन्धी से अन्धी तस्वीरी में है। इसका समय १६४५-६० के कुछ बाद है। उस सन् में शाहबहाँ के दूसरे बड़े भुटाद ने बलच के वादशाह नवर मुहम्मद भुटाद के पास उपस्थित होता है औनों नित्र में उस समय का दृश्य है जब नवर मुहम्मद भुटाद के पास उपस्थित होता है औनों एक दूसरे से मिल रहे हैं। इसर उपर पदविकारी और सरदार सम्मित स्थानों में बदब के साथ खड़े हैं। नित्र में, इसके कुती फतहबन्द ने बलच का सेरा (प्राकृतिक दृश्य) दिखाने में कमाल कर दिया है।

यदि शाहबहाँ कालीन नित्रों में उन्मुक्ता है तो उनमें, जिनमें वादशाह की किंतु संत से घेट चित्रित है। इनमें दरबारी बक़ुड़बन्दी और कृतिमता से एक छाण के लिए छुट्टी मिल जाती है। मुगलबंध शुरू से साधुमत्त या आतपद शाहबहाँ के भी ऐसे नित्र पाए जाते हैं।

इसाँदै नित्रों के नित्रों में भी मान रहते हैं; किन्तु ये भाव मूल निदेशी नित्रों के हैं। ऐसा एक नित्र दिया जा रहा है (फलाक—१७)। इसमें शिष्य देवा भसीर की मृदुल दिव्य छवि दर्शनीय है। कुमारी मरियम के निर्विकार इसले दुए चेहरे पर धनिव वास्तव्य वही कुशलता से दरखाया गया है।

शाहबहाँ काल से बचन मुन्दरियों के नित्र भी मिलने लगते हैं, जिनसे मुगल स्त्री-संदर्भ का आदर्य बाना जा सकता है। अमांगे दाराशिकोह ने अपनी अनुगता पश्च नादिरा बेगम को, १६४२-६० में एक नित्राचार उपहार दिया था, जो इस समय इंडिया आर्किल, लंदन में संरक्षित है।^२ इसमें उच्च नित्रों के तुम शाहबहाँ कालीन अच्छी-नित्रों आदि के अन्दे उदाहरण है। रामहत और जिलालिता के नित्र जहाँगीर काल से ही मिलने लगते हैं, यथापि बहुत अल्परक्ष्या में। शाहबहाँ काल में उनमें पर्याप्त इक्कि हुईं। स्वभावतः

^२. असूतः इस नित्राचार के कुछ नित्र परवती भी हैं, जिनकी कलम बहुत मोटी है, ज्ञातः ये नित्र साधारण कोट के हैं। उनके हासिए जो उठी भज्ज के हैं।

ओरंगजेब काल मर उनमें विराम आया, किंतु फिर तो उनकी बाहु थी आ गई। मुगल राजवंश की बीचन पारा किस ओर जा रही थी, उसके से चिन्ह प्रलच्छ प्रतीक है।

विकसित मुगल शैली मुख्यतः शारीर की कला है, और वर्यापि ये शारीर बहुपा एकत्रशम है, किंतु भी अच्छी शरीरों में अद्व काषदों की इतनी जकड़बन्दी होते हुए, भी चित्रकारों ने सूत के साथ सीरत (स्वभाव) दिखाने में बहुत कुछ सफलता पाई है।

मुगल शैली के यौवन काल में रंगों के ओप, दबावत और मलाहियत के कारण आरम्भिक मुगल चित्रों से भी अधिक मीठापन रहता है। किंतु ये रंग कुछ बदरंग करके लगाए जाते हैं (§ ३४ ख-४, पृ० ७७, प० २०-२१)।

मुख्यतः राहजहाँ काल से मुगल शैली के कुछ बिना रंगों रेखा-चित्र भी मिलते हैं किन्हें स्याह-कलम चित्र कहते हैं। इनमें कागज पर फिटकिरी मिले सरेस या आरेक को सफेदी का असर देकर, कि कागज बों का ल्यो दीखता रहे किंतु लिखाई न फूटे, बहुत संमान कर स्थाई से बड़ी वारीक सच्ची टिपाई (§ ४० ड) करते हैं और उसी (स्थाई) से तैयार भी कर जाते हैं। दाढ़ी आदि में एक बाल परदाज (एक एक बाल अलग अलग दिखाना), मुलपम साधा और ओठ, आँख, तथा हथेली ने नाम मात्र की रंगत, कहीं पर जरा या सोना या अन्य रंगों का इशारा, इन स्याह कलम चित्रों की विशेषताएँ हैं। इनके मुख्य चित्रकार राहजहाँ कालीन मुहम्मद नादिर समरकंदी और नवुरमलि (§ ४० ड) हैं किनके साथ संभवतः होनहार (§ ४० ड) का भी नाम बोहा जा सकता है।

§ ४६. ओरंगजेब (१६५८—१७०७ ई०) से आजमगीर साही (१७४८—५१) तक की मुगल शैली—ओरंगजेब के समय से, मुगल चैम्ब के समस्त अंगों की तरह चित्रकला में भी हाल के कोहे लग जाते। राहजादगी से लेकर बूढ़े और कुमड़े तक के उसके किनने ही चित्र मिलते हैं। ये चित्र बिना उसकी अनुमति के नहीं बन सकते थे; उस समय फोटोग्राफी न थी कि पल मर में चित्र ले लिए जाते। शारीर लगाना बंटी का काम या ओर कल्पना से उसका किया जाना असंभव था। फिर भी उसके समय में चित्रकला उपेचिता ही रही।

हाँ, इस कला का एक उपयोग वह अवश्य करता था। खालियर के किले में उसमें अपने बिन कुदुम्बगों को धंद कर रखा था, उनकी यथार्थ अवस्था बाजाने के लिए वह हर महीने उनकी सलवारे बनवाया करता कि पोस्त के उस पाले का, जो प्रतिदिन उन राजवंशदियों को दिया जाता था, मार्शिक पारणाम उसे (ओरंगजेब के) मालूम होता रहे।

इसी प्रकार का एक चिन्ह स्थ० भी सीताराम ताह, बनारस के संप्रह में है। याह-बहाँ करमीर में डल भौंल पार कर रहा है। इश्य सुन्दर है। नाव नलाने वाली में कुछ नहि है, शेष अंशों में वही याही अद्य कायदा एवं तड़क-भड़क (फलक—१६) फिर भी इस चिन्ह में उत्तम की उत्तर बारीकी का अनाव है, जो याहबहाँ काल वाले चित्रों में मिलती है।

इस चमय के भी दरबारी चिनकार अपिकार हिंदू ये। श्रीरामजेय के बाद मुगल साम्राज्य की भाँति मुगल चित्रकला का इतिहास भी उत्तरी पड़ती का इतिहास है। यथापि मुहम्मदराह के समय तक के चिन, जहाँ तक कारीगरी का सम्बन्ध है, अपना पूर्व गौरव बहुत कुछ बनाए रखते हैं, किंतु मुगल चंश का कोई सम्मानशर्पक इतिहास न रह जाने तथा उसके नेतृत्व वतन के कारण, जिसका प्रमाण सारे राष्ट्र पर पड़ा था, इन उत्तरीरों के विषय अब मुख्यतः राम-रंग और किलालिता से ही सम्बन्ध रखते हैं (फलक—१८)।

अब मुगल शैली से ट्रूटफर उत्तरी अनेक विशेषताएँ राजस्थानी शैली में ली जाती हैं और उसके इस स्पष्ट भी प्रतिक्रिया पिछली मुगल शैली पर होती है, जिसके कारण दोनों रैलियों में इसनी रमानता आ जाती है कि किसी किसी चित्र के बारे में यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि वह किस शैली में रखा जाय।

§ ४७. १८वीं में राजस्थानी शैली—अब यह शैली पूर्ण विकसित हो चुकी है। यथापि आलंकारिता इच्छी मुख्य विशेषता है, यहाँ तक की शायीद की गाहुरियों में भी आँख आदि में अल्पांक रहती है; तो भी, मुगल चला के संसर्ग से कभी कभी इस विशेषता में गिरिखिलता पायी जाती है। राममाला, बारहमाला मुख्यतः केवल और चिह्नों पर आधृत नायिकामेद और कृष्णलीला इसके मुख्य विषय रहते हैं एवं अनेक संचित प्रथा भी बनते हैं। इस काल में मेवाह राजस्थानी शैली का महावूर्ग मेन्द या जाहाँ के बने चित्रों में विशेषता पाई जाती है। इन चित्रों में दोष वर्णिका और गति-पाई जाती है जिनका अक्षर शैली के बाद मुगल चित्रों में प्रायः सर्वथा अमाव है। राजस्थानी शैली में जिसनी उन्मुचता है, उतनी बसोहली को छोड़कर अन्यथा कहीं नहीं। बसोहली में भी वह राजस्थानी प्रमाण से ही है। मेवाह शैली भी ऐसे बहुत बड़ी चित्रमालाओं प्राप्त हैं जो अक्षर शैली के सिवा अन्यथा नहीं दीखती। इनमें कृष्णलीला सेवीय एक चित्रमाला लालारण से वहे आकार में है और उसका चित्रण भी अल्पन्त असाधारण है।

कृ. लालार पर आधित लैंचरतः मात्र एक चित्रमाला भी इसी शैली में है। इस काल वाले मेवाह शैली के चित्रों में जेहरई पर स्थाही से साया लगाया जाता था।

इस काल में बूँदी मंडल भी राजस्थानी शैली का सुख्य केन्द्र था। इन चित्रों की विधिका बहुत अकर्पक होती। नितया में लालचिक प्रयोग इनकी दृश्यी निशेषता है। पानी, बादलों और पश्चिमियों के अंकन में स्वभाव निरीचया पर अलंकारिता दीखती है। इनके लेहरे गोल होते हैं और लेहरदे अस्तिरिक लाल होती है। धृष्टिका में बूँदों, फूली हुई लताओं का सम्म नितया एक छनोत्ता सौंदर्य उपस्थित करता है। गतिमत्ता तो इनकी अपनी विशेषता है (फ़ाल—१६)। नित्र के बर्ण विभान में भी परिवर्तन दीख पड़ता है, अब राजस्थानी चित्रों में अपेक्षाकृत रुक्मियाने रंग लगने लगे हैं। कोटा द्वेरा में बूँदी शैली की एक शाखा थी।

इस समय इस शैली का एक सुख्य केन्द्र बनपुर था। वहाँ के इस काल के राज-मंडल और गोवर्हन-धारणा के चित्र वहे मुख्य और सजीव हैं। जोधपुर, किशनगढ़ और नायद्वारा में भी अच्छा काम बनता था। नायद्वारा के चित्रों में मुरानी परम्परा विश्वामान थी। यहाँ के पटनिव विशेष रूप से मिलते हैं। इनमें ग्रस्तेक में नित्री शैली-वात विशेषतायें हैं। जिनके अन्तर्गत असंख्य उप-शैलियाँ हैं। इनमें से बहुतों की रहनान पाग की विभिन्नताओं से होती हैं। मिति-चित्र तथा पटवित्र की परम्परा भी नल रही थी।

दतिया के राजा शत्रुघ्नि (१३६१-१४०१ ई०) के समय में तुदेलखंडी कलाम अपनी पूर्वी को पूर्वेन गई। उस समय देव के अष्टमां, विहारी सतसई और मतिराम के रस्तान की पूरी निपत्तिली तथा राजीव और यामिक चित्र बहुत बड़ी संख्या में लेपार हुए। इनका रंगनिधन चपाट और आलेखन चित्रकला भावरहित है; पात्र पुस्तक से लेहे रहते हैं। हाँ, इनके ल्ली मुख-मंडलों की तराश सुन्दर है और आंखें रसीली।

पेण्ठारे के कारण महाराष्ट्र में भी राजस्थानी शैली की पहुँच हुई। मराठा चित्रों पर, जो चिट्ठा संग्रहालय में तथा अन्यत्र संग्रहीत हैं, बयपुर की पूरी छाप है। वारीराव वेश्वा (१३०४-१३६१ ई०) ने पूजा के अपने शनिवारचाडावाले प्रचाद को निश्चित कराने के लिए बयपुर से मोजराव चित्रकार को बुलाया था।

विद्युत मारत में यह शैली मैसूर, ताजोर और रामेश्वर तक पैदी थी। वहाँ के चित्रों में इसके साथ उत्तर-मध्यकालीन प्रभाव भी मिलता है जो मिति चित्रों के कारण, उपर आब मी चला आता है।

इसी मौति पश्चिम नेपाल में पाल शैली की परम्परा चली आ रही थी और आब तक चली आ रही है चिन्ह वहाँ चित्रों, चित्रपटों और पुस्तक चित्रों में भी १७वीं शती में

राजस्वानी शैली का अनेक अंशों में प्रभाव पाया जाता है। इस प्रकार राज-धानी शैली ही उन काल की हमारी राष्ट्रशैली थी।

६४८. बसोहली वा बम्मू शैली—यंबाच में राजस्वानी शैली का एक केंद्र बम्मू वा उसके निकटवर्ती बसोहली में था। यहाँ का आलेखन १७वीं शती के राजस्वानी चित्रों के बहुत निकट है। बहांगीर कालीन मुगल शैली का राजस्वानी शैली पर प्रभाव पड़ा। उससे पुष्ट होकर राजस्वानी शैली सारे देश में व्याप गई। इसर स्वयं राजस्वानी शैली तो सभ्य पाकर बदलती गई पर बसोहली के नित्रकार आब से एक ढेह शती पूर्व मी उच्च-बहांगीरी परम्परा का निर्वाह करते गए जो उनके कृतियों से स्पष्ट भलाकता है।

इन चित्रों का विषय मुख्यतः रामाला, गीतगीविद, भागचत, रामायण, भारत एवं नायिका-मेद है। राजस्वानी चित्रों की मौति स्पाट किंतु उससे तेज रंग, बड़े बड़े मीन-नेत्र चित्रमें छोटी-छोटी पुतलियाँ, पीछे जाता हुआ वा ऊपर को दाढ़ुओं ललाट, स्त्री चित्र औबदार लिलाई, बृह, बज्जे, बादल आदि के आलेखन में बहुत ही आलोकारिक लिलाई, कठरकार चित्रकार, सोन-चित्रों (स्तर्ण-कीट, यंबाच में इसे सोना-मासी कहते हैं), के पंख द्वारा गढ़ने के हरे नगिनों का अंकन, स्पाट पृष्ठिका के चित्रकूल यारी हिस्से में चित्रित रेखा एवं उसके कारण एक पतली भजी-जैसा आकाश का आलेखन, इस शैली की विशेषताएँ हैं। साथ साथ मुकुट, दुपट्टे की कहरान एवं बाल्य आदि में कहमीरी प्रभाव भी पाया जाता है। चित्रों पर टाकी लिपि में और कमी-कमी देवनागरी में लेख दर्शते हैं।

६५०' शती का मध्यांच इस शैली का उल्कां फाल है, चित्रके मुख्य उदाहरणों में से ६५० द३० की मानकू चित्रकार की बनाई, गीतगोकिन्द चित्राली है जो संप्रति जाहौर संग्रहालय में है। मानकू को जी मानना भूल है, क्योंकि उन्हाँनी और हिन्दी में उकारत नाम पुरुषों के होते हैं, चित्रों के नहीं, चित्रों के नाम ओकारान्त होते हैं।

६५०' शती के उमात होते होते यह शैली निर्वाच हो जाती है।

६५१. बहांगीरी शैली—६५०' शती से चित्र पुनरुत्थान का आरम्भ हुआ उसी उत्तरोत्तर प्रगति होती गई और आब दिन तक होती जा रही है। ६५०' शती से हम लग्ने अतीव से संरंग छोड़ने लग गए, चित्र प्रकृति को इम हर्ष के बाद से कमरः भूल गए थे। यथापि उस संरंग की भवानारत के बादजाली कहियाँ बहुत इधर तक अन्यकार में थीं, जिस भी इसने निज चित्र भाषाओं में रामचरित लिले, भागचत एवं भवानारत की अवतारणा की। छित्रजी ने ग्राचीन शास्त्र-चित्रान् उच्चीचित्र किया, यथापि वह बहुत अचूरा था क्योंकि चित्र भाषाओं के आधार पर उल्का निर्माण हुआ था वह बहुत ही सीमित थी। बपसिंह ने ग्राचीन

पद्धति पर नगर बसाया, अश्वमेह लिया, वेपसाजार्द्दे क्षार्द्दे और उगवातियों को तोड़कर मूल चातुर्भुयं कायम करने का उचोग किया।

जिस प्रकार आनार्द्दे केशन ने रामचन्द्रिका द्वारा आदर्शी राजा की प्राचीन अष्टयाम-चर्यों का निर्दर्शन कराया उसी प्रकार कवि-प्रिया और रसिक-प्रिया द्वारा प्राचीन रीतिशाहित्य से संबंध बोड़ा—जिससे हिन्दी की रीति-कलिता चल पड़ी और मतिराम, देव, विहारी जैसे कवि-प्रवरों की बाणी प्रस्तुति हुई।

उधर १७वीं शती में औरंगजेब की उपेक्षा के कारण और १८वीं शती के मध्याम्ब तक मुगल साम्राज्य के दृढ़ दृढ़ हो जाने के कारण, बादशाही चित्रकार नए आधार लोडने पर बाधा हुए। संस्कृत: उनमें से कुछ, राजी से पूर्ववाली काँगड़ा दून की रियासतों-चंदा, चूरपुर, बलरोटा, मुजेर, कोट-कोगड़ा, तुकेस, मंडी, कुलसू एवं नाइन, चिरमोर आदि में पहुंचे। उन्हीं के हाथों १८वीं शती में पहाड़ी शैली का तकदर रोपा गया (५३०)। अफ़्रिक के बाद से उनकी प्रतिना याहाँ बनि के बंधन में जाकड़ गई थी। अब उसने मुर्छि पाई और उन्हें 'दुर्कम पाह' के बदले 'राजीतसुखाप' रचना का अवधार मिला। पर्याप्त यह काम भी ये आजा से करते थे, किंतु इसमें उस रस्ते की अभियांत्रिक कुरायें प्राप्त था जो उन्हें रमणीय था। अर्थात्, उन्होंने जिन्हों द्वारा प्राचीन से संबंध-स्पर्शन का भार लिया।

काँगड़ा दूस कदमीर शैली के जैव में था। तिक्कत से भी वहाँ का संबंध था। अब मुगल चित्रकारों ने कदमीर शैली से नाता बोह, अपनी मुख्यकिणा ही नहीं बुझते, अपितु उसमें नई जान कूँक दी। वही पहाड़ी शैली है। तिक्कत का प्रभाव नी इच्छे कहीं, कभी पाना जाता है। किंतु इसका कैँथा, बणिका, आदि विषान विकसित मुगल शैली पर ही अपलंबित है जिसमें नति और अभियांत्रिक कदमीर शैली दी है। इनके अतिरिक्त भावमंगी, मुद्राओं, कृष्ण के अविसी चरण, जलो का फहरान, मुकुट आदि अनेक ज्योरी में भी कदमीर शैली बोला करते हैं। कितने ही पहाड़ी निषों में तो मुख्यांश कदमीर का ही मिलता है अतएव इन शैली की परम्परा उसी से निष्ठ होती है। यदि वह येली स्वतंत्र हार से विकसित हुई होती तो इनकी आरम्भिक अवस्था के विष भी मिलते। किंतु ऐसे पहाड़ी विष है नहीं जिनमें आरम्भिकता हो। अर्थात् वे कदमीर शैली के रूपान्तर में ही एक दम से रंग-मंच पर आ जाते हैं। इच्छा समर्थन रामप्रधाद जी की कुलगत अद्भुति से भी दोता है, जो पहाड़ी निषों की कदमीर की कलम के अन्तर्गत गिनती है।

ऐसी अवस्था में—ताथ ही इन नड़े अन्तरों के कारण भी कि राजस्थानी शैली मुख्यतः आलंकारिक कला है और यह भावगूलक या रागास्त्रक; राजस्थानी जिनों के विष

का मेनदंड रामामाला है, इसमें, (इसकी सहृदयता के अनुरूप) उसका प्राप्त: आर्यंतामाव है एवं दोनों के उत्थिति काल में भी प्राप्त: तीन सौ वर्षों का अन्तर है—ये दोनों शैलियाँ कियी प्रकार 'राजपूत' नामक एक बड़े ग्रन्थ के भीतर नहीं आ जातीं (§ ३०) ।

पहाड़ी चित्र शायाहत लिये दुप, ख्याली होते हैं अर्थात् उनमें बालाकिता और मालका का संमिश्रण रहता है। इस भिन्नता द्वारा इसके उस्तादों ने अपने नित्य में वर्षी सज्जोत्तरा और रमणीयता उत्पन्न की है। ऐसा कोई सब वा भाव नहीं है, जिसका पूर्ण सम्बन्ध अंकन ये कलाकार न कर सके हों। उनका आलोचनम् आवश्यकतातुसार 'नित्यादिपि कठोर' वा 'कुसुगादपि मस्तु' होता है। उनको यथानुभूति अत्यन्त विस्तीर्ण तथा व्यापक है, उनकी प्रत्येक रेखा में प्राण, संवेदन और प्रवाह रहता है एवं वह पक्ष अर्थ रखती है, मत्ते ती वह छोटी क्षोटी क्षोटी न हो।

देवताओं के भवान, रामायण, महाभारत, मारगत, दुर्गाचारणी इत्यादि, इत्यादि समस्त पौराणिक लाइल; ऐतिहासिक गाथा; लोकगाया; केशव, मतिराम, विहारी, सेनापति आदि हिन्दी के प्रमुख एवं अन्य अव्योत्तर कवियों की रचनाओं से लेकर बीदन की देवीक चर्चा और शाचीह तक ऐसा एक भी किष्य नहीं किसे उन्होंने छोड़ा है। कोई भी 'मस्तु' अंकित करना इन चित्रकारों के लिये असम्भव या ही नहीं। न वे उसके एक दो चित्र बनाकर ही संकुप्त हुए गए। उन्होंने जो किष्य उठाया उसको मालिका की मालिका बना डाली, सो भी ऐसी जोड़े-तर कि देवकर दाँतों ऊँगुली दबानी पड़ती है। मौलिकता इन कृतियों में इतनी है कि आप यह न कह सकें कि वे लाइलिक रचना या अबलंबित हैं। इन निशेषताओं के कारण यह कहना अत्युक्ति न होगा कि अबैता युग के बाद पहाड़ी शैली में ही भारतीय कला एक ऐसी ऊँचान तक उठी है जहाँ तक पहुँचना चिलमाह नहीं। किंतु एकचरण चैररे के लिया अन्य रसों के चैररे की लिखाई में वह कला असफल रही।

कांगड़ा के राजा संसारचन्द्र (१७०५-१८२३ ई०) तक के अध्य में पहाड़ी कला का सर्वानुग दल रहा था। १८२८ ई० में इन्हीं संसारचन्द्र की दो कल्पार्द गड़वाल नरेन द्वा ज्ञाती गईं। इसी सिलसिले में कांगड़े के चित्र और चित्रकार भी देवेन में गहरी आए। इसी समय से गड़वाल में भी पहाड़ी शैली प्रवर्णित हुई। वहाँ के मोलाराम चित्रकार का नाम आवश्यक प्राप्त: सुन पड़ता है। किंतु जो चित्र मोलाराम पर आसेपित किये जाते हैं उनके निकटस्थि में इसकी विभिन्नताएँ हैं कि वे एक चित्रकार के नहीं हो सकते। गड़वाल में जो चित्र देवेन में आए उनमें गीतामीक्षिद और विहारी चित्रावली वही ही सुनाम और गुणोमल है।

लिल-उल्लपै-काल (१७६०-१८४३ ई०) में पहाड़ी शैली का एक केंद्र लाहौर, अमृतसर में भी रहा, जहाँ इस कलम की, विशिष्ट लिल अक्षियों की अच्छी शब्दी शब्दी तैयार की गई।

प्रायः १८५० ई० से, अर्थात् पंचास की स्वाधीनता के अन्त के साथ ही, इस शैली का छन्त उमस्का चाहिए। यों तो पहाड़ी कलम के कारीगर अभी तक पाए जाते हैं। पहाड़ी भित्तिचित्र मी बराबर बनते थे। इस शैली के इतिहास के लिये इनका अध्ययन आवश्यक है। पर अभी तक इस ओर ध्यान नहीं दिया गया है।

पहाड़ी शैली के उल्लंघन में काइसीर शैली का स्वाक्षरन्वय लिलीन हो गया और वह मार्मिक प्रम्यों के महें चित्रों के रूप में कुछ दिनों तक चाँस भरती हुई उमात हो गई।

पहाड़ी शैली के कोमल अंकन के लिये फलक ६३ देखिए। पहाड़ी शैली और शैदी का एक बड़ा चार आदर्श निर्माण करने में शक्ति हुई है।

अकल उपर्युक्त का दृश्य है। हृष्ण उल्लल से बंधे सिँचक रहे हैं। यहोदा ताङ्गा दे रही है। हृष्ण की कमलीय शोभा, कोमलता, दृसरी यजोदा की कठोर वाइना को देखते हुए गोपियाँ निस्तावा एवं आभार चकित हैं। निमित्त मनोमावी का एक साथ ही, उमान उल्लता से अंकन हुआ है। प्रह्लादिन में अत्यंत ही घरेलू वातावरण है।

उदात्त आलोचना का नमूना फलक २० है। किस ओब से कियोर कृष्ण ने तुरंत कालिय को दबा लगा है और वे अनायास उस पर नान रहे हैं। उस में गति है। उनके पैरों से दबकर कालिय पिसा जा रहा है। नाम बालार्प, उल्लकी प्रायः भिक्षा माँग रही है और तट पर की घटना की भीषणता से ब्रह्म और कालिय के बिष से ग्रामावित घाल तृण तथा गांव मूर्छित पड़े हैं।

हृष्णलीला में गीतिकाव्यात्मक दृश्य भी दीखते हैं; उनमें ग्रामजीवन का भी उच्च विप्रगत हुआ है।

पहाड़ी शैली का विवकार शिक्षक है और उसने शिव के सभी रूपों का—झंका, विल्पाच, नटराज, गंगाभर आदि अनेक रूपों का—उफलता पूर्वक चित्रण किया है। इसे शिव के विभिन्न रूपों का मार्मिक विचरण हुआ है (फलक २३)। शिव के गणों का—लक्ष्मी की मति—विविधतापूर्वक विचरण इन विवकारों की अद्भुत कलमना गति का परं चर देता है।

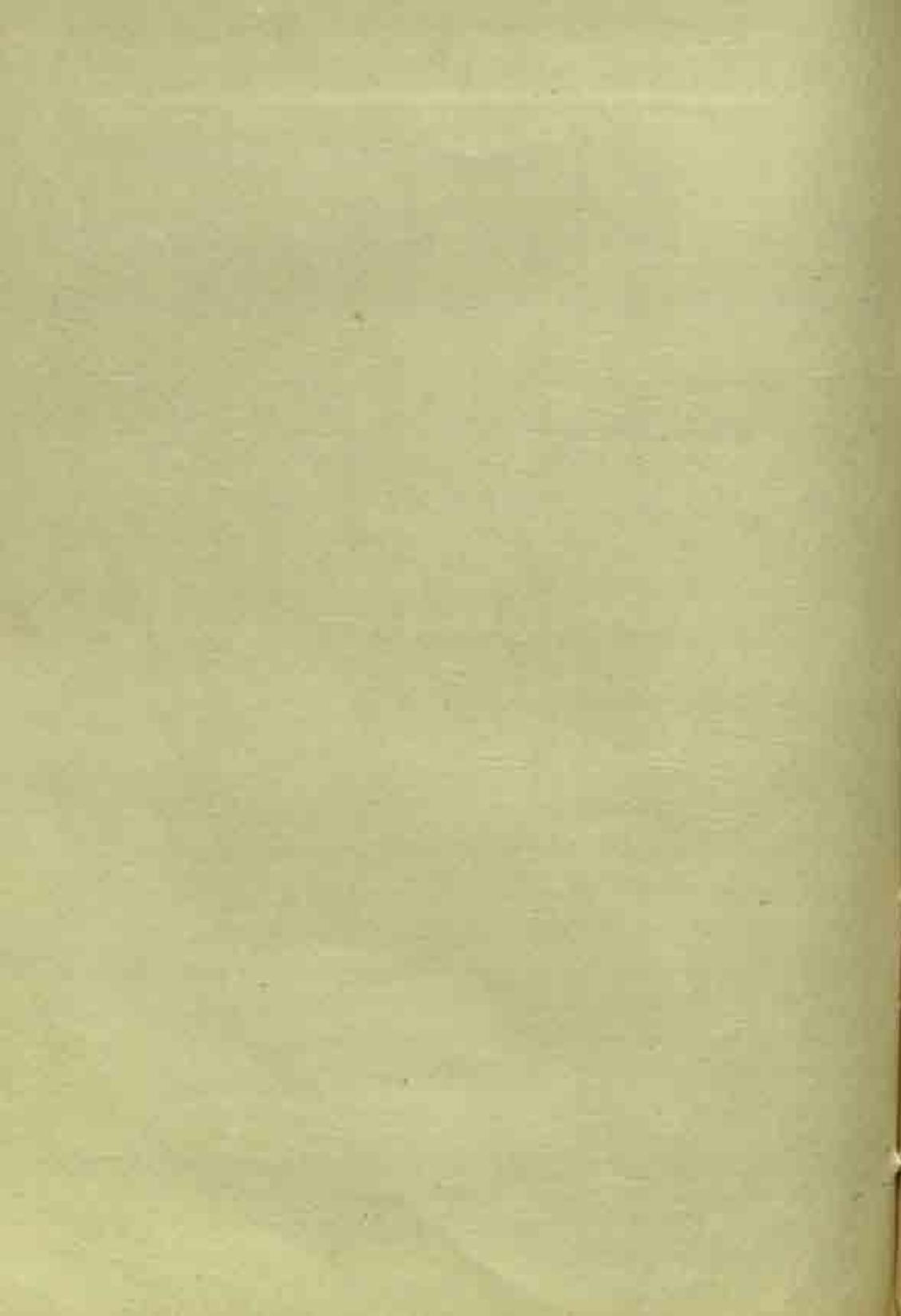


पत्रक—३

उत्तर-देशग

मारत-कला-भवन-संचालन

पहाड़ी लोकी (कोट्टा) प्राप्त: १०९० ई०



फलक २६ पहाड़ी निवारों के व्यापक हाइड्रोग का अच्छा उदाहरण है। सांसारिकता से दूर शांति के ताम्राच्च को देखिए।

नवी
सम्भाव

§ ५०. शाहजहालम कालीन और उसके बाद के मुगल चित्र—बो कुछ मुगल शान यह रही थी उसका भी अंत आलमगीर सानी के द्वाय हो गया। पानीपत का संभास इस महानाटक की समाप्ति का पटाढ़ेथा। आलमगीर सानी का उत्तराधिकारी शाहजहालम द्वितीय केवल नाम के अधिकारों का इस्तोतरित करने के लिए गई पर बैठा था। फलतः उसकी कोई चिमोदारी न रह गई थी। उसका राजकाल भी बहुत लम्बा हुआ (१७५६-१८०६ ई०)। इस शांति स्थी निवारिता के समय का, दिल्ली के परामेदार चित्रकारों ने एक उपरोग किया। नादिर, अब्दाली, तुरबमल बाट, मराठों, बोली और सिलों की छोटी से दिल्ली का खजाना खाली हो गया था। उसके चित्र-रक्ष में कहाँ के कहाँ हो गए थे। इन चित्रकारों के पास उनके चरबे (जिल्ली पर उतारे हुए खाके, देखिए) चले आ रहे थे, जिनके साथे इन्होंने अनेक प्राचीन चित्रों की प्रतिकृतियाँ तैयार कर डालीं।

ऐसे चित्रों की पहचान ये हैं—इनमें स्थानी के साथे का अत्यधिक प्रयोग रहता है; पहाँ तक कि चेहरों के मलायट काले से हो जाते हैं। परवाज भी भरमार रहती है। चेहरदृश्यायः पीली वा नारंगी झलक (टोन) की होती है। सबा-चरम, डेव चरम चेहरों में नाक का टोक करने को उठा रहता है। अर्थे चुंची (चेहरे के अनुगत में चुक्त छोटी) तथा हाथ पर्यावर की लिखाई बहुत कम्बोर रहती है। अक्सर छद्मी नाड़े होते हैं।

ऐसे चित्रों के सम्बन्ध में आजकल के बड़ा-कोविद बड़ा भोजा या ऐ है और इन्हें मूल-प्रतिवर्ण समझ रहे हैं। जालायाजी को भी ऐसी ही गई है; जिन्होंने पर शाही मुहर तक लगी है। सम्भव है कि ये शाहजहालम के लिए मी बनाए गए हो। इस प्रकार का एक मुख्या सातव चेलिस्टन संभवालय में है चित्रका नाम बैटेज चित्रेस्ट है। इनमें के चित्रों पर बहाँगोर भी मुहर है। बैन-बीन में एकाप अख्ली चित्र भी है। इसी तरह का एक लाहू-पुरां जाल अलवर-राज्य पुस्तकालय में है। यह बाबरनामे की संचित फारसी धर्ति है, जिस पर लिपिकार का नाम भी अली दिया है और लिखा है कि इसे हुमायूँ ने तैयार करने के बाबर को, उसके अंतिम वर्ष में मेट किया था। सोचने की जात है कि भी अली हुमायूँ के पहले मर चुका था और बाबरनामे का फारसी अनुवाद हुमायूँ के देहांत के तीसरी बरस बाद खानखाना ने, अक्खर के लिए किया था (§ ३४ य ३)। अब इस बाली धर्ति के चित्रों से

डैठेज विकेस्ट के नियों को मिलाइए और अपनी आँखों से उसका बाल पहचान कर असंविद हो जाए।

इस समय मुर्हिंदावाद, लखनऊ और हैदराबाद में, जो मुगल ग्रामाच के स्थों से स्वतंत्र राज्य बन गए थे, पिछली मुगल शैली के केन्द्र स्थापित हो चुके थे, किंतु इनमें कोई नियोगता नहीं आई और इनका अंत हो गया।

मुगल शैली के नियों की नियोंव नकल करनेवाले कुछ कारीगर अब भी दिल्ली तथा अन्य केन्द्रों में हैं। किंतु शैली के रूप में इसका जीवन अधिक से अधिक १८६० ५० तक माना जा सकता है।

₹ ५६. कंपनी शैली (तथाकथित पटना शैली)—पूरपवाले यहाँ हाथी-दाँत की तथा उसी विषान बाली कामद पर को नियन्त्रकारी ले आए एवं उन्होंने उसके कारीगर भी तैयार किए। कुछ विद्रान इच्छा शैली को पटना शैली कहते हैं क्योंकि यहाँ इसके कई प्रताने थे। पर यह इसका उचित नामकरण नहीं। इस शैली का प्रभाव बंगाल से पंजाब तक उत्तरी मारत तथा दक्षिण में महाराष्ट्र तथा पश्चिमी भारत तक था। पश्चिम में तिथ तक इस शैली के नियंत्रण नहीं है। नेपाल तक में भी इस शैली का प्रभाव था। न तो इस शैली का उद्गम ही पटने से हुआ और न वह इसका कोई नियन्त्रकृत केन्द्र ही था। पटना शैली कुछ विलायती विद्रानों का २०वीं शती में दिया नाम है, किंतु उन्होंने केवल इस आधार पर इस विद्रान कि इस शैली के आधुनिक आवाय पटने के हैं। बस्तुतः यह एक देशव्यापी लहर थी जो ताकालीग मुगल और यूरोपीय शैलियों के सम्मानण से उत्पन्न हुई। इसका प्रभाव भी 'कंपनी' के नियंत्रणों के साथ साथ बढ़ा। अतः इसका समुचित नाम पटना शैली न होकर कंपनी शैली होना नाहिए।

इस शैली में याँची ही प्रमुखता है। इसके आलेखन में पूरा साया और उड़ाला अभीन् पूरा ढोल रहता है, जिसके लिए परदान का उपयोग अधिकता से किया जाता है। इसके बेहरे प्रायः डेह-बश्म रहते हैं। यहाँ के कारोगरों ने इच्छा यूरोपीय विद्रान के संग महीन-कारी भी मिला दी है; यही इस शैली की योरोपीय कला से मुख्य प्रभकरा है। १८वीं शती के उत्तरार्ध से मुगल शैली के नष्टग्राम हो जाने पर इस शैली का प्रभाव बहुआ। इसके मुख्य केन्द्र लाहौर, दिल्ली, लखनऊ, बनारस, मुर्हिंदावाद, नेपाल एवं पूरा, लतारा तांबोर आदि थे।

विदेशी लोग इस शैली का एक यह उपयोग करते कि अपने देश के लिये यहाँ के पेसों, बानों, बेश और रहन-रहन के नियंत्रणाओं से जाते। ऐसे सेट को फिरका कहते

है। आजकल के चित्र-पोस्टकार्डों की तरह पटना शैली के कारीगर फिल्में के सेट ठेकार रखते हैं।

६४२. बनारस राज्य में कंपनी शैली—बनारस के महाराज ईश्वरीनारायण सिंह (१८३५—१८८८ ई०) का विशिष्ट अधिकारी था। शैली, लखनऊ आदि के किलने ही गुरु, गायक उनके समानित थे। हिंदी के दोनों भाषाओं स्तंभ, भारतेन्दुजी तथा राजा शिव-प्रसाद उनके दरवारी थे। भारतेन्दुजी की तो ये पर के लड़के जैसा मानते थे और उनकी शुल बहते थे। महाराज रामनारिमानन्द के बड़े भक्त ही नहीं, ममें रंगित भी थे। देव (काष्ठ-बिहू) स्वामी जो उद्घट विद्वान्, पहुंचे हुए महाराजा तथा उन्हें दर्जे के कवि थे, उनके शुरू में और उन्हीं के यहाँ निवास भी करते थे।

महाराज के समाज में, कंपनी शैली के दो उल्लङ्घनकार भी थे—लालचन्द और उनके भतीजे गोपालचन्द। कारी में दल्लूलाल इस शैली के उस्ताद थे। उन्हीं से उच्च चित्रकारों ने यह कला प्राप्त की थी। इन दोनों चित्रकारों से महाराज ने इन्हें बनवाए कि उनको हम कंपनी शैली का बहांगीर कह सकते हैं। इस चित्रालयी में महाराज के इष्ट-निष्प दरवारी, गुरु, कलाचंद, राज-समाज एवं परिवर्त से लेकर यालतु, फूल-फूलों, रंग चिरंगे जैगली प्रवेश तथा फूल फूल तक की बढ़ियाँ से बविती रखी हैं। कंपनी शैली की शर्पी है तैयार करने में उच्च दोनों चित्रकारों का स्पान ठंचा है। शैलीकार उनके विषय में जानकारी भी प्राप्त है।

चित्रकला और उच्चके इतिहास की दृष्टि से तो यह चित्रालयी महल की है ही, सांस्कृतिक इतिहास के लिये भी गुणियों के विषय एवं उस समय की वेश-भूषा आदि का बड़ा मसाला इसमें निहित है। इसमें हिंदी-प्रेमियों के आकर्षण के भी तीन चार निम्न हैं। भारतेन्दुजी एक बार महाराज के लिये कई प्रकार के गुलदाऊरी के फूल ले गये थे; राजा शिवप्रसाद ने महाराज के लिये आम भेजे थे; उनके तथा देव (काष्ठ बिहू) स्वामी की बोकितावस्था के तथा समाप्तिय होने पर के चित्र भी इस चित्रालयी में हैं।

आरा निवासी एवं छलकर्ता प्रवासी उस्ताद ईश्वरीप्रसाद कंपनी शैली के बीची शती वाले प्रतिलिपि थे। सम्बन्ध: उनका कुल उच्च उस्ताद दल्लूलाल के कुल से सम्बन्धित था।

६४३. उस्ताद शमप्रसाद—१८वीं शती में कुल मुगल शाहजादे बनारस में नज़रबद किए गए। उन्होंने लखनऊमें में चित्रकार भी थे, जिनमें के उस्ताद लालचन्द भी से

काशी के लिखती नामक चाल ने मुगल शैली की नियन्त्रकला पाई । उस्ताद रामप्रसाद उन्होंने लिखती के प्रयोग में ।

यदि आपसे काशी की गलियों से बाठ बालठ बरस के एक कुरा स्थानिक को, किसी भूमि में तेजी चलते जाते देना है, विलासी आँखों सुड़ा है दुर्दृष्टि है, वही दृश्यमात्र वह रही है, वही मूँछे बिना चंचारी हुई है, जिर पर मेली भुजी भुजी गाँधी टोपी है और कटि में उससे भी मेली घोली, जिन्होंने तन पर एक लड़िया हुपट्टा पड़ा हुआ है, पैर में जूता हो चान हो—तो बान लीविए कि आप मुगल शैली के एकमात्र अवशिष्ट, उस्ताद रामप्रसादबी के दर्शन कर चुके हैं !

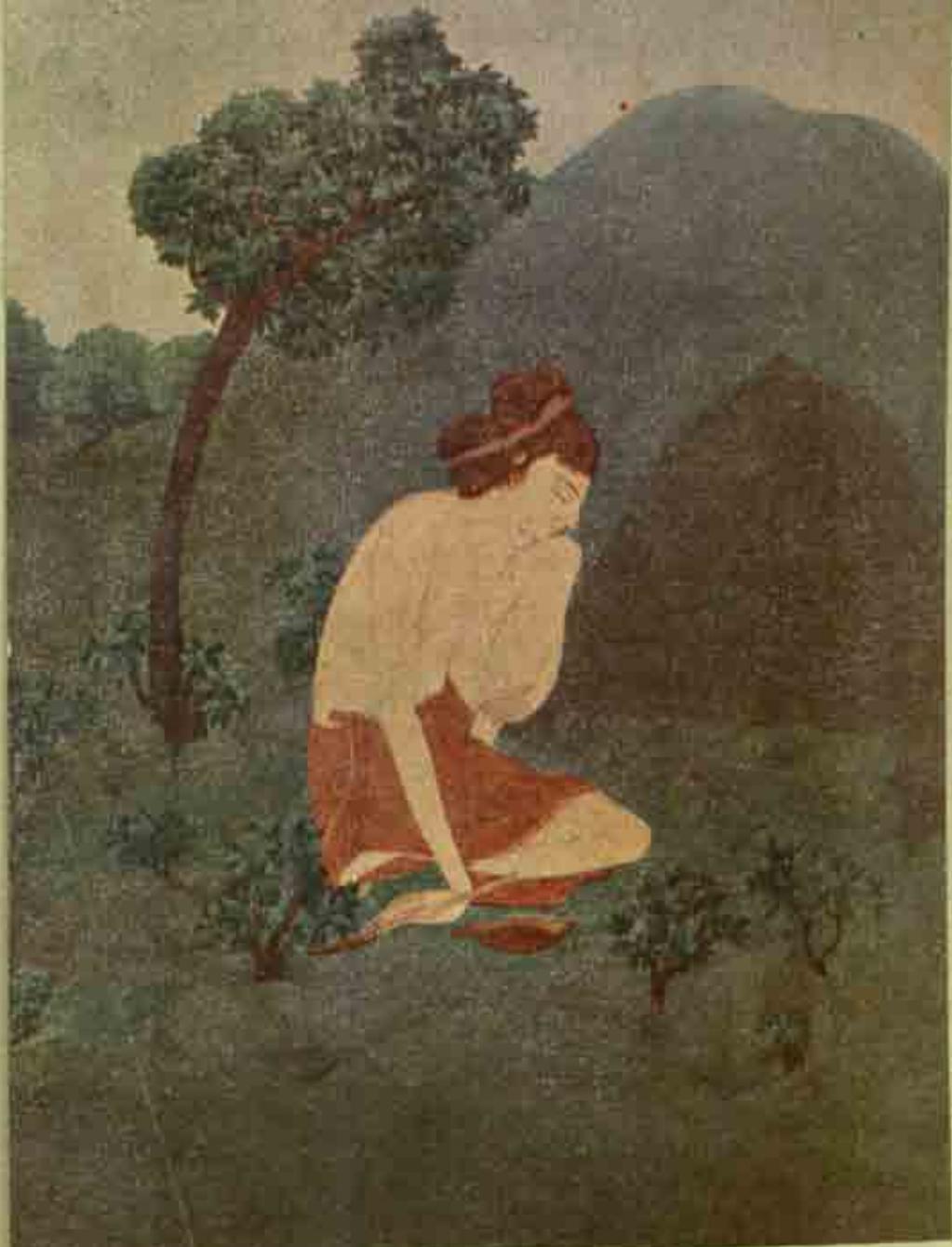
आपको प्रकृति वही साधु है और विचारों का दृष्टिकोण दार्शनिक एवं कलात्मक, अभ्यास तात्त्विक; ज्योकि किसी वस्तु का वास्तविक असुन्दर करना उसके सौंदर्य का अनुभव करना है, इसी कारण दार्शनिक और कलाकार दोनों ही विचारों में तात्त्विक एकतामता होती है । आपकी उकियाँ वही ही चुन्न, मार्मिक और स्टॉटिक (नियाने पर बैठनेवाली) होती हैं । भगवान् ने जैसा रत द्वाम में दिया है वैता ही कंठ और तरीकत में भी । आप स्वभाव से कृती और कलाकार हैं । किंठ, समय के फेर से आपको एक दरिद्र शिल्पी का जीवन लक्षित करना पड़ रहा है ।

मुगल शैली के तो आप एकमात्र प्रतिमिति एवं ज्ञान-पंडित हैं ही, आपकी प्रतिभा चर्चेतोमुखी मी है । आपकी मौलिक रचना का एक सुन्दर नमूदा शिव-सांडव का चित्र है (फलक-२३) । नटराज के प्रशांति मुख मंडल पर तन्मयता और भाव-ममता का आल्पिक मुख लुट दिखाया है । शिव-चित्रण आपका प्रिय विषय है । आपके उमरखल्याम-नियों को दा-कुमारस्वामी ने, यूप के प्रसिद्ध चित्रकार छ्यूलैक के नियों से विशिष्ट माना है । प्रकृति-चित्रण तथा शशीह लगाने में आप एक हैं ।

§ ५४. ठाकुर शैली—उन्नामधन्य स्व० हैवेल (उस समय गवर्नर्मेंट आर्ट कूल, कलकत्ता के अध्यक्ष) की उद्घाटन से आनामं अवनीद्रनाम ठाकुर के हाथों एक नवीन शैली—ठाकुर ईली—का निर्माण हुआ (लग० १६०३ ई०) ।

वस्तुतः यह प्राचीन चित्रकला का पुनरुत्थान है, किंतु इसके महान् जन्मदाता अवनीद्र नाथ में, लंबार भर की किसी नी चित्रकला की विशेषता को अपनाकर पूर्णतः भारतीय

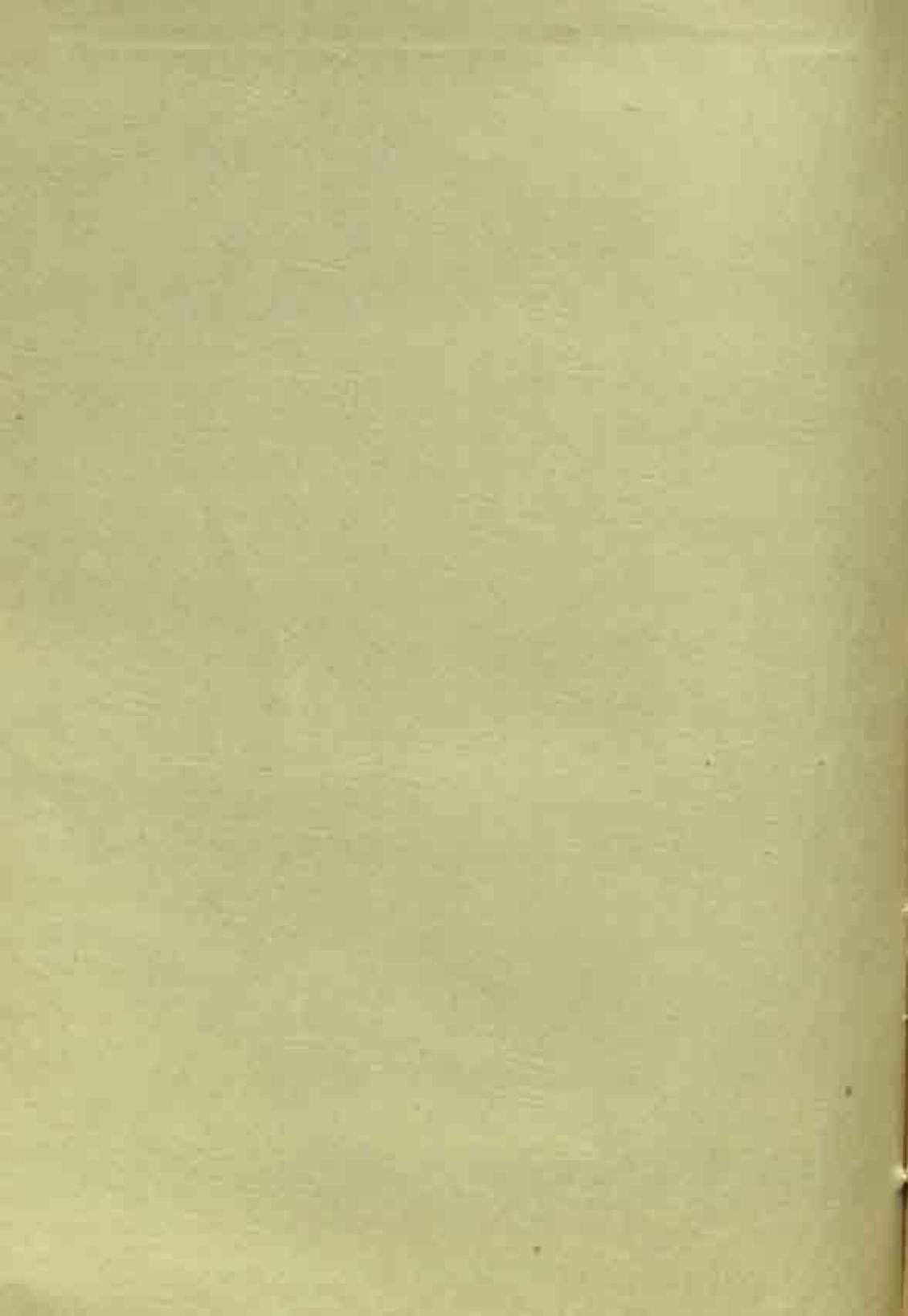
१—चरलूप्पिंगमा २००८ चिं० (१६४३ ई०) को यह कलापर अस्त द्वे गया ।



विरही वस्त्र

(मेघदूत-चित्रावली से) शक्तिराजी, चि० श्री लेलेन्द्रनाथ दे

भारत-कला-मणि-संग्रह



करा लेने की अप्रतिम चमत्का है। उल्लः ठाकुर शैली की पदति और अभिव्यक्ति में अंजेता की अनुयायिता होते हुए, भी भारत की मुगल, पढ़ाई आदि शैलियों की तथा जीनी, जापानी और पश्चिमी चित्रकला तक की विवरणी ही अधिकांश इस प्रकार आधारित कर ली गई है कि इसका स्वभाव पूर्णतः भारतीय द्वया है। विस्मृत अलीप से संबंध बोडने की ओर कामना दीन-लार से बरसे इन्हाँरे द्वयमें लहरा रही थी (५५) वह अब खा कर पूरी हुई, जोकि अब अपना विश्वास अधिकारमय नहीं रह गया है।

आरंभ में यह शैली मुख्यतः प्राचीन विषयों को लेकर चली, जिस अब तो इसका संभूत विस्तृतीय हो गया है—अबीचींग सामाजिक बीचन तथा प्राकृतिक दृश्यों का भी इसमें सफल अंकन हो रहा है। स्वयं अवगाह वालू के चित्रण-विषयों का लेत प्रायः तारे संसार की ओरे हुए है।

आजार्य अवनीदिनाय का प्राचीन विश्वासला एक चित्र यहाँ दिया जाता है (फलक—२४)। तिथरचिता असोक की रानी थी। उन समाट का अधिकार समय उपासना में शीत्ये लगा तो रानी को योग्यिता में से शीत्याकाष्ठ कृष्ण और उन्हें दूस की नह कर दाला। इस चित्र में वह उसे कैतों कुटिल और कर्केय दृश्य से देख रही है।

आजार्य के अग्रज सद० सगनेद्वनाय ठाकुर ने अकल-विचान और चित्रित विषयों के विनाश में दिलने ही श्रद्धालू एवं रक्षल प्रयोग किए। उनका एक वालोलन है जो लोक-लोके विशेषों और चतुर्भुजों का समूह मात्र है। इसका विषय है—हाथ। अमर्त हाथ की यह मूर्त्युल देना उन्हीं सरीखे कलाकार का काम था, जैसे कालिदास ने मेघदूत में कैलास के पहाड़ शिल्प द्वारा यिदि की अद्वाय-राशि का दर्शन कराया है। (आजो देखिए।)

सगनेद्वनाय वालू के प्राकृतिक दृश्यों के चित्र भी अपूर्व हैं। उनके अंतर्गत चित्रों में वह अस्या श्रोत-प्रोत है, जिसका कारण है अपने देश की—गार्मिक, गामाजिक एवं राजनीतिक विषयों तथा अध्यापन, विनसे प्रत्येक छहशय विनाशित हो उठता है।

विश्व-कवि स्वीदिनाय ठाकुर ने भी चित्र बनाये हैं। ठाकुर शलों के अंतर्गत होते हुए भी उनके ज्ञायावादी चित्रों का एक अत्यन्त स्थान है। इनकी सदम व्याप्ति हम इस प्रकार कर सकते हैं कि ये चित्र के अव्यक्त मन में तरंगित होने वाले तरह तरह के आकारों के अंकन हैं। और, अपनी वालू के पट्टशिय महान् कलाकार भी मंदराजा बोल की आपक सहानुभूति, कल्पना की उड़ान तथा अंकन विचान की बहुमूली प्रतिमा तो वारे भारत में आदितीय है। उनकी रहनी संसों की है। फलक १४ में अपनी वालू के एक प्रमुख विषय, भी शैलेनाय है की एक कृषि-प्रकाशित की जा रही है। वहूत वर्ष पूर्व रीलेंद वालू ने मेघदूत की एक विचापली

बनाए थे । प्रस्तुत दृश्य में हम रामगिरि पर निरही वज्र के देखते हैं । दृश्य का अंकन प्रहृति निरोद्धवा पर आधित है । जारे और हरियाली के ही सरल रूप में छाँड़ हुई है । वज्र अपनी विरहित अवस्था में वीक्षित एवं लोगोंकाम दिललागा गया है । उच्ची आँखिंति में अंकेता की परंपरा है, पर पुनर्जीवित होकर और लंबाया मीलिक रूप में ।

आनन्द एवं अच्छीद्वयनाम का शिष्य-प्राणियष्ट परिवार बहुत बड़ा है । उसके द्वारा ठाकुर शैली समूचे देश में फैल चुकी है और राष्ट्रीय कला के आलन पर आसीन भी हो चुके हैं, जिस पद के वह संघर्षा योग्य है । इस उत्थान से विश्वास होता है कि हमारी कला का भविष्य खड़ा समझकर है ।

इसर जीवकला को सेहर कुछ भवोग किए गए हैं । ऐसे अपोकाली में वामिनी राय प्रमुख है । उन्होंने पूर्ण रूप से वित्रकारी का शास्त्र सीमतकर स्वेच्छवा यह मार्ग व्याख्या की है । कुछ लोग कहते हैं कि समय में उन्होंने इस और प्रज्ञन किया है । कुछ लोग उम्मते हैं, एवं तथा यह प्रवर्तन करने की भावना से उन्होंने ऐसा किया है । जो हो उनमें वामिनी शक्ति (डाइरेक्टनेस) और जोह है जो आदिम (प्रिमिटिव) कला की दृष्टाता है । इस कला द्वारा शक्तिशक्ति का नितना ज्ञेन ज्ञाकोङ हो सकता है—यह एक गंभीर प्रसन है । संमेततः यह देख बहुत संकृतिहीन होगा । पर भारतीय जित्र शैलियों में प्राचीन परम्पराओं को सेहर अन्य प्रवोगों में आव राजस्थानी-यहाँही शैली के उन्नतीरणों का बड़ा ही सफल भवोग हो रहा है, जिसमें बंधुदेव के जी बगदाप आहिकारी का नेतृत्व है । इन जित्रों से यिन्हें होता है कि अपनी परस्ता में किनारों बोरनी शक्ति है ।

ठाकुर शैली के बाद

इस बीच पैरिस के नेतृत्व में कला-बगदा का मास्टंड ही बदल गया । भारत का कला बगदा बूरोप की इस राजवंशों से आप्रमाणित न रह सका । इस नए प्रवाह में कला का पुराना मूलांकन एवं उसके बाहर रूप की प्रतिष्ठा समाप्त हुई । अब कलाकार लंटिपति रूप उपरिक्षण करता है । इस स्थिरिमित आँखिंति में कलाकार को पूरी छूट है कि नह जितना भी चाहे लौह

मरोह (विस्टारीन) कर सकता है। इस प्रकार जो आकृतियाँ उपरिषेत होती हैं वे हमारे बलु भगवत् से कितनी ही असंबद्ध कठोर न ही वे सभी मान्य हैं कठोरिक उनमें प्रथेह से एक विशेष भाष्य-ज्ञानवादी प्रकट होती है। इस प्रकार कला कलियों में आकृतियों के बाह्य स्वरूप की असंबद्धता (विस्टारीन) की प्रतिष्ठा उत्थापित हुई।

आनार्य आवनीदिनाय और उनकी प्रारम्भिक दिव्य मरणदली का सुधान द्वारा आभया बापानी चित्रों की ओर तथा आपनी मुख्य, दाखरणारी अपवाह पहाड़ी शैलियों की ओर था। अनेक विद्वान उनकी शैली की ओर अनास्थः प्रकट करते हैं। उनका विचार है वीरायिक कलाओं के विवर आदि में ठाकुर शैली प्रशंसनवादी थी, आपनी वही गली मुरानी शैलियों में अंगरेजी चित्रों की अनुकूलिति के द्वारा वो कुछ वैशार कर रही थी, उनमें कुछ नी निखरवन था। वहन भारतीय थी, न विलापसी एवं उचका यह कला दाखरणास्थ ना था। आनंद ने शाल में ही हमें बताया है कि इसके अंतर्में जो तथाकथित रास्त्रीयता की मानवा थी, उह उस देश की नीति थी जिसे अंगरेजों ने हम भारतीयों में उम्र राक्नीतिक विचारों को 'उदारदलीय' विचारधाराओं में मोह देने भाव के लिए उत्थापित किया था।

संभवतः आनंद ने इस कला शैली में उम्र तत्त्वों या विलक्षणताओं के अभाव में ऐसा निर्णय दिया है।

ठाकुर शैली के विचारों की एक यही विशेषता यह थी कि कलाकारों ने विषय मार्ग लोके और अनेक शैलियों में विभग किया। कुछ कलाकार तो ब्राह्मण नाय, नए प्रयोग करते ही थे, इनमें आनार्य नेतृत्वात् चमु मूल है। उनकी एक शैली, यहाँ ही आलोकिता है और उसमें मालाकालीन भारतीय मूर्तियों का प्रभाव वस्त्राभूषण, पेड़ पालो, नदी आदि की लिखाई में स्पष्ट है। इस प्रकार ठाकुर शैली में ही विषय-स्त्रुतु पुराने होने पर भी उनके वित्त नए दृष्टिकोण अथवा उनकी नई अभिभविकियों और प्रथल समर्पणा एवं उनमें भाव प्रकाशन एक नए मुग का व्यवहार करते हैं। इस कला में यह किसी भी कला शैली की अंधानुकूलिति के सही जो सकती है। ताप यी, इन चित्रों में कुछ नी उपरिषेत हुआ है पहा ही उदान है।

फिर भी, ठाकुर शैली की इसी नवाचित द्वारा भारतीय चित्रों में प्रभोगवाद का प्रारंभ होता है।

इसी ओर प्रक्रिया कला आलोचक डॉ. रमेश कौरिया के प्रभाव में भी गमनेन्द्र-नाथ ठाकुर क्षमावाद या फनवाद का प्रयोग आया १६२३-१६१८ से ही करने लगे थे। बस्तुतः

ठाकुर शैली
के बाद

गणेशनाथ अनेक शैलियों में विवरण करते हैं। उनकी राखीहै, प्राकृतिक दृश्य (लैंड स्केप) अथवा लंग जिन ठाकुर शैली में ही रखे जा सकते हैं, हाँ, उनमें उनका अपना दृष्टिकोण या अस्तित्व मी स्पष्ट भलाकता है, उनके बीचन और स्वभाव में जो एक हास्यवाद, एक मौज या तरंग भी वह सभी इन चित्रों में स्पष्ट है। घनवादी चित्रों के अस्तित्व उनके चित्रों को प्रतिविष्ववाद (इम्प्रेशनिज्म) के अन्तर्गत ही रखा जा सकता है। इन चित्रों में काली फालताई (हल्के भूरे) रंगों में प्राकृतिक दृश्यों का ही नज़ारा भासित उपस्थित हुआ है, करन स्थानीय बातावरण मी प्रकट हुआ है। ऐसे चित्रों में नदी के दृश्य अथवा पर्वतों के दृश्य प्रमुख हैं। कभी कभी इनमें कुछ अस्पष्टता है, जैसे भीना परदा या पड़ा हो, अथवा बहुत ही हल्का अस्तात या इस्प या कुहरा लगा पाया हो। उनके कारण, इन चित्रों का सौंदर्य एवं या आकर्षण और बहु ही गपा है।

मगनेशनाथ की शब्दोंमें भी उनकी तरियत की मौज दृख्यती है—ग्राम: ऐसी शब्दी है विंचेप व्यक्तियों की है परं उनकी वित्तिता और नी अस्तित्व अतिरिक्त रूपके दिलालाई गई है, परायि शब्दाहृत कहीं से जाने न पाई है। ऐसी ही विलचन आकृतियों उनके कुछ असुनियों में भी दीखती है। उनहें देखकर वह तो जान पड़ता है कि ये ऐसे व्यक्ति हैं जिनके समान व्यक्तियों को इमने देखा है अथवा जिनसे हम परिचित हैं, पर वे कुछ ऐसे नमाज के हैं जो जन साधारण से मिल हैं। हम अगे देखेंगे कि भारतीय चित्रों में असाधारण व्यक्तियों या जीवों का किस प्रकार प्रापान्व होता है।

गणेशनाथ के लंग चित्रोंमें भी ऐसी ही आकृतियों उपस्थित होती है। इनमें जे आकृतियाँ विशेष रूप से दृश्य हैं जो लंग के आलम्बन या गाढ़ हैं। उनमें अस्तिरूपना के द्वारा विकृति है, जिससे वे हास्य और खुश्या दोनों के ही पाप ढो जाते हैं। संभवतः इसी कारण कभी कभी इनमें पारापिक अवसर भी जोड़े गए हैं।

इसी पृष्ठभूमि में मगनेशनाथ के घनवादी चित्र में आते हैं। शैली को हड़ि से सारे चित्र को विभिन्न व्यामातिक आकारों के, जिनमें फलखंड प्रमुख है, जटि कर उम्होंने एक नये प्रकार का ताना-बना (देवस्तर) तैयार किया है। ये लंबे रहुया मिल चित्र रंगोंके द्वारा प्रकट हुए। फलतः कुछ रंगीन दृश्यों में इस शैली की उपस्थिता और जड़ गई जैसे उनका 'स्वन-स्तोक' नामक चित्र। इस चित्र में चुक्कुहाते हुए रंग स्वर्ण की रंगीनी और अकारीग को प्रकट करते हैं तो दूसरी ओर उनकी असंबहुता चित्र को विषय के और भी अनुरूप बना देती है। परंतु उनके अधिकारों परे जित काले रंगों की लाला उमाले की छाँस चित्रीनी से प्रलूब हुए हैं जिसके लिए अपेक्षा पारिभाषिक शब्द 'वैतिष्य लाइट' है। कहीं

कहो तो उसके द्वारा तीव्र, नकारौप कर सकने वाला प्रकाश भी दिखलाया गया, जिससे किसी किसी अलौकिक तथा जैसी आङ्गूष्ठि की विशेषताएँ और भी उमर आती हैं (नीचे देखिए)।

हम गगनोद्धरनाम के घनबाई किंचो को कहे बातों में बाट सकते हैं जिनमें आवश्यकतानुसार अन संदों का प्रयोग कम या अधिक हुआ हो इस बीम में मुख्यतः दो इन बहुत अधिक संख्या में आए हैं, १—विराट् दुर्घट । यह जिन तुरपाहुति के रूपों में आता है कहीं कभी इसकी अर्थों में वर्ण नंद आङ्गूष्ठि होते हैं और इच्छा ललाट दीमिमान दीखता है। ये आङ्गूष्ठियाँ स्वतः विचार से लेकर अचर्चत रहस्यवादी एवं सख्त अपना अस्त रूप में प्रकट होती हैं।

२—एक ऐसा दृश्य आता है जिसमें एक नवयुक्ती की आगाहुति अपने संपूर्ण लालाला एवं नारी तुलन लक्ष्य के साथ, एक युले द्वार के भागने सही है, द्वार में से प्रकाश बाहर भाँकिर एवं नारी आङ्गूष्ठि का स्वागत कर रहा है। संभवतः यह 'अप् प्रवेश' का दृश्य है।

इसी के तानिक बाबू, विश्वविश्वेष्टनाम ठाकुर ने विचार के रूप में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की। प्राप्तः साठ बर्च की अवश्या में उन्होंने अपनी विचाराई को पाहुलियाँ हुए होए, काटाकूटी करने के बीच, यह पापा कि उसमें अनेक प्रकार की आङ्गूष्ठियाँ छिपी हों। वे जैसे प्रकट होने के लिए आसुर हो डटीं; वह 'झौरी' जैसे फैली रेखाओं के ऊन लग्नहूँ को मिलाने भर की देर थी। वहीं से उनके विचों का प्रारंभ होता है। जिस तीव्र लाल और हाली स्थाहियों से स्वर्तन आङ्गूष्ठियाँ भी बनाने लगतीं। ऐसे विचों की संख्या तीव्र बहुत अधिक है परंतु उनमें से कई दबंग ऐसे भी हैं जो विश्वविश्वात हो जुके हैं। ये आङ्गूष्ठियाँ कहीं गंभीर केदना से प्रगति हैं, अथवा पीड़ा से कराहती और ऐडी हुई भी हैं। कहीं कहीं पर स्तुत्यों के स्वभाव का, जैसे पापाचा के पापाचाल आङ्गूष्ठि का उम्मेद विच्छिन्न हुआ है। आचार्य नंदलाल बसु ने एक बार अपने एक निर्बंध में यह लिख करने की चेष्टा की कि स्वीकृताम के चित्रों में, प्रत्येक आङ्गूष्ठि की मौलिक विशेषता वर्तमान रहती है अर्थात् ये रेखाएँ अन्वय दीखती हैं जिनके विना किसी आङ्गूष्ठि की आवाया या स्वभाव प्रकट नहीं हो सकता।

स्तुतः ये आङ्गूष्ठियाँ अपने स्वरूप में आङ्गूष्ठि शीलीगत आङ्गूष्ठियों की असंबद्धता या अपलगता (विस्तारण) वाले विद्यान्त के कारण विभिन्न के तुलनात्मक विचों के निकट भी। कलतः इनका पूर्ण और विवेग दोनों में ही बहुत बड़ा स्वागत हुआ।

शीली की हवि से उनका भारत या प्रियांग की किसी शीली से सीधा सम्बन्ध नहीं।

अब हम द्वितीय महायुद्ध के ठीक पहले बाले काल में जा जाते हैं। इसी समय अप्पे-
मूरोगीन-भारतीय महिला, अमृता शेरगिल का योड़े समा बाला कार्बन काल आता है। इन्हें
पैरिस में रह कर पाश्चात्य चिकित्सा की पश्चात्यात्मक प्रगतियों का अध्यात्म किया था।
वहाँ इन्हें फ्रेन प्रतिविवादी चिकित्सारों की कृतियों को नलीमालि देखने का गर्पूर अक्षर
मिला था एवं उन्होंने कुमारों शेरगिल के किराओर मन पर पूरा प्रभाव डाला था। इन चिक-
कारों में बाल गोर्गे नामक एक प्रसिद्ध चिकित्सार था। उसकी कलाकृतियों पर ताहिरी द्वापर संरेखी
चित्रों का महलपूर्ण प्रभाव था। वह वहाँ बहुत तमव तक रहा था और वहाँ के हरे परे
प्रदेश, वहाँ के स्वत्व स्त्री-सौदर्य से बह चहु। प्रभावित हुआ था एवं उसने इसके अनेकानेक
चित्र बनाए थे। इनके उस प्रकार बाले चित्रों में बहुत महलपूर्ण स्थान है।

अमृता शेरगिल ने भारत लौटकर इसी शैली में भारतीय विषयों के चित्र बनाए
थीं वे इन चित्रों के कारण आज भी प्रसिद्ध हैं। यस: साहिती के लोग, वहाँ के पें
पाली एवं ऊपर कटिबन्ध के दूर आत्म आदि तथा भारतीय बाताभरण में बहुत सामन हैं
अतः अमृता शेरगिल की कला शैली भारतीय विषयों में तथा नहै। परन्तु इतने से ही वह
कहाँ तक भारतीय है, यह विचारशील है। उसकी आकृतियाँ कीर वर्तियान तो अचरण ही
पैरिस की कला की भारत में आरोपित एक शास्त्र जान पड़ती है।

इसी के कुछ बाद द्वितीय महायुद्ध किया गया। इसके प्रतिवात से भनुण के सन
की उल्लंघन साहित्य, संरीत और कला लेव में बदक होने लगी। आज का भनुण वहु दहु़े कल
कारखानों में जानन प्रियता है और उसकी चरमराहट में उल्लंघन सारी स्वतन्त्र शक्ति वैष्ण बाती
है। अतः भनुण की कलाना शक्ति की भी दिशा कुछ बदल जाती है तो आइनर्न नहीं।
आज हम कला में कुछ ठोक, खोर, पीड़ा से ऐठा हुआ साथ ही यथार्थ से भिन्न देखना चाहते
हैं। आज की कला में मानव के मरियूद की गहराईयों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन होना
चाहिए। कुछ ऐसा होना चाहिए, जिसकी वही ही गहरी अनुभूति हो, जो मन के भीतर हलचल
तो पैदा कर दे, परन्तु उसका ठीक ठीक अर्थ न लगना जा सके, जो सारी ज्ञानाधी के
बाद भी कुछ अस्पष्ट या बना रहे।

इन अत्यन्ताधीनों के व्यक्तीकरण में असंभद्रता (डिस्ट्रार्फन) के साथ साथ सरली-
करण (अचर्ट्स्ट्रेचन) की भी प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति इतनी अधिक विकसित ही चुक्की है कि
चित्रगत आकृतियों पिसते पिसते ज्ञानिति आकारे अथवा रंगों के ज्ञानिति दुक्की के हृषि
मात्र में परिवर्त दो गई है। कहाँ कहाँ आकृतियों के अथवा रंगों की बड़ा या बड़ा कर दिललाया
जाता है। कभी कभी उनका स्थान परिवर्तन किया जा सकता है अथवा एकान्त बार-

दिल्लीगढ़ का सकता है। इनके द्वारा चित्र ने भी उत्पन्न करने की चेष्टा भी जाती है। इस प्रकार इन चित्रों में जो विनियता उत्पन्न होती है, उसका नी आकर्षण देखा जाता है।

फलतः कुछ आधुनिक चित्र शैलियों में वैचित्रवाद की भलक मिलती है।

ऐसे हाइकोण में कला परम्पराओं का कोई स्थान नहीं रह जाता। चलिक कला बहुत कुछ व्यक्तिगत चीज़ हो जाती है, फलतः कला शैलियों में अनशिमत्युपगालियों दिल्लीर्हे पड़ती है।

कला शैलियों का जो प्रयाह चल रहा है उसका नीतीन विचार भारत से बहुत लाभ है, परन्तु दोनों परम्परा समानान्तर चल रहे हैं। चित्र शैलियों में आकृतियों में, जो असम्प्रदाता (डिस्टार्टेन) चल रही थी, उसका चरम पिकाच इन्हीं व्यक्तीकरणों में मिलता है। मानव के मन की उलझनों के कारण यह असंबद्धता बढ़ती जाती है और चित्र के इस अधिक से अधिक बटिल होते जाते हैं, यथापि उनमें काङुतियाँ अधिक से अधिक घटम (अकर्टेक्ट) होती जाती हैं।

भारत में ये चल प्रकृतियाँ पूर्ण रूप से चल रही हैं। इनमें बहुत अधिक विकसित चित्रण, बैट्रे, स्पावच्च नामांग, बाबू कीट, हेन्वर, अलीय गुबराल, दिनकर कौशिक, अंगिरा-साहु, बुर्जन आदि आदि को कलाकृतियों में दृश्य हैं। इनमें से कुछ ने अपने देशीय सम्बोधन का भी प्रयोग किया है।

इस प्रकार आधुनिक चित्र-कला भारत में प्रगति के पथ पर है।

वाचिक

फलक १२ (दुर्घट, पृ० १०८) के स्थान पर निम्नलिखित परिण—

फलक १२ का कामोद राग का विवरण है। इस आलंकारिक है। रंगों ने तीव्र नोले का और गहरे काले का आकर्षक विवरण है।

फलक १२ ख आचारी रागिनी का विवरण है। नायिका को मुख झुटा में स्लो-नापन है। नारो और अनुत ही गहरी और आकर्षक हरियाली है। विभिन्न राशपत्रियों के बीचना विवरण द्वारा बनाई और भी प्रस्फुटित हुई है। दृश्य का मूल वृंश, अर्पीत, आत्मावरो रागिनी गहरी लाल पुष्पिका के सामने है, जिसे एक मोटी सफेद रेखा से पेट दिया गया है। यहीं रेखा उपर्युक्त कामोद राग एवं निम्नलिखित प्रदीपकी रागिनी में आकाश को चरकल से अलग करती है।

फलक १२ ग प्रदीपकी रागिनी में रागिनी वी ललित्पृथ्वी भावभूमिका देखए। भक्त के द्वारा दृश्य दी नारो में नड़े बौशल से बाँटा गया है।

फलक २३ (दुर्घट, पृ० १०८) के स्थान पर फलक २१ परिण-

फलक १३ (दुर्घट, पृ० १०८) को प्रेस ने भूल से फलक २३ का प्राप्त दिया है, पाठक हृष्णवा तुशार ले।

शब्दानुक्रमणी

* = चित्र

अंगकर ६	१६
अंगसूत ४३	४८
अंदे जी कुही १०२	
अझोल २४	
अकबर	
—नामा ७२, ७८	
—दीली ६८ आदि, १०३	
अजंता १० आदि, २३ आदि ३६, ४०,	
४२, ५०, ६१, १०३, ११३	
अनयार सुहेली ० ० ० ० ० ०	
अनूप लतुर (चिं०) ६३	
अपभ्रंश दीली ४३ आदि, ५८-६३, ६६	
७५, ८२-८३, ८५, ९३, १७-१८	
अफराँ ६२	
अनुस्तम्भ देव मवाजा अनुस्तम्भ (चिं०)	
अनुस्तम्भ नादिचञ्चमा (चिं०) ७६, ८६-८७	
अभिधाय १७, ४१	
अभिलिपितार्थ विलामणि २७, ३५, ४१	
अमरशतह ० ६८	
अमृतसर १०८	

(चिं०) = चित्रकार

अमृता शेखिल (चिं०) ११८	
अथार दानिया ७१	
अरब ३४	
अलवर पुस्तकालय १०६	
अली आदिल गाह ८२	
अलीदनाथ ठाकुर, अलाम ११२ आदि	
अष्टपामक १०४	
अस्तरबटी ३६, १०२	
अहमदनगर ८२, ६६	
अहमदबाद ४३-४४, ४६	
अहियासी, अग्नाथ (चिं०) ११४	
आ	
आईन अकबरी ६६ आदि	
आकृ रिता (चिं०) ८८	
आचंचिशप लोह ००	
आसंद जी कलाश बो संपह ४६	
आदम कर १६	
आबरंग ६१	
आमेर ६६	
आयु ४३	

ओ

इंडिया आफिस, लंदन ६७, १०१

इनायत खाँ ८०

इराक ६५

ओप ६१-६२

ओपनियुक्ति ४ ८८

ओमला ६६

ए

ईगुर ६८

ईयन ३४, ६४, ६६

ईरानी ५८, ६४, ६६, ६८, ७५-७६, ८१, ८८

ईश्वरीप्रसाद, उत्ताद (चिं०) १११

ईसाई चित्र १०१

ई

उचाला ३६, ६८, ११०
उदीसा ४५

उत्तररामचरित ४ ३१

उत्तराध्ययनसूत्र ४ ४१

उमरखल्याम ४ ११२

उरेहना २८

उ

कभीसंवाद ४ ६६

क

शत्रु चित्र २८-२९, ६०

क्ष

एशिया

क

—लघु ५, ३५

—मण ६६ आदि

कपनी शैली १२०

कण्ठसुन्दरी ३७

कथारन मागर ० ४१, ४८

कथा सरितामर ३७-३८

कलसूत्र ० ४१, ४३ आदि, ५६

कलम ३०, ३६, ४१-४२, ७०, १००, १०८

कला

आदिम—२

बैन—४२

बोद—४२

ब्राह्मण—४२

कलीला दमना (पंचतंत्र) ० ७१

कहमीर ५३, ६०-६१, ७४-७५, ८४

—रीली४७, ५० आदि, ६३, ७२, ७५,

१०५-१०६

कागङ्गा १०५ आदि

कामदूल ६, २२

कामदण्ड ४४

काल

कुपाल—६, ५२

गुप्त—११ आदि, ४२

मुगल—६८ आदि

माहजड़—१०० आदि

शुग—६, ५२

- कालक कथा ० ५१
 काला २३, ३०
 किरणगढ़ १०४
 कुलतृ १०६
 कृत्ति (चेत्र) ३३
 लभूतिम ११५ आदि
 कृज्ञालीला ० ८८-९८, १०३, १०८
 कृष्णावतार ० ७५
 केशवदास, आचार्य ६६, १०३, १०६-१०७
 केष्ठा ४४, १०५-१०६
 केशो (चिं०) ००
 कोटा १०४
 कोनिया २३
 कोरिया २३, ५४
 कृ
 केंद्रहर १७
 कंभात ४८
 कृत ६२
 —कृष्ण ६२
 क्षमित्र रंग ५, ३१
 क्ष्याजा अनुस्तम्भ रारीकलम ५०,
 ५५-५६, ८२
 क्षानकला, अनुरुद्धीम ७३-७८, १०६
 क्षुद्राक्षरा लौं प्राच्य मुस्लिमलय, पट्टा, ७७
 क्षुलाई ३६, ४२, ४३, ७१, ६३
 क्षेमकरन (चिं०) ००
 कृ
 कंभार (गौली) ११
 क्षमेन्द्रनाथ ठाकुर (चिं०) ११३ आदि
- गढ़ माझ ४४, ४६, ५३-५८, ६७
 गढ़वाल १०७
 गडकरी ८१, ६१
 'गम' ०
 ग्वालियर ४४-४६
 गीतगोलिंद ४४, ८४-८५, ९६, १०५
 गुजरात ४४ आदि, ५४, ६०-६१, ८५,
 ९६, ९८
 —गौली ४०, ४४, ५०
 गुलशन संग्रहालय, इरान ६३
 गुलाली ६४
 गुलेर १०६
 गेह २-३, ६३
 गोपद्वज ८८
 गोपीचंद (चिं०) १११
 गोपूकिका १७, ७१
 गोलकुला ८२, ९१
 गोवर्जन (चिं०) ६३
 —भारत ० १०४
- न
- नंगेजनमा ० ७३, १०६
 नाहर मरी (चिं०) ६३, १०२
 नमहा १
 नरजा १०६
 नरम
 एक—२६, ५०, ६०, ७४, ८१, ८३
 आदि, १०४
 नेह—२६, ८२, १०६-११०
 नीन—२६

पोने दो—२६, ८३	जावं कोट (चिं०) ११६
सवा—२६, ३३, ४० आदि, ४५, १०६	जाताक २०
नार्दी ६३	उमाग—८८
नाँपानेर ४८	गब—२०
चिं	नंपेन—१६
—आधार (मुरला, अलपम) ६, ३८	कुदंत—१०, २०
—फट ८, ४०, ४१, ५२-५३, ७५-७६,	महारंग—२१
८३, ८५, १०४	वेस्टंतर—२०
—फलक ८	सिवि—११
—मूत्र २३-३०	विनकाचो ८६
चिंद्रु तामी * ८८	'बुदाई' ३० भीर सेपद बाली
चीन ३४, ५१, ६६-६७	"कैन" रीली ४० आदि
चेस्टर बेडी संघर्ष ७८	बोलीमारा गुप्ता ६
चेहरे १०३-१०४, १०६	बोधपुर ६६, १०४
चेहरा १०४, १०७	बोनपुर ४४-४५, ४६, ५४, ५६
चौर पंजाशिका * ६४	भ
भ	भलक ५२, १०६
बंगाल ६४	भलम १७
जंगली उरु (जापमेटिक ड्राइग) ६०	भोंगा ओढाना ६२
जग्मन (चिं०) ७०	डीपना (ठिकाई) ८१, ९१
बहुरनामा * ७१	गर्वी—८३
जमीन ३०, ५६	ठ
'जमू' रीली १०४	ठाकुर शैली ११३ आदि
जग्मुक १०४	ठ
—पोथीकाना ७०	हिस्तार्यन ११५ आदि
जग्मति ह १०५	हिन्दूगढ़ आदृ इस्लिंहूर ४०
जग्मति (चिं०) ३० दसष्टन	डील १६, ६८, ८६, ११०
जहाँगीर ८६ आदि	
—गामा ८२, ८३	
—रीली ४२-४३, ८६	

- त
- तकमलकान ३२-३३
 - तर्जुन ६४, ७०
 - तरंगवती ३७
 - तरह १५, ६८
 - तवारीख अलफी ७२
 - तवारीख खान्दान-ए-तैमूरिया * ७२, ७६
 - ताजोर २५, १०४, ११०
 - तारा (चित्र) ७०, ७८
 - तारानाथ ३२-४०, ४६, ५०-५१, ७५
 - तारीक हुसेन शाही * ८२
 - तालाक ६, ३८, ४०
 - तिज्जत ६, ५०-५२, १०६
 - लूटा—७५
 - चित्रप्रियलाका पुस्तकरिय * ३७, ४१, ४८
 - तैमूर ८६-९०
- थ
- थानका ५२
 - थेर-येरी गाया ६
- द
- दंडन उद्घासिक ३३, ५०
 - दफ्टरी शैली ६७, ८२, ९६, १०६-१०८
 - दतिया ६६, १०४
 - दमलम २१, ४७
 - दलललाल (चित्र) १११
 - दशकु मास्चरित ३२
 - दशवेष्टिलिक लघुकृति ४८
 - दशावतार * ५१
 - दसवत (उम्मत) (चित्र) १००, १०५
- दिनकर कौशिक (चित्र) ११०
 - दिल्ली ११०
 - दुर्गासप्तशती * ४४, ४६, ४०७
 - दृष्टिक्रम (फर्मप्रक्रिय) ६
 - देल्लीजा ४६
 - देव ३०४
 - देवतामी * १११
 - देवी भवियम और शिशु दूला * ६५
- प
- भूलिचित्र ६, ३६
- न
- नेदलाल योस (चित्र) ११३
 - नमकाश ६२
 - पन ६६
- नमधा (स्केल) ३२
 - नरसिंहजी योलचाले आनन्दिराम कल्पनाल ४६
 - नलदमन (नलदमयती) * ७१-७२
 - नन्नाली (लिपि) ६४
 - नामर शैली ४१
 - नामदारा ८५, १०४
 - नामिका मेद * ६२-६६, १०३, १०५
 - नाय (भठ) ३४
 - नालंग ३६, ५२
 - नारंगी १०६
 - नारन १०६
 - निशन (जापान) २३, ३४
 - नियामनसा * ५० जारी, ६४
 - निशीथन्दुर्गी * ७१, ८८

निमारदीन (निं०)	६५	पीला (दे० प्योही मी)	२१, ३०, ४१,
नील (रंग)	६४		६०, १०६
नीला ३०, ४१		पुष्टा	५३
नुजम उल उलूम *	८२	पूर्णा	१०४, ११०
नूरबहार *	—	पूर्णी बैली	३८
नूरपुर १०६		पृष्ठिका	३०, ८१, ८६, १०५
नेपाल ६, ३८, ४४, ५१, ५३, १०४, ११०		पैसिल	३६
राजकीय पुस्तकालय—४०		पेरिस का राष्ट्रीय पुस्तकालय	६०
नेमिनाथ चरित्र *	४१, ४८	पोलोबाबूब	५१, ५५
प			
पंचतीर्थीपट *	४८	पोही	४१, ६३
पगान (बहादेश)	५४	प्रतिचिन्हवाद (हयोशानिमम)	११६ आदि
पटरा	६	प्रमाण ६, २८, ३६, ५२	
पटना शैली १०		प्रिय भ्रव बेल्स संग्रहालय	४६, ८८, १५
पड़ी ६२		क	
पटोलाहू ६६		कंदूकिसान	३४
पश्चिमी शैली ३८-४०, ४४-४५, ५०		कलहनंद (निं०)	१०
परदाढ़ा ३०, १०६		करिता	७२
एकवाल—१०२		कर्नलकुलमाक (निं०)	७०
परमानन्द इस ७५		कालसई	३६
परली झाँख २६, ४० आदि ५१, ५६-६०, ८३		कारसी लिपि	६४
पहल ८८		किंतकरी	१०२
पहाड़ी शैली ५१, ६१, १०५ आदि		किरणी प्रभाव	११०
प्रशापारमिता *	१६ आदि	किरका	१२०
पाटन ४८		कोर आर्ट गैलरी	४८
पादताडितकम् ४६		व	
पादशाहनामा *	१०१	बंगाल	३८, ४५, ५६
पाल शैली ३६ आदि, ४७, ५४-५२, ७५, १०४		बन्दनवार	१७
पिल्लवाई ६		बगदाद	६६
		बहा	६१

बहौदा ४८-४९	बुडेलखण्ड शैली ६६-६७, १०४
—संभालप ४०, ७६	चूर्णी ६६, १०४
बदरंग १०२	कृत्य ६२
बदापूर्नी ७३	वंदे (चिठि) ११६
बनारस ११०	वेळ ६२
बर्लिन पुस्तकालय ६३	लमेयदार—१७
बरद मुतान ७ (द१० गो मुतिका भी)	पैगानी ६६
बरमा ५३-५४	बोधिसत्त्व • १८-१९, ३३
बसावन (चिठि) ७०	बोहटन संभालप ४०, ४३, ४६, ५६, ८७-८८
बसीहली शैली १०२, १०४ आदि	बोस्टनी ६७
बाहुद्वात बाचरी • द१० बाहुद नामा ७३	बोस, नन्दलाल (चिठि) १५
बाज २४, ४२	
बाइलियन पुस्तकालय ७८, ८७, १००	म
बादामी २४	मदभूति ३०
बाघरनामा • १०६	माघवत • ८४-८५, १५, १०५, १०७
बाभियान ३३	मारत
बागमारा • १०३	आधि—६४, ६६
बालग्राम • ४१	आपर—१२-१३, ४५, ५२
बालगोपालतुति • ५५, ५६, ५८, ८८	कृष्ण—२२, ३२, ४६, ५२
बालबंद (चिठि) ८३	—कलाभृतन ४८, ७६, ७८, ८३-८४, १०१
चिन्हितर (चिठि) ८३	मारतीय राष्ट्रीय संभालप ६८
बिटिया संभालप ७७-७८, १०४	मारतीय मृतिकला ४४
विश्वनाथ (चिठि) ८७-८८, ६३	माव ३
चिह्नाद (चिठि) ६४, ६६, ७०	मात १०
चिह्नारी ६६, १०३-१०४, १०७	मिति १२, ८, २५
बीमानेर ६६	—विष ८-१८
बीज चित्र ४३	
बीजापुर ८२, ८६	मूल्याय ८४
बीमरवत • ७१	मोक्षद (चिठि) १०४

- म ३६
 मंगोल-प्रभाव ५६
 मंसुर २०
 मंटी १०६
 मआसिकल उमा ७२
 मब्मूदार संघर ४८
 मतिराम १०४, १०७
 मध्य एशिया ६७
 मध्यकाल २२, ५४
 उत्तर—३५, ५१, ५८
 पूर्व—२३, २७, ३५, ३८
 मध्यकालीन (कला)
 उत्तर—४७, १०४
 पूर्व—३२, ३८, ५१
 मध्यदेशीय उपर्युक्ति ५०
 मनोहर (चिं०) ६३, ६५
 महापुराण ० ८१
 महाभारत (ह०) ७२, १०४, १०६
 महानवर ३६
 महाराष्ट्र १०४
 महाभारत १०५ आदि
 महेश (चिं०) ७०
 माघवदास (चिं०) ६८
 मात्रो (चिं०) ७०
 माहौ दे० गढ़माहौ
 मात्रक (चिं०) १०५
 मानसार २७
 मानी (चिं०) २३
 मानकुन्तल ५५
 मानसोल्लास दे० अग्निलिपितार्थनिलामणि ३६
- मारवाड ३६, ४४, ४६
 मालवा ४४, ५४, ६७ आदि
 मिस्कीन (चिं०) ७०
 मीन नेत्र—मीनाच्छ. ७४, ८५, ९६, १०५
 मीरजली ६४, १०६
 मीर सैफद खली 'बुदाई' (चिं०) ६४, ७०, ७२
 मीरान ३३
 मुकुल (चिं०) ७०
 मुगल-काल ६
 —रौली ८, ५१, ५३, ६१, ६२
 आदि, ६६ आदि, ११५
 —खी चित्र ८८
 मुदा १६, २५, ३३, ७४, ७६
 हस्त—८०, १००
 मुनि दयाविजय संघर ४८
 मुख्यका ६३
 मुर्ही १७
 मुर्यिदाबाद ११०
 मुहम्मद नादिर समरकंदी (चिं०) ३६, १०२
 मुगावती ० ८४
 मेवाड ५६, ६१, ६२, ६३, १०३
 —रौली ६५ आदि
 (स्व०) मेहता संघर ८८-८९
 मैसूर १०४
 मोती महानवर ६२
 मोलायाम (चिं०) १०६ आदि
 मोहरा १७
 व
 वचन सुन्दरी ० १०५
 वशोधर ६

मामिनी राय (चित्र) ११४ आदि

रेखा १७, ६८, ८०

यूरोपीय शैली ८८

—चित्र ६८

ल

र

रघुनामा ० ७१, ७६-७७

लालनक ११०

रत्नराज्य ० ४४

(शशीह) लग्नमा ७१

रसचित्र २६-३०

लालवरी ८१, ८३

रवीन्द्रनाथ ठाकुर (चित्र) ११३ आदि

लाल (रंग) ३०, ४१, ६०, १०४

रसराज ० ३०५

लाल (चित्र) ७२

रसकलिया ० ८६

लालबन्द (चित्र) १११

रामचित्र ० १६, ५८

लालजी गहल (चित्र) १११

रामभाला ० ५८, ६०-६१, ८१, १४, १८, १०३,
१०५, १०६

लाहोर १०८, ११०

रामभुक हेमराज पुस्तकालय ४०

—संग्रहालय ७४

रामगृह शैली ६१-६२

लिफ्टी ६१

रामधारी शैली ४१, ५१, ५८ आदि,
०५, ८२ आदि, १०३ आदि

लिम्बा, लिम्बाई २६, ४२, ६८, ६०, ८६,
१०२, १०५, १०६

प्रारम्भिक—६६

लुक (लेफ्ट) ५४

राम (चित्र) ३०

लूह संग्रहालय ७०

रामपुर पुस्तकालय ०८

लेपान्ती ८२

रामप्रसाद, उस्ताद (चित्र) ०५, १०६, १११

लीर चंदा ० ८४ आदि

रामराज २, ६३

व

रामायण ० ६१-७२, ७४-७६, ८०, १०४, १०५

वज्र ६०

राधनूर ५०

वड्डलेप (सरेत) ३६

रायल एग्जियाटिक सोसाइटी १५, ५०, ५६, ८८

व्यवस्थान (पैटन) ६५

रक्तुदीन (चित्र) ६६

वर्णविवान ६६

रायमेद ८

वर्णिका २१, ६० १०४, १०६

रस ७७

—संग ८

वर्तका ३६

वर्त द्वा, ६६

९

वस्तुपिलास + ४३ आदि, ८१

वस्त्री ६०, ८८, ९८

—मात्र ६२

वस्त्र (भीम) २२

विवर प्राप्ताद संग्रह १०१

विवरणगत्र गामाज ४९ आदि, ८२

विचित्र (चिं) ६३

विष्णुभर्मोन्तर पुराण २७

वेस्त्र (एलोर) २५ आदि, ३८, ४१-४२

वेत्त्र विकल्प १०८-११०

श

शानिचार चाढ़ा प्राप्ताद १०४

शब्दोऽ ८, ३८, ६०, ७१, ७६, ८१ आदि, १६,
१०२ आदि, १०६-१०७, ११०-१११, ११६

शातिनाथ मंदिर ८८

शवायक चाढ़ा (चिं) ११८

शाह अब्दुल ० ८० आदि

शाहजहाँ कालीन ४३, ६३ आदि

शाहनामा ० ७३

शिकारगाह ६२

शिल्परत्न २०, ८६

शीराज ३०

शेख फ़ूज ० ८८

शेलनदनाथ दे (चिं) ११३

आवक प्रतिक्रमण चूर्णी ० ४८

धोनिवासत्रु (चिं) ११६

त

तंकेत्र चित्र ६

संग्रहशील सूत्र ० ४५

संपर्कीनापाढ़ा भंडार कल्पद्रुष ० ४८

संपूर्जन = संयोजन (कम्पोजिशन) १६, ३३,
६८, ७४, १५, १७, ११

संसार नंद १०७ आदि

संस्कृती टिपाई २६, ३७-

संतारा ११०

संतीश गुलगाल (निं) ११६

संकेत, संकेत ३०, ६३

संमरणगत्र दूरधार २७

संसद ६१-६२

संसेत १०२, १०० वज्रलेप भी

सौभारी ६

सौंडेसरा संग्रह ४६

सौंवला (चिं) ७०

सातथ कौसित्वन संग्रहालय ३३-३४, ३०८

सात्रश्य ८, ३०

साया १६, ३६, ६८, १०३, १०८

सायायम — १६, १०८

—सुरमा ६२

साताभाई नवाब संग्रह ४६ आदि

साहचर्दीन (चिं) ६५

सिद्धर ३६, ८०

सिलल ५१

सिक्षांशु (चिं) ११२

सिंगिरिय २१

सिंसज्जवासल २५, ४२

सिरमीर १०६

सीकरी ८५

सीता चौमा गुमा ६

सुरकारी ६८	हरा २१
मुकेत १०६	—दाढ़ा ६३
मुरम्बन्दीकड़ा ३७	हरिवंश ० ०६
मूला रंग १,६	हसुरात्र ५०
मूर्खेश ० ८५	हाथी दैत ३,८
मेरा (ग्राकृतिक हश) १०१	हारीति ६५
सोनपिलवा १०५	हास * ११३
सोना ३६,४३,१०२	हिमुल (२० इंचुर)
स्याम ५३-५४	हिंगत शैली ६४,६६,७२,७४-७५
स्याम कलम १०२	हिरीबी २,४३,१८
स्याही ३६,५२,१०५,१०६,१०७,१०८,१०९	हुमार्यू ६८,७२-७३
खी चित्र ० ८८,१०९	हेटराजाद १३०
ह	
हम्जा, किसा अमीर * ८१,७२ आदि, ८१	—राज्य संभालप ७६
हरञ्जस (चिठ) ००	होनहार (चिठ) ८३,१०२
	होरिउडी मठ ३४



फलक—१

दिव्य गामक

मुख्य-काल, अजता; १७वीं शता



फलक—२

देवसत्तर जारक

मुख्य-काल, अजता; १७वीं शता



फलक—३

माता-पुत्र
गुरु-काल, अजता; १७वीं मंका



फलक—४ क

आरोभक मध्यकाल, अजता

प्रेम-निमसा



फलक—४ ख

आरोभक मध्यकाल; वादामी (बदई प्रात)

किमी की बात

निमुक्त महेश्वर

द्वारा भासी : बौद्धी दुर्गाकल्प

फलक—५८



त्रिपितृष्ण

आरम्भिक महायान : होरिचनी भट, बालान

फलक—५९





फलक—६ क

दो मूनियों का वातान्त्रिक
१४-१५वीं शती ; अपन्न द शैली
भारत-कला-मंचन संग्रह



फलक—६ च

तपोवन के प्रात में आकेट
१४-१५वीं शती ; अपन्न द शैली
भारत-कला-मंचन संग्रह



फलक—६ ग प्रेम की ढार
१५वीं शती ; अपन्न द शैली
भारत-कला-मंचन संग्रह



फलक—३

दीपक राम

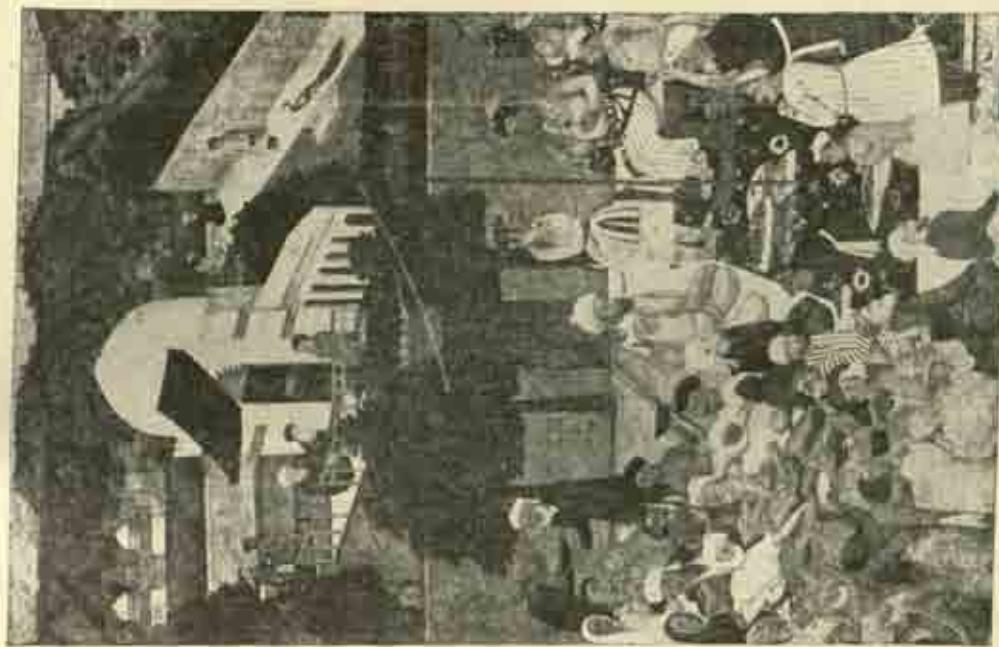
१६वीं शती का आरम्भ : राजस्थानी सैली वृद्धि उत्सवी

भारत-कला-भवन, मुम्रह



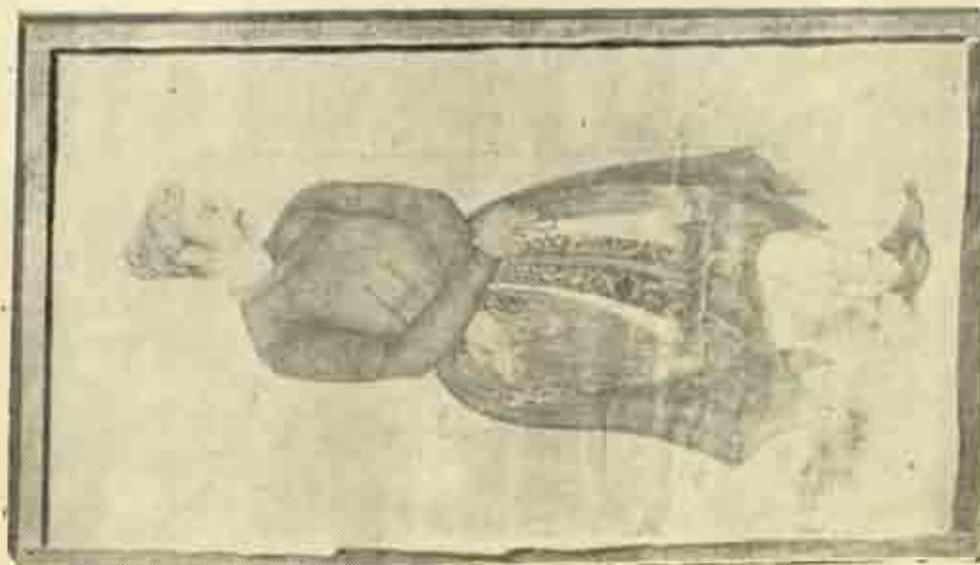
फलक—८

अनवर-महेशी का एक चित्रित पृष्ठ
ईश्वी शती का अंत; अकबर-कालीन मुगल शैली
भारत-कला-भवन संग्रह



फलक—१०

ब्रह्मपुर में भगवान्
खुड़ी दाती; राहोनीर-कालीन सुग्राव शोली—प्रिय आव चेत्सा संदर्भोल्प, मध्ये



फलक—१

१५वी दाती: अकवर-अलीन
भारत-कला-प्रदर्शन मंडप



फलक—११

४७वीं शती ; नहारीर-कालीन मुगल शैली

विट्ठल संप्रदाय, लूदन

शिकारी चाज पड़ी

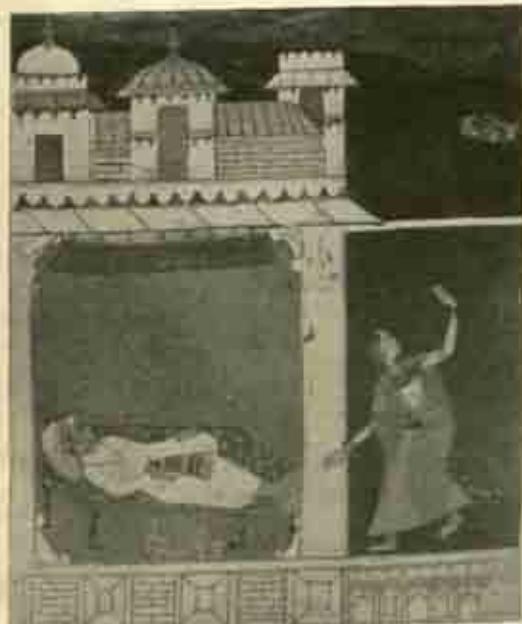


फलक—१२ क



फलक—१२ ल

पनाथो रामिनी



फलक—१२ ग

प्रदीप की रामिनी

फलक १२ क, ल, ग—प्रायः १५८० ई०
मालवी राजस्थानी शैली, भारत-कला-भवन संग्रह



फलक—१४

१०वीं शती; इकनी शैली; भारत-कला-भवन संग्रह

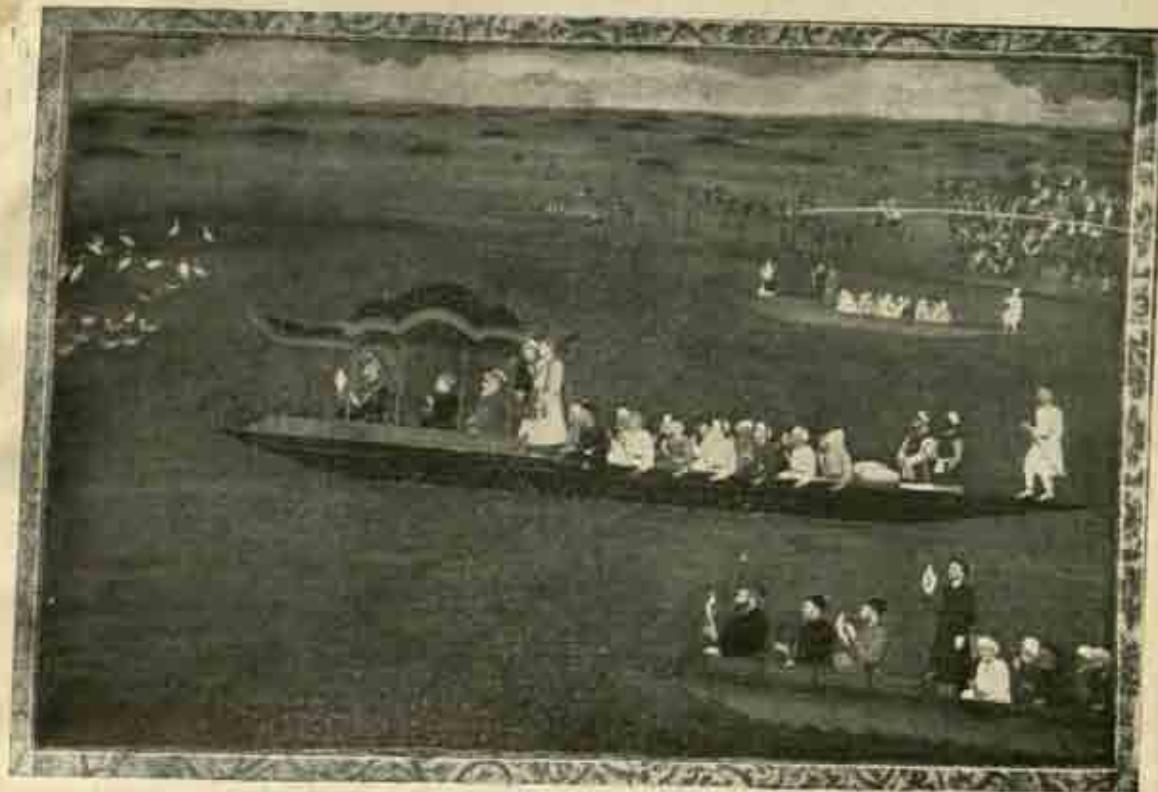
प्राची शरी : वस्त्र विकास का अभ्यास

फलक—८५

प्राची शरी

प्राची शरी, प्राची शरी देखि
दूरे निरामय गति





फलक—१६

१३वीं शती का मध्य; उत्तर शाहजहाँ-कालीन मुगल शैली
थी सीताराम साह संयह, बनारस

शाहजहाँ नाम पर



फलक—१७ देवी मरियम और शिव द्वारा
१३-१४वीं शती; मुगल शैली
भास्ती-कला-भवन संयह

१८वीं
शताब्दी
पिछली
मुगल
दौली,
मारत-
काला-
भवन
मध्यह

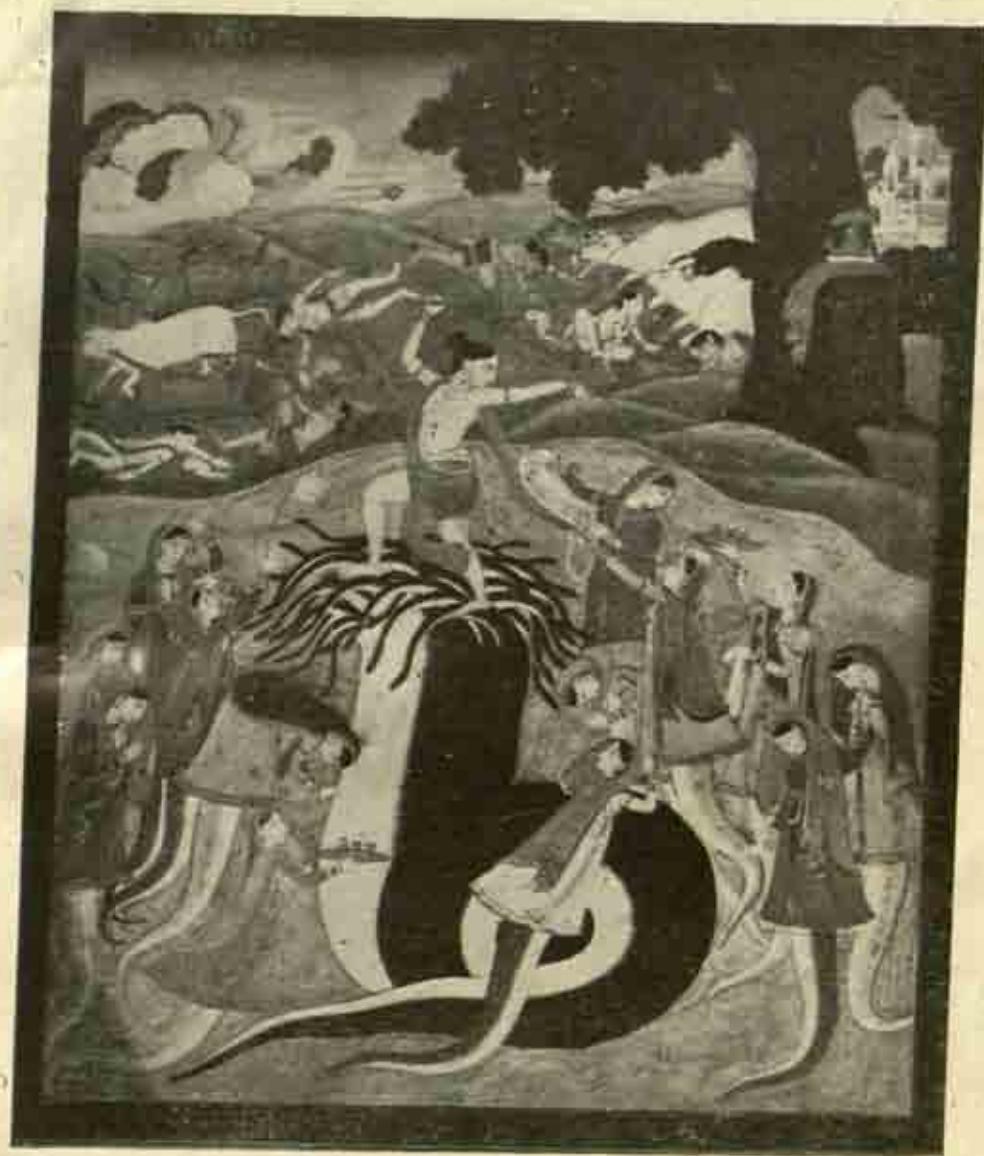


फलक—१८

मारत-समाज



१८वीं शताब्दी;
राजस्वामी दौली
(दूर्दी)
मारत-काला-भवन
संग्रह



फलक—२०

कालीय दमन

१८वीं शती : पहाड़ी शैली
भारत-कला-भवन संग्रह

कला—२१



मिह-गोलार

कला—२२



पट-फोरार

१८वीं शती : पासदी कला
चारत-बल्ला-भवन मंडप

१९वीं शती : चहोड़ी शती
चारत-बल्ला-भवन मंडप



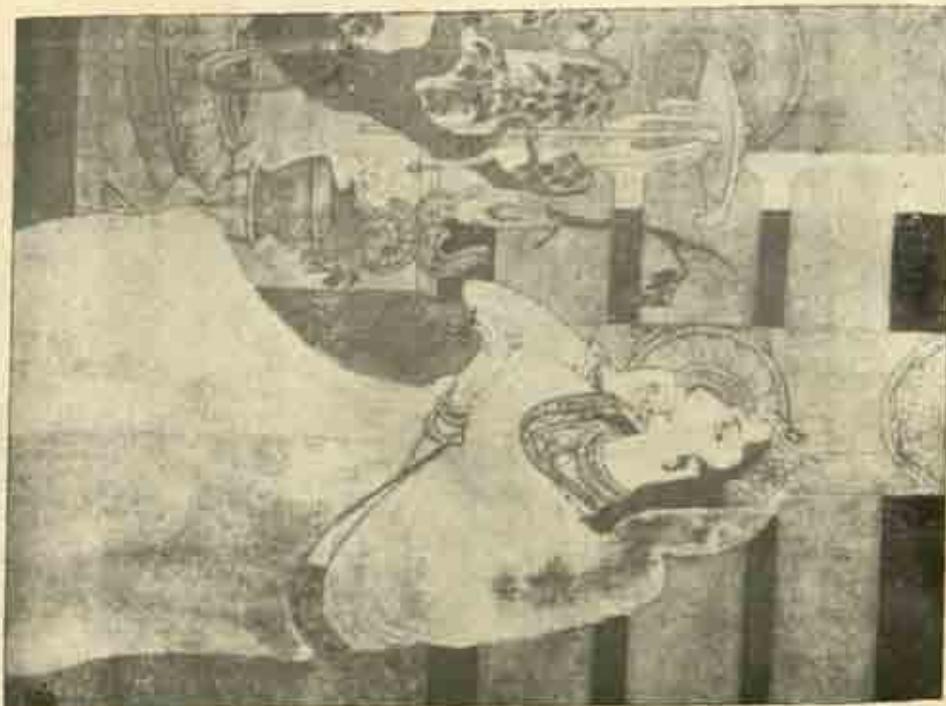
फलक—२३

ताप्तिक

आनुनिक ; वित्तकार उस्ताद रामप्रसाद
भारत-कला-भवन संदर्भ

फलक—२४

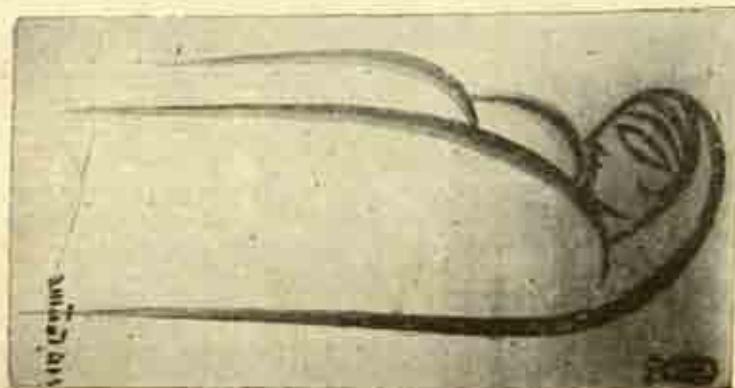
आमनिक : याकुर शीरो ; विष्वकार आचार्य अमरीकदमाल ठाकुर



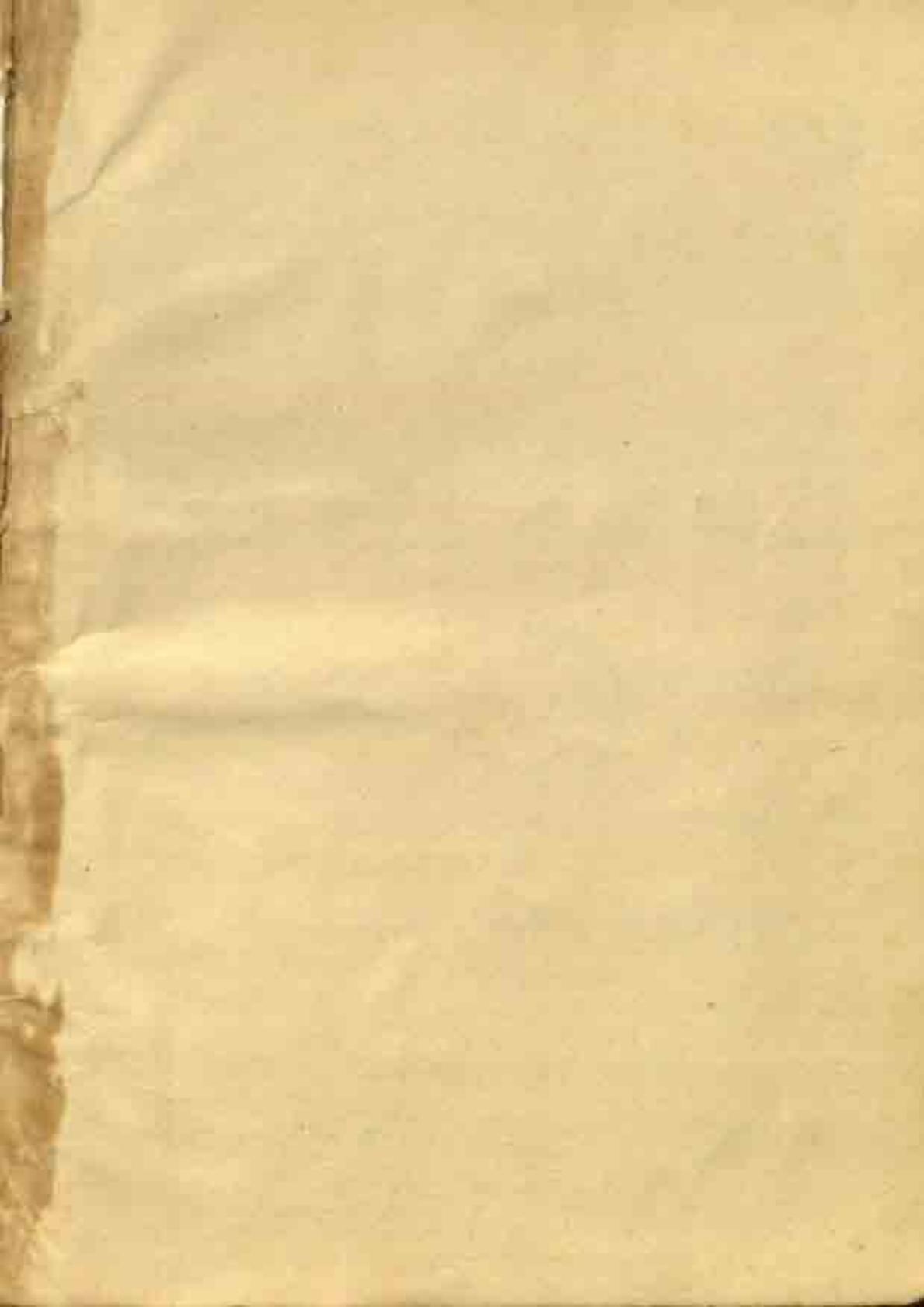
विष्वकार शीरो गाह

फलक—२५

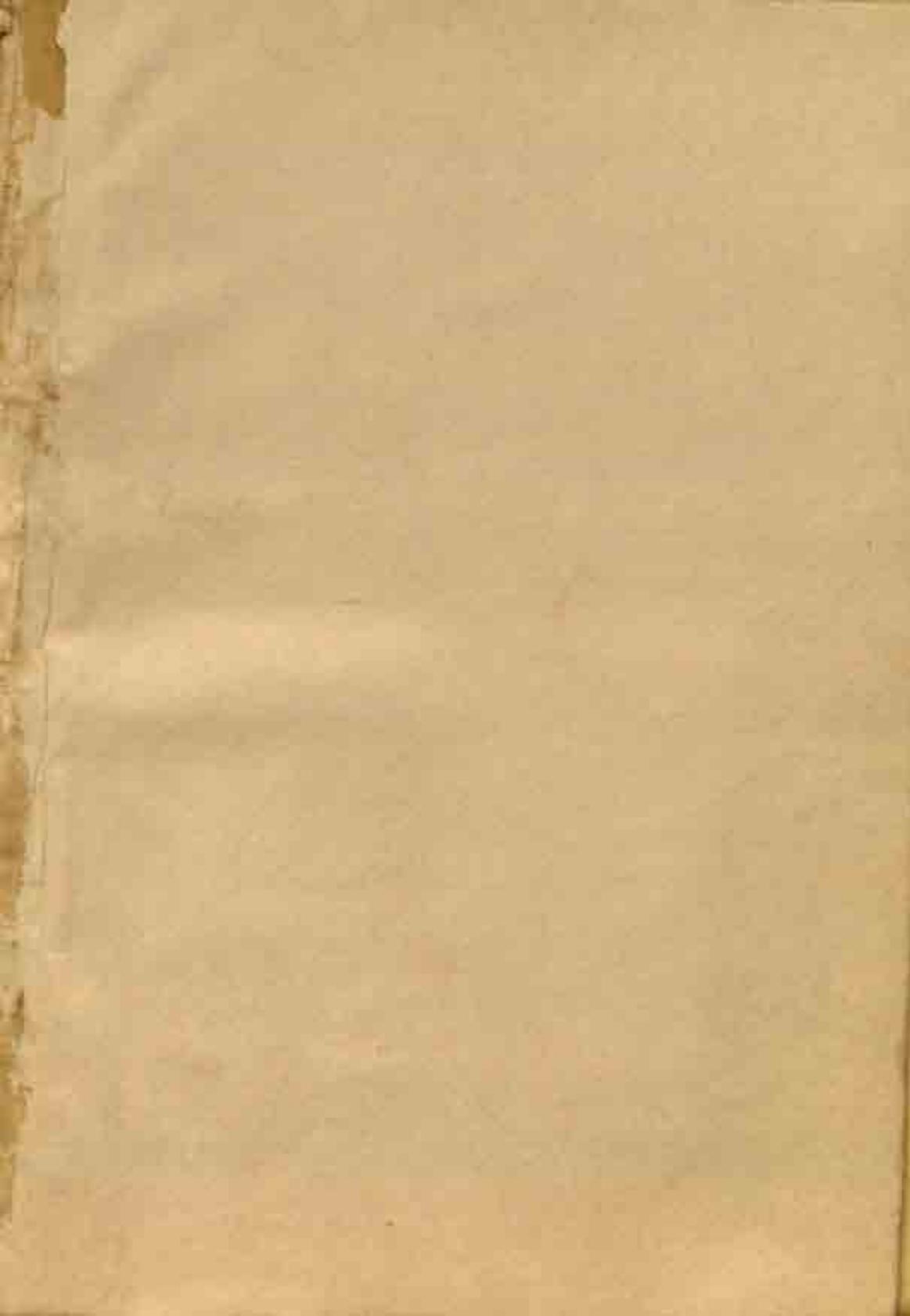
आमनिक : विष्वकार शीरो पाटिली राम



विष्वकार शीरो पाटिली राम







200
N/18.11.74

Central Archaeological Library,
NEW DELHI.

Call No. 750 354/Ray 10375.

Author— J.T.Y.—GOVINDA.

Title— THE C. S. / M. P. O. D. M.

Borrower No. | Date of Issue | Date of Return

"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI.

Please help us to keep the book
clean and moving.